

**काशिकापदमञ्जयोः
माहेश्वरसूत्राणां सूचीपत्रम् ।**

| | | काशिका । | पदमञ्जरी । |
|--------------|------|----------|------------|
| | | पृ. | पृ. |
| अइउण् । | १० । | १ । | १६ |
| अलृक् । | १० । | १ । | २१ |
| एओङ् । | १० । | १ । | २३ |
| ऐऔत् । | १० । | २ । | २४ |
| हयवरट् । | १० । | २ । | २७ |
| लण् । | १० । | ३ । | ३२ |
| अमङ्गानम् । | १० । | ४ । | ३४ |
| भभञ् । | १० । | ४ । | ३५ |
| घठधष् । | १० । | ४ । | ३५ |
| जबगडदश् । | १० । | ४ । | ३५ |
| खफकठथचटतव् । | १० । | ४ । | ३५ |
| कपय् । | १० । | ५ । | ३५ |
| शलसर् । | १० । | ५ । | ३५ |
| हल् । | १० । | ५ । | ३५ |



काशिकापदमञ्जर्याः पाणिनिसूत्राणां सूचीपत्रम् ।

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|----------------------------|-------------|-----|----------|--------|
| | अ | पु. | उ | पु. |
| अथ | ८ । ४ । ६८ | उ. | ५०५ | उ १०३६ |
| अथ स्यारी | ५ । २ । ६६ | उ. | ६६ | उ ३०८ |
| अथः सधर्षा वीर्षः | ६ । १ । १०१ | उ. | १०२ | उ ४०४ |
| अर्थायत च | १ । ४ । ५९ | पु. | ८६ | पु ३०४ |
| अकर्तारि च कारको० | ३ । ३ । १६ | पु. | २६४ | पु ६०० |
| अकर्तार्युषोपच्छमी | २ । ३ । २४ | पु. | १४४ | पु ४३२ |
| अकर्मकाच्छ | १ । ३ । २६ | पु. | ५६ | पु २३२ |
| अकर्मकाच्छ | १ । ३ । ३५ | पु. | ६२ | पु ३३५ |
| अकर्मकाच्छ | १ । ३ । ४५ | पु. | ६५ | पु ३३८ |
| अकर्मधाये राक्ष्यम् | ६ । २ । १३० | उ. | २४९ | उ ५४६ |
| अकृक् पिधसुख० | ८ । १ । १३ | उ. | ४६८ | उ ८८४ |
| अकृत्सार्धधातुयायो० | ७ । ४ । २५ | उ. | ४४६ | उ ८५५ |
| अको वीथिकार्थं | ६ । २ । ७३ | उ. | ३४८ | उ ५४६ |
| अकोनोर्ध्विष्यदाधम० | २ । ३ । ७० | पु. | १५७ | पु ४५६ |
| अक्षयम् प्रासः | २ । १ । १० | पु. | १०७ | पु ३५५ |
| अक्षेयु रलक्षः | ३ । ३ । ७० | पु. | २७४ | पु ६८९ |
| अक्षौन्यतरस्याम् | ३ । १ । ७५ | पु. | २०० | पु ० |
| अक्ष्योवर्षमात् | ५ । ४ । ७६ | उ. | १२९ | उ ३६८ |
| अक्षारान्तादृन् | ४ । ४ । ७० | पु. | ४७५ | उ ० |
| अक्षारैकत्रेण प्रधयाः प्र० | ३ । ३ । ७६ | पु. | २७६ | पु ६८३ |
| अक्षोत्प्रयो परस्य च | ८ । २ । ६२ | उ. | ५२० | उ ८६६ |
| अक्षोः स्तुस्तोमसोमाः | ८ । ३ । ८२ | उ. | ५४८ | उ १००५ |
| अक्षेर्द्धक् | ४ । २ । ३३ | पु. | ३८८ | उ १३३ |
| अक्षोः प्रोः | ३ । ३ । ६९ | पु. | २३८ | पु ६३३ |
| अक्षो परिचाष्यो० | ३ । १ । १३९ | पु. | २९४ | पु ६०३ |
| अषाष्यावासुरसः | ५ । ४ । ६३ | उ. | १२५ | उ ४०२ |
| अषाष्यत् | ४ । ४ । १९६ | पु. | ४८३ | उ २२९ |
| अषान्तासुत्रशुभय० | ५ । ४ । १४५ | उ. | १३७ | उ ४९० |
| अक्षिसप्रथ | ६ । ४ । १०३ | उ. | ३५९ | उ ६७७ |
| अक्षत्प्राप्तौ च | ६ । १ । १९६ | उ. | १०७ | उ ४८३ |
| अक्षसुक्तं शिखाकाङ्क्षम् | ८ । ३ । ६४ | उ. | ५२९ | उ ८६७ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | | |
|--------------------------|----------|-----|----------|-----|------|
| | अ. पा सू | पृ | उ. | पृ. | |
| अङ्गस्य | ६।४।९ | उ. | २१४ | उ. | ६२५ |
| अङ्गानि मीरेये | ६।२।७० | उ. | २२८ | उ. | ५४६ |
| अङ्गात्प्रातिनाम्ये | ८।९।३३ | उ. | ४७६ | उ. | ६०४ |
| अङ्गुलिर्वारुणि | ५।४।११४ | उ. | १३० | उ. | ४०५ |
| अङ्गुत्यादिभ्यष्टक | ५।३।१०८ | उ. | ६८ | उ. | ० |
| अच | ४।३।३९ | पू. | ४२८ | उ. | १६८ |
| अच उपसर्गात्तः | ७।४।४७ | उ. | ४५० | उ. | ८६० |
| अच' | ६।४।१३८ | उ. | ३२६ | उ. | ६८८ |
| अच. कर्तृपकि | ६।९।१६५ | उ. | १६८ | उ. | ४२० |
| अच कर्मकर्तृरि | ३।९।६२ | पू. | १६८ | पू. | ५६४ |
| अच. परस्मिन्पूर्वेष्वि० | ९।९।५७ | पू. | २२ | पू. | १०६ |
| अचतुरयिचतुरसुच० | ५।४।७७ | उ. | १२१ | उ. | ३६८ |
| अचप्रच | ९।२।२८ | पू. | ३८ | पू. | १६७ |
| अचस्तास्त्रत्यल्य० | ७।२।६९ | उ. | ३६९ | उ. | ७७८ |
| अचिन्नवृत्तिधेना० | ४।२।४७ | पू. | ३६२ | उ. | १३८ |
| अचिन्नादवेप्रका० | ४।३।६६ | पू. | ४४३ | उ. | १८२ |
| अचि र अतः | ७।२।१०० | उ. | ४०३ | उ. | ७२४ |
| अचि विभाषा | ८।३।२९ | उ. | ५०० | उ. | ६४० |
| अचि श्रीर्षः | ६।९।६२ | उ. | १६० | उ. | ४४५ |
| अचि अनुधातुभुधा० | ६।४।७७ | उ. | ३९५ | उ. | ६६६ |
| अचो अणिति | ७।२।११५ | उ. | ४०६ | उ. | ७६८ |
| अचोन्त्यादि टि | ९।९।६४ | पू. | २७ | पू. | १३३ |
| अचो यत् | ३।९।६७ | पू. | २०६ | पू. | ५६९ |
| अचो रक्षाभ्या द्वे | ८।४।४६ | उ. | ५७० | उ. | १०३२ |
| अचक्राद्यशर्त्ता | ६।२।१५७ | उ. | २५० | उ. | ५६८ |
| अच्छयेः | ७।३।१९६ | उ. | ४४७ | उ. | ८४३ |
| अच्छगत्पर्ययवेपु | ९।४।६६ | पू. | ६५ | पू. | ३२३ |
| अचप्रत्यन्वञ्पूर्वेष्वि० | ५।४।७५ | उ. | १२० | उ. | ३६८ |
| अजयै सगतम् | ३।९।१०५ | पू. | २०८ | पू. | ५६४ |
| अजादी गुणचचना० | ५।३।५८ | उ. | ६६ | उ. | ३४६ |
| अजादेर्द्वितीपस्य | ६।९।२ | उ. | १४९ | उ. | ४९६ |
| अजाव्यतष्टाप | ४।९।४ | पू. | ३३० | उ. | १८ |
| अजाव्यदन्तम् | २।२।६३ | पू. | १३५ | पू. | ४१४ |
| अजाविभ्या ष्यन् | ५।९।८ | उ. | ३ | उ. | ३३९ |
| अजिह्वान्तस्योत्तरप० | ५।३।८२ | उ. | ६९ | उ. | ३६९ |
| अजिप्रत्ययप्रच | ७।३।६० | उ. | ४२७ | उ. | ८२५ |
| अजेर्ध्वञ्जयोः | २।४।५६ | पू. | १७४ | पू. | ४८४ |

| | काशिका | | पटमञ्जरी | |
|----------------------------------|-------------|-------|----------|------|
| | अ | पा सू | पृ | पृ |
| अक्षभनगमा सनि | ६ । ४ । १६ | | उ. | ३६६ |
| अक्षाति | ५ । ३ । ७३ | | उ. | ३५६ |
| अक्षेः पूजायाम् | ७ । २ । ५३ | | उ. | ७७६ |
| अक्षेः लुक् | ५ । ३ । ३० | | उ. | ३३६ |
| अक्षेः अक्षन्त्यस्यर्थः० | ६ । १ । १७० | | उ. | ५१५ |
| अक्षोत्पत्तौ | ६ । २ । ४८ | | उ. | ६५५ |
| अक्षो सिचि | ७ । २ । ७१ | | उ. | ० |
| अक्षनासिकायाः सं० | ५ । ४ । ११८ | | उ. | ४०६ |
| अदकुष्ठाङ्गुम्यथाये० | ६ । ४ । २ | | उ. | १०१६ |
| अदभ्यास्य० | ६ । १ । १३६ | | उ. | ४६३ |
| अदुगाग्यगालवयोः | ७ । ३ । ६६ | | उ. | ८३६ |
| अदुर्गा च | ४ । ३ । ३३ | | पू. | १६८ |
| अदुर्गाकर्मकाचित्० | १ । ३ । ८८ | | पू. | २५८ |
| अदुर्गा नियुक्तं | ६ । २ । ७५ | | उ. | ५४६ |
| अदुर्गा द्वयः | ४ । १ । १५६ | | पू. | ११४ |
| अदुर्गाप्रगृह्यस्यानुना० | ६ । ४ । ५७ | | उ. | १०३३ |
| अदुर्गाकर्मिणा च | ३ । ३ । १२ | | पू. | ६६७ |
| अदुर्गाकर्मिकायाः | ४ । ४ । १८ | | पू. | २०२ |
| अदुर्गा | ५ । २ । १०३ | | उ. | ३२२ |
| अदुर्गासुरनार्थयोर्गु० | ४ । १ । ७८ | | पू. | ६५ |
| अदुर्गादुःखाः | ५ । ४ । १५ | | उ. | ३७० |
| अदुर्गादुःखार्थस्य च्वा० | १ । १ । ६६ | | पू. | १३८ |
| अदुर्गादुःखार्थस्य च्वा० | ४ । ३ । ७३ | | पू. | १७८ |
| अदुर्गादुःखार्थस्य च्वा० | ४ । ४ । ४८ | | पू. | ० |
| अदुर्गा आदे | ७ । ४ । ७० | | उ. | ८७६ |
| अदुर्गा अक्ष | ४ । १ । ६५ | | पू. | ३५८ |
| अदुर्गा अनिठनी | ५ । २ । ११५ | | उ. | ६७ |
| अदुर्गा उत्सार्थभातुके | ६ । ४ । ११० | | उ. | ३२२ |
| अदुर्गा उपधायाः | ७ । २ । ११६ | | उ. | ४०६ |
| अदुर्गा एकश्लेष्ये० | ६ । ४ । १२० | | उ. | ३२४ |
| अदुर्गा कर्मात्मिकसक्तु० | ६ । ३ । ४६ | | उ. | ५३८ |
| अदुर्गा अक्ष | ४ । १ । १७७ | | पू. | ३८० |
| अदुर्गा अक्षिणाद्यथनक्षे० | ५ । ४ । ४६ | | उ. | ११२ |
| अदुर्गा अक्षिण्यर्थः | ५ । ४ । २६ | | उ. | १०८ |
| अदुर्गा अक्षिण्यर्थो च | १ । ४ । ६५ | | पू. | १०० |
| अदुर्गा अक्षिण्यर्थो तमद्विष्टनी | ५ । ३ । ५५ | | उ. | ८५ |
| अदुर्गा अक्षिण्यर्थः | ५ । ४ । ६६ | | उ. | १२६ |

| | काशिका | | पञ्चमञ्जरी | | |
|---------------------------|---------|-----|------------|-----|-----|
| | अ पा सु | पु. | अ पा सु | पु. | |
| अनेरकल्पदे | ६।२।१६९ | उ. | २५८ | उ. | ५०५ |
| अतो गुणो | ६।१।६७ | उ. | १७५ | उ. | ४७२ |
| अतो दीर्घा यञि | ७।३।१०१ | उ. | ३३३ | उ. | ८३६ |
| अतो भिस ऐस् | ७।१।६ | उ. | ३४३ | उ. | ७०५ |
| अतोम | ७।१।२४ | उ. | ३४६ | उ. | ७०६ |
| अतो येष | ७।२।६० | उ. | ३६६ | उ. | ७८४ |
| अतो रारभुतावमुते | ६।१।११३ | उ. | १७५ | उ. | ४८१ |
| अतो लोपः | ६।४।४८ | उ. | ३०८ | उ. | ६५० |
| अतो ज्ञान्तस्य | ७।२।२ | उ. | ३६८ | उ. | ७४० |
| अतो हलादेल्लो | ७।२।७ | उ. | ३७० | उ. | ७५१ |
| अतो होः | ६।४।१०५ | उ. | ३२१ | उ. | ६७७ |
| अत्यन्तसंयोगो च | २।१।३८ | पु. | ११२ | पु. | ० |
| अत्र लोपोभ्यासस्य | ७।४।५८ | उ. | ४५३ | उ. | ८६३ |
| अत्रानुनासिकः पृथस्य० | ८।३।२ | उ. | ५३६ | उ. | ६७३ |
| अत्रिभृगुक्लृप्तस्यसिष्ट० | २।४।६५ | पु. | १७७ | पु. | ० |
| अत्यसतस्यचाधातोः | ६।४।१४ | उ. | ३६८ | उ. | ६३५ |
| अस्मद्वृत्त्यरप्रथमद० | ७।४।६५ | उ. | ४६३ | उ. | ८७४ |
| अद' सर्वथा | ७।३।१०० | उ. | ४३६ | उ. | ८३६ |
| अदभ्यस्तात् | ७।१।४ | उ. | ३४९ | उ. | ७०३ |
| अदर्शनं लोपः | १।१।६० | पु. | २६ | पु. | १२३ |
| अदस आ सु लोपप्रच | ७।२।१०७ | उ. | ४०५ | उ. | ७६० |
| अदसो मात् | १।१।१२ | पु. | ६ | पु. | ६४ |
| अदसोसेर्वाद् देा म | ८।२।८० | उ. | ५१६ | उ. | ६५८ |
| अदिप्रभृतिभ्यः अप | २।४।७२ | पु. | १८० | पु. | ४६३ |
| अदुरभवप्रच | ४।३।७० | पु. | ४०० | उ. | १४५ |
| अदेहुणः | १।१।३ | पु. | ६ | पु. | ४० |
| अदोजिधर्त्विक्ति० | ३।४।३६ | पु. | १७० | पु. | ४८९ |
| अदोानचे | ३।२।६८ | पु. | २३३ | पु. | ६२६ |
| अदोानुपदेशे | १।४।७० | पु. | ६५ | पु. | ३३३ |
| अद्वहुसरादिभ्यः प्रश्च० | ७।१।२५ | उ. | ३४० | उ. | ७१० |
| अदभिः संस्कृतम् | ४।४।१३४ | पु. | ४८७ | पु. | ० |
| अदप्रथीनास्यष्टक्ये | ५।२।१३ | उ. | ४१ | उ. | ३८६ |
| अध' शिरसी पठे | ८।३।४७ | उ. | ५३६ | उ. | ६८ |
| अधिकम् | ५।२।७३ | उ. | ५६ | उ. | ३०६ |
| अधिकरणावाचिनप्रच | २।३।६८ | पु. | १५६ | पु. | ४५५ |
| अधिकरणावाचिना च | २।२।१३ | पु. | १३८ | पु. | ३६८ |
| अधिकरणाविचाले च | ५।३।४३ | उ. | ८३ | उ. | ३४१ |

| | अ. पा. सु. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|------------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| अधिकारसो बन्धः | ३।४।४९ | पृ. | ३१९ | पृ. | ० |
| अधिकारसो श्रौतेः | ३।४।९५ | पृ. | २२२ | पृ. | ६९५ |
| अधिकारसोशास्त्रे च | २।४।९५ | पृ. | १६३ | पृ. | ४६६ |
| अधिकृत्य कृते ग्रन्थे | ४।३।८७ | पृ. | ४४९ | उ. | ९८९ |
| अधिपरीक्षणार्थका | १।४।६३ | पृ. | ६६ | पृ. | ३३२ |
| अधिपरीषदरे | १।४।६७ | पृ. | १०० | पृ. | ३३३ |
| अधिष्ठाइत्यासा कर्म | १।४।४६ | पृ. | ८८ | पृ. | ० |
| अधीमर्थदयेशा कर्मणि | २।३।५२ | पृ. | १५९ | पृ. | ४४६ |
| अधीष्टे च | ३।३।१६६ | पृ. | २६८ | पृ. | ७९९ |
| अधुना | ५।३।९७ | उ. | ७७ | उ. | ३३६ |
| अधे प्रसक्तने | १।३।३३ | पृ. | ६३ | पृ. | २३५ |
| अधेरुपरिस्थम् | ६।२।१८८ | उ. | २५८ | उ. | ५७४ |
| अध्ययनतोऽवपकष्टा० | २।४।५ | पृ. | १६० | पृ. | ४६२ |
| अध्यधपूर्वविगालु० | ५।१।२८ | उ. | ६ | उ. | २४६ |
| अध्याधन्यायोद्यास० | ३।३।१२२ | पृ. | २८५ | पृ. | ६६४ |
| अध्यायानुवाकयोऽनुक्त | ५।२।६० | उ. | ५३ | उ. | ३०७ |
| अध्याधिन्यवेप्रका० | ४।४।७९ | पृ. | ४७५ | उ. | २९२ |
| अध्याधेयवर्षः | ४।३।६६ | पृ. | ४३६ | उ. | ९७७ |
| अध्याधेयवर्षा | ५।२।९६ | उ. | ४९ | उ. | २८७ |
| अध्याधेयवर्षायाऽर्जाति | ६।२।१० | उ. | २०८ | उ. | ५३९ |
| अध्याधेयवर्षायाऽर्जाति | २।४।४ | पृ. | २६० | पृ. | ४६२ |
| अध्याधेयवर्षायाऽर्जाति | ६।४।१६७ | उ. | ३३७ | उ. | ६६६ |
| अन उपधालोपिनो० | ४।१।२८ | पृ. | ३३७ | उ. | ३७ |
| अनञ्से | ७।१।६३ | उ. | ३६५ | उ. | ७३६ |
| अनञ्चि च | ८।४।४७ | उ. | ५७० | उ. | १०३२ |
| अनत्यान्तगतौ क्तात् | ५।४।४ | उ. | १०२ | उ. | ३७९ |
| अनत्याधानउरसि० | १।४।७५ | पृ. | ६६ | पृ. | ३२४ |
| अनत्याधने सङ् | ३।२।१११ | पृ. | २४२ | पृ. | ६५६ |
| अनत्याधने सुद | ३।३।१५ | पृ. | २६३ | पृ. | ६६८ |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | ५।२।२९ | उ. | ७७ | उ. | ० |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | ५।४।२३ | उ. | १०७ | उ. | ६८० |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | ८।२।१०५ | उ. | ५२४ | उ. | ६६६ |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | २।३।१ | पृ. | १३७ | पृ. | ४९६ |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | ३।३।१४५ | पृ. | २६३ | पृ. | ७७४ |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | ५।४।१०८ | उ. | १३६ | उ. | ० |
| अनत्याधनेऽनिलन्यत० | ५।४।१०३ | उ. | १२७ | उ. | ४७३ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | | |
|------------------------|-----------|-----|----------|-----|------|
| | अ पा. सु. | पृ | पृ | पृ | |
| अनाप्यकः | ७।२।११२ | उ. | ४०५ | उ. | ० |
| अनिगन्तोऽन्वतेि य० | ६।२।५२ | उ. | २२३ | उ. | ५४४ |
| अनितेः | ८।४।१८ | उ. | ५६३ | उ. | १०२४ |
| अनिदिता तुल उप० | ६।४।२४ | उ. | ३०२ | उ. | ६५० |
| अनुकम्पायाम | ५।३।७६ | उ. | ६० | उ. | ३६० |
| अनुकरण धानितिप० | १।४।६२ | पु. | ६४ | पु. | ३२१ |
| अनुकाभिकाभीकः० | ५।२।७४ | उ. | ५० | उ. | ३०६ |
| अनुगवमायामे | ५।४।८३ | उ. | १२३ | उ. | ४०० |
| अनुगादिनष्टक् | ५।४।१३ | उ. | ५०५ | उ. | ३७६ |
| अनुगवलङ्गामी | ५।२।१५ | उ. | ४१ | उ. | २८७ |
| अनुदात्त सर्वमपाठादौ च | ८।१।१८ | उ. | ४७० | उ. | ८६७ |
| अनुदात्तहित आत्म० | १।३।१३ | पु. | ५६ | पु. | ३२२ |
| अनुदात्तं च | ८।१।३ | उ. | ४६४ | उ. | ८८१ |
| अनुदात्त पदमेक० | ६।१।१५८ | उ. | १८७ | उ. | ५०० |
| अनुदात्त प्रथमान्ता० | ८।२।१०० | उ. | ५३२ | उ. | ६६८ |
| अनुदात्तस्य च य० | ६।१।१६१ | उ. | १८६ | उ. | ५०६ |
| अनुदात्तस्य चतुर्पध० | ६।१।५६ | उ. | १५६ | उ. | ४४४ |
| अनुदात्तादेरञ् | ४।२।४४ | पु. | ३६१ | उ. | १४५ |
| अनुदात्तादेश्च | ४।३।१४० | पु. | ४५५ | उ. | १६३ |
| अनुदात्ते च | ६।१।१६० | उ. | १६७ | उ. | ५१८ |
| अनुदात्ते च कुधपरे | ६।१।१२० | उ. | १७७ | उ. | ४८४ |
| अनुदात्तेतश्चक्षलादेः | ३।२।१४८ | पु. | २५० | पु. | ६५४ |
| अनुदात्तोपदेश्यन० | ६।४।३७ | उ. | ३०४ | उ. | ६५३ |
| अनुदात्तो सुप्पितौ | ३।१।४ | पु. | १८३ | पु. | ५०७ |
| अनुनासिकस्य क्ति० | ६।४।१५ | उ. | २६८ | उ. | ६३६ |
| अनुनासिकात्परानु० | ८।३।४ | उ. | ५३७ | उ. | ६७३ |
| अनुपदसर्वात्तावानर्थ० | ५।२।६ | उ. | ३६ | उ. | २८४ |
| अनुपदन्वेषा | ५।२।६० | उ. | ६० | उ. | ३१४ |
| अनुपराभ्या कञः | १।३।७६ | पु. | ७४ | पु. | ३५७ |
| अनुपसर्गाञ्जः | १।३।७६ | पु. | ७३ | पु. | ३५६ |
| अनुपसर्गात्फुल्लक्रीड० | ८।२।५५ | उ. | ५०६ | उ. | ६५२ |
| अनुपसर्गाद्वा | १।३।४३ | पु. | ६४ | पु. | ३६८ |
| अनुपसर्गाल्लिम्प० | ३।१।१३८ | पु. | २१६ | पु. | ६०५ |
| अनुपसर्जनात् | ४।१।१४ | पु. | ३३३ | उ. | ३५ |
| अनुपस्त्रियाश्च | १।४।४६ | उ. | ८७ | पु. | ६६३ |
| अनुपस्त्रचनादिभ्यः | ५।१।१११ | उ. | २६ | उ. | ३६५ |
| अनुप्राश्नयोदिकृ | ४।२।६२ | पु. | ३६८ | उ. | १४३ |

| | अ | पा | सू. | काशिका | प | प | प |
|-------------------------|------|-----|-----|--------|-----|-----|------|
| | | | | | पृ | | पृ. |
| अनुर्वत्समया | २।१। | १५ | | पृ. | १०८ | पृ. | ३५० |
| अनुलक्षणे | १।४। | ८४ | | पृ. | ६८ | पृ. | ३२८ |
| अनुवादे चरणानाम् | २।४। | ३ | | पृ. | १५६ | पृ. | ४६९ |
| अनुविपर्यभिनिभ्यः० | ८।३। | ७२ | | अ. | ५४६ | अ. | १००३ |
| अनुश्रुतिकादीनां च | ७।३। | २० | | अ. | ४५३ | अ. | ८०६ |
| अनुस्वारस्य ययि० | ८।४। | ५८ | | अ. | ५०२ | अ. | १०३३ |
| अनुष्यानन्तर्वि० | ४।१। | १०४ | | पृ. | ३६९ | अ. | ६६ |
| अनेकमन्यपठार्थं | २।२। | २४ | | पृ. | १३२ | पृ. | ४०४ |
| अनेकाल्प्रित्सर्वस्य | १।१। | ५५ | | पृ. | २९ | पृ. | १०२ |
| अनेो नुट | ८।२। | १६ | | अ. | ४६८ | अ. | ६३६ |
| अनेो बहुधीः | ४।१। | १२ | | पृ. | ३३३ | अ. | ३३ |
| अनेो भाषकर्मवचनः | ६।२। | १५० | | अ. | २४८ | अ. | ५६६ |
| अनेोरकर्मकात् | १।३। | ४६ | | पृ. | ६६ | पृ. | २३६ |
| अनेोरप्रधानकनी० | ६।२। | १८६ | | अ. | २५८ | अ. | ५०४ |
| अनेोप्रमाथः सरसा० | ५।४। | ६४ | | अ. | १२५ | अ. | ० |
| अनेो कर्मणि | ३।२। | १०० | | पृ. | २४० | पृ. | ६३४ |
| अन्तः | ६।२। | ६२ | | अ. | २३३ | पृ. | ५५२ |
| अन्तः | ६।२। | १४३ | | अ. | २४५ | अ. | ५६४ |
| अन्तः | ६।२। | १७६ | | अ. | २५६ | अ. | ० |
| अन्तः | ८।४। | २० | | अ. | ५६३ | अ. | १०२४ |
| अन्तःपूर्वपठानुञ्ज | ४।३। | ६० | | पृ. | ४३५ | अ. | १७४ |
| अन्तरं अक्षिर्गोष० | १।१। | ३६ | | पृ. | १६ | पृ. | ८३ |
| अन्तरदेशे | ८।४। | २४ | | अ. | ५६४ | अ. | १०२६ |
| अन्तरपरिग्रहे | १।४। | ६५ | | पृ. | ६५४ | पृ. | ३२२ |
| अन्तरान्तरेया पुल्ले | २।३। | ४ | | पृ. | १३८ | पृ. | ४२९ |
| अन्तर्धेना देशे | ३।३। | ७८ | | पृ. | २०६ | पृ. | ६८२ |
| अन्तर्धी येनादर्शन० | १।४। | २८ | | पृ. | ८४ | पृ. | २८७ |
| अन्तर्ध्वनिर्था स० | ५।४। | ११७ | | अ. | १३९ | अ. | ० |
| अन्तर्ध्वनित्येतोर्नुक् | ४।१। | ३२ | | पृ. | ३३८ | अ. | ३६ |
| अन्तप्रथ | ६।२। | १८० | | अ. | २५६ | अ. | ० |
| अन्तप्रथ तथै युगपत् | ६।१। | २०० | | अ. | १६६ | अ. | ५२२ |
| अन्तात्प्रत्याध्यवूर० | ३।२। | ४८ | | पृ. | २२८ | पृ. | ६२० |
| अन्तादिवच्छ | ६।१। | ८५ | | अ. | १६७ | अ. | ४६२ |
| अन्तिकवाढयोर्नद० | ५।३। | ६३ | | अ. | ८७ | अ. | ४५१ |
| अन्तोढात्तात्तुत्तर० | ६।१। | १६६ | | अ. | १६० | पृ. | ५१० |
| अन्तोढात्ताः | ६।१। | २५० | | अ. | २०३ | अ. | ५२५ |
| अन्त्यात्पूर्व बहुचः | ६।२। | ६३ | | अ. | २५१ | अ. | ५५५ |

| | अ. पा मू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|-----------|---------|----------|
| अज्ञाशाः | ४।४।८५ | पू. ४०७ | प. ० |
| अज्ञेन व्यञ्जनं | २।१।३४ | पू. ११२ | पू. ३६६ |
| अन्यतो डीष् | ४।१।४० | पू. ३४० | प. ४३ |
| अन्यशैवकथमित्यंमु० | ३।४।२७ | पू. ३०८ | पू. ७२८ |
| अन्यपदार्यं च सञ्ज्ञा० | २।१।२१ | पू. ११० | पू. ० |
| अन्यारादितरतंवि० | २।३।२६ | पू. १४५ | पू. ४३५ |
| अन्यभ्योपि दृश्यते | ३।२।*१७८ | पू. ३५६ | पू. ६२० |
| अन्येभ्योपि दृश्यते | ३।३।१३० | पू. २८७ | पू. ६८५ |
| अन्येभ्योपि दृश्यन्ते | ३।३।७५ | पू. २३५ | पू. ६६० |
| अन्येषामपि दृश्यते | ३।३।१३७ | पू. २८४ | पू. ६२४ |
| अन्येष्वपि दृश्यते | ३।३।१०१ | पू. २४० | पू. ६३४ |
| अन्यच्यातुलोभ्ये | ३।४।६४ | पू. ३१० | पू. ७३८ |
| अन्यघताप्तादृष्टसः | ५।३।८१ | पू. १२२ | पू. ३८८ |
| अपगुरो वासुलि | ३।१।५३ | पू. १५० | पू. ४४३ |
| अपघनाङ्गम् | ३।३।८१ | पू. २०६ | पू. ६८३ |
| अपचितप्रच | ७।२।३० | पू. ३८१ | पू. ७३६ |
| अपत्यं पीत्रप्रभृति० | ४।१।१६२ | पू. ३०६ | पू. ११५ |
| अपथं नपुंसकम् | २।४।३० | पू. १६७ | पू. ४७० |
| अपदातो साख्यात् | ४।२।१३५ | पू. ४१६ | पू. १५६ |
| अपदान्तस्य सूर्यन्यः | ८।३।५५ | पू. ५४१ | पू. ६६४ |
| अपपरिभ्रष्टिरञ्जयः० | २।१।१२ | पू. १०८ | पू. ३५६ |
| अपपरी वर्जने * | १।४।८८ | पू. २८ | पू. ३२६ |
| अपमित्ययाचिताभ्या० | ४।४।२१ | पू. ४६५ | पू. २०३ |
| अपरस्पराः क्रिया० | ३।१।१४४ | पू. १८३ | पू. ४८५ |
| अपरिमाण्यस्तार्त्तच० | ४।१।२२ | पू. ३३६ | पू. ३४ |
| अपरिगृह्यताभच | ७।२।३२ | पू. ३८३ | पू. ७३६ |
| अपरोक्षे च | ३।२।११६ | पू. २४४ | पू. ६५६ |
| अपवर्गे वृत्तीया | २।३।६ | पू. १३६ | पू. ४२३ |
| अपस्करो रथाङ्गम् | ३।१।१४६ | पू. १८४ | पू. ४८६ |
| अपसृथेषामानुचुरा० | ३।१।३६ | पू. १५३ | पू. ४३६ |
| अपहृते चः | १।२।४४ | पू. ६४ | पू. २३८ |
| अपाच्च | ३।३।१८६ | पू. २५० | पू. ५७४ |
| अपाच्चतुष्याच्छकु० | ३।१।१४२ | पू. १८३ | पू. ४८५ |
| अपादाने स्थायीयक्षोः | ५।४।४५ | पू. ११३ | पू. ३८६ |
| अपादाने पञ्चमी | २।३।२८ | पू. १४५ | पू. ४३४ |
| अपादाने परीक्षायाङ्गम् | ३।४।५२ | पू. ३१३ | पू. ७३३ |

सूचीपत्रम् ।

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|--------------------------|---------|---------|----------|-----|
| | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| अपाहृतः | १।३।७३ | पृ. ७२ | पृ. ० | |
| अपिः पदार्थसम्भाव० | १।४।६६ | पृ. १०० | पृ. ३३३ | |
| अपूर्वपदादन्यतर० | ४।१।१४० | पृ. ३७० | पृ. १०८ | |
| अपूर्व एकानुप्रत्ययः | १।२।४९ | पृ. ४३ | पृ. १७७ | |
| अपे श्लोक्तमसोः | ३।२।५० | पृ. २२६ | पृ. ० | |
| अपे च लघः | ३।२।१४४ | पृ. २२६ | पृ. ० | |
| अपेतापोठमुक्तपति० | २।१।३८ | पृ. ११५ | पृ. ३६६ | |
| अपोनपुत्रपानपृथ्या घः | ४।२।२७ | पृ. ३८७ | पृ. १३२ | |
| अपो भि | ७।४।४८ | पृ. ४५९ | पृ. ८६० | |
| अप्पुनृचस्यसनपुत्रेष्टु० | ६।४।१९ | पृ. २६७ | पृ. ६३० | |
| अप्पूरणीप्रसाधयोः | ५।४।१९६ | पृ. १३० | पृ. ४०५ | |
| अप्रत्ययात् | ३।३।१०२ | पृ. २८० | पृ. ० | |
| अप्तुतधतुपस्थिते | ६।१।१२६ | पृ. १७६ | पृ. ४८७ | |
| अभारितपुल्याच्च | ७।३।४८ | पृ. ४२३ | पृ. ८३० | |
| अभिकानप्रघ | ४।३।६० | पृ. ४४२ | पृ. १८९ | |
| अभिकि द्विवभ० | ५।३।१९८ | पृ. १०० | पृ. ३६६ | |
| अभिकानघन लृट् | ३।२।१९२ | पृ. ३४२ | पृ. ६४९ | |
| अभिनियोगप्रघ | १।४।४७ | पृ. ८८ | पृ. ३०० | |
| अभिनिकामतिहृत् | ४।३।८६ | पृ. ४४० | पृ. १८२ | |
| अभिनिसः स्तन.० | ८।३।८६ | पृ. ५४६ | पृ. १००६ | |
| अभिप्रत्ययिभ्यः क्षिपः | १।३।८० | पृ. ७४ | पृ. ० | |
| अभिरभागे | १।४।६९ | पृ. ६६ | पृ. ३३९ | |
| अभिविधो भावङ्गुण | ३।३।४४ | पृ. २६६ | पृ. ६७७ | |
| अभिविधो सम्पदा च | ५।४।५३ | पृ. ११४ | पृ. ३६० | |
| अभूततद्भावे कभ्यस्ति० | ५।४।५० | पृ. ११३ | पृ. ३८८ | |
| अभेसुखम् | ६।२।१८५ | पृ. २५७ | पृ. ५७४ | |
| अभेप्रधायित्वयै | ७।३।२५ | पृ. ३८० | पृ. ७६४ | |
| अभ्यसिप्राच्छ च | ५।३।१७ | पृ. ४९ | पृ. २८० | |
| अभ्यस्तस्य च | ६।१।३३ | पृ. १५२ | पृ. ४३६ | |
| अभ्यस्तानामा द्विः | ६।१।१८६ | पृ. १६६ | पृ. ५९८ | |
| अभ्यासस्यास्ययै | ६।४।७८ | पृ. ३१५ | पृ. ६७० | |
| अभ्यासाच्च | ७।३।५५ | पृ. ४३६ | पृ. ८२४ | |
| अभ्यासं चर्च | ८।४।५४ | पृ. ५७२ | पृ. १०३६ | |
| अभ्युत्साहयां प्रजन०. | ६।१।४२ | पृ. १६४ | पृ. ५५४ | |
| अमनुष्यकर्तृके च | ३।२।५३ | पृ. २२६ | पृ. ६२९ | |
| अम सुसर्वनगरेशु० | ६।२।८६ | पृ. २३२ | पृ. ० | |
| अम तस्यद्वयतर० | ६।१।१२२ | पृ. २२९ | पृ. ५६६ | |

| | काशिका | पद्यमञ्जरी |
|-------------------------|----------|------------|
| श्र पा. मू | पृ | पृ |
| श्रमायास्याया वा | पृ. ४२८ | पृ. १८८ |
| श्रमि पृथ. | उ. १७४ | उ. ४७८ |
| श्रमु च्छन्दसि | उ. २०४ | उ. ४७६ |
| श्रमूर्धमस्तकात्स्या० | उ. २४४ | उ. ५८३ |
| श्रमेवाव्ययेन | *पृ. १३१ | पृ. ४०३ |
| श्रमेो भग | उ. ३५९ | उ. ७१८ |
| श्रमरुधरयस्त्रियुभय० | उ. ५१४ | उ. ८५६ |
| श्रम्यास्त्रगोभूमिस० | उ. ५५९ | उ. १०० |
| श्रम्यार्धनद्वोर्हस्यः | उ. ४३८ | उ. ८४६ |
| श्रम्य सलुद्धी | उ. ३६७ | उ. ७४५ |
| श्रय शूलवगडाजिना० | उ. ५७ | उ. ३९० |
| श्रयङ् पि श्रुति | उ. ४४५ | उ. ८५४ |
| श्रयन च | उ. ५६४ | उ. १०२६ |
| श्रयस्मयादीनि छ० | पृ. ८२ | पृ. २७७ |
| श्रयामन्तान्वाय्येत्वि० | उ. ३०६ | उ. ६६९ |
| श्रयवयान्मनुष्ये | पृ. ४१८ | उ. ९५८ |
| श्रयिष्टगोडपुर्वं च | पृ. २३५ | उ. ५५४ |
| श्रयिष्टपदकान्तस्य सु० | उ. २७८ | उ. ६०७ |
| श्रयसंनपचक्षुश्चेत्तार० | उ. ११४ | उ. ३८६ |
| श्रयतिपपत्याश्च | उ. ४५८ | उ. ८६६ |
| श्रयतिनूधूसूखनस० | पृ. २५८ | पृ. ६६९ |
| श्रयिष्टीश्लोरीकृ० | उ. ४९६ | उ. ८५४ |
| श्रयैवदधातुरपत्यया० | पृ. ४४ | पृ. १८९ |
| श्रयै | उ. २२९ | उ. ५४६ |
| श्रयै विभाषा | उ. २८६ | उ. ० |
| *श्रयैः सनिधयः | उ. ३०६ | उ. ० |
| श्रयै नपुसकम् | पृ. १२५ | पृ. ३८८ |
| श्रयैचै. पुंसि च | पृ. १६७ | पृ. ४७० |
| श्रयैश्च | उ. १२७ | उ. ० |
| श्रयैःपरिमाणस्य पृ० | उ. ४१६ | उ. ८१९ |
| श्रयैःव्यत | पृ. ४२३ | उ. ९६२ |
| श्रयै चावर्षी श्रयैश्च | उ. २२२ | उ. ५५२ |
| श्रयैः स्वामिष्ययोः | पृ. २७७ | पृ. ५६४ |
| श्रयैः सावर्षी | उ. ३२७ | उ. ६२५ |
| श्रयैः आदिभ्योश्च | उ. ७९ | उ. ३२६ |
| श्रयैः | पृ. २७९ | पृ. ० |
| श्रयैः प्रशसायास् | पृ. २४७ | पृ. ६५० |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------------|-------------|--------|----------|---------|
| | अ | पा सू. | पृ | पृ |
| अर्षे कल्पसूत्रपत्र | ३ । ३ । १६६ | पृ. | २६६ | पृ. ७१२ |
| अलक्षत्रनिराक० | ३ । २ । १३६ | पृ. | २४८ | पृ. ६५९ |
| अलम्ब्यन्तोः प्रतिषे० | ३ । ४ । १८ | पृ. | ३०६ | पृ. ७२२ |
| अल्लुगुत्तरपदे | ३ । ३ । ९ | उ. | २६९ | उ. ५७७ |
| अल्लान्त्यस्य | १ । १ । ५२ | पृ. | २९ | पृ. ९०० |
| अल्लान्त्यात्पूर्व उपधा | १ । १ । ६५ | पृ. | २७ | पृ. ९३४ |
| अल्ल्याख्यायाम् | ५ । ४ । १३६ | उ. | १३५ | उ. ४०६ |
| अल्ल्यात्तरम् | २ । २ । ३४ | पृ. | १३६ | पृ. ४९४ |
| अल्ल्ये | ५ । ३ । ८५ | उ. | ६३ | उ. ० |
| अल्लोपीनः | ६ । ४ । १३४ | उ. | ३२८ | उ. ६८७ |
| अल्ल्यक्य | ४ । ४ । ५० | पृ. | ४७९ | उ. २०८ |
| अल्ल्येपयो कन् | ५ । ३ । ६५ | उ. | ६५ | उ. ३६६ |
| अल्ल्यस्कोटाद्यनस्य | ६ । १ । १२३ | उ. | १७७ | उ. ४८४ |
| अल्ल्यस्ते च | ३ । ४ । १५ | पृ. | ३०६ | पृ. ७२९ |
| अल्ल्यपस्ययर्थागर्हो | ३ । १ । १०९ | पृ. | ३०७ | पृ. ५६३ |
| अल्ल्यपशासि च | ६ । १ । १८९ | उ. | १७७ | उ. ० |
| अल्ल्यपवाहृतीः | ७ । ३ । १९ | उ. | ४९० | उ. ८०६ |
| अल्ल्यपचे च प्राग्यो० | ४ । ३ । १३५ | पृ. | ४५३ | उ. ९६२ |
| अल्ल्यपसि ङञ्च | ५ । १ । ८४ | उ. | २३ | उ. २६० |
| अल्ल्यथाः अयेतवाः पुरो० | ८ । २ । ६७ | उ. | ५९३ | उ. ६५५ |
| अल्ल्यससन्धेभ्यस्तमसः | ५ । ४ । ७६ | उ. | १२२ | उ. ३६६ |
| अल्ल्यस्त्रालम्बनाद्यिदू० | ८ । ३ । ६८ | उ. | ५४५ | उ. १००२ |
| अल्ल्यस्त्रुटारञ्च | ५ । २ । ३० | उ. | ४४ | उ. २६९ |
| अल्ल्यद्वयः | १ । ३ । ५९ | पृ. | ६६ | पृ. २४० |
| अल्ल्यारपारात्यन्तानु० | ५ । २ । १९ | उ. | ४० | उ. २८५ |
| अल्ल्यद्रावपि यसु० | ४ । २ । १२५ | पृ. | ४९६ | उ. ९५७ |
| अल्ल्यद्राभ्यो नदी० | ४ । १ । ११३ | पृ. | ३६४ | उ. ९०२ |
| अल्ल्येः कः | ५ । ४ । २८ | उ. | १०८ | उ. ० |
| अल्ल्ये पत्नीत्यर्थेपतिश्च० | ६ । ३ । ५९ | पृ. | ३७९ | पृ. ६७६ |
| अल्ल्यैतृस्त्रीर्षञ् | ३ । ३ । १२० | पृ. | ३८५ | पृ. ६६४ |
| अल्ल्य यवाः | ३ । २ । ७२ | पृ. | २३४ | पृ. ६३७ |
| अल्ल्येदिधोऽन्यपश्चादि० | ६ । ४ । ७६ | उ. | ३०३ | उ. ६५९ |
| अल्ल्येर्षानिधः | ३ । ३ । २३ | पृ. | २६६ | पृ. ६७३ |
| अल्ल्यस्तानुकरयास्या० | ६ । १ । ६८ | उ. | १७९ | उ. ४७४ |
| अल्ल्यस्तानुकरयात्सु० | ५ । ४ । ५७ | उ. | ११६ | उ. ३६९ |
| अल्ल्यर्थे विभक्तिसमीप० | ३ । १ । ६ | पृ. | १०५ | पृ. ३५३ |
| अल्ल्यपस्यर्षान्नामक० | ५ । ३ । ७९ | उ. | ८९ | उ. ३५८ |

| | अ. पा सू | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|----------------------|----------|---------------|-----------------|
| अध्ययात्तपु | ४।२।१०४ | पृ. ४१० | उ. १५१ |
| अध्ययादात्सुपः | २।४।८२ | पृ. १८२ | पृ. ४६५ |
| अध्ययीभाषः | २।१।५ | पृ. १०५ | पृ. ३५२ |
| अध्ययीभाषप्रच | १।१।४१ | पृ. १८ | पृ. ८८ |
| अध्ययीभाषप्रच | २।४।१८ | पृ. १६३ | पृ. ४७१ |
| अध्ययीभाषाच्च | ४।३।५८ | पृ. ४४४ | उ. १०४ |
| अध्ययीभाषे चाकासे | ६।३।८१ | उ. २८२ | उ. ६१४ |
| अध्ययीभाषे शरत्प्र० | ५।४।१०७ | उ. १२८ | उ. ४०३ |
| अध्ययेयथाभिप्रेता० | ३।४।५८ | पृ. ३१५ | पृ. ७३५ |
| अध्यादवद्यादवक्र० | ६।१।११६ | उ. १०६ | उ. ४८३ |
| अशब्दे यत्खा० | ४।३।६४ | पृ. ४३५ | उ. १७५ |
| अशानायोदन्त्यध० | ७।४।३४ | उ. ४४७ | उ. ८५७ |
| अशाला च | २।४।२४ | पृ. १६५ | पृ. ४७३ |
| अशनीतिप्रच | ७।४।७२ | उ. ४५७ | उ. ० |
| अश्वस्त्रीरवृणवयणा० | ७।१।५१ | उ. ३५३ | उ. ७३० |
| अश्वपत्न्यादिभ्यप्रच | ४।१।८४ | पृ. ३५३ | उ. ७५ |
| अश्वस्येकासममः | ५।२।१८ | उ. ४२ | उ. २८७ |
| अश्ववाचस्यात् | ७।४।३७ | उ. ४४८ | उ. ८५७ |
| अश्ववादिभ्यःकञ् | ४।१।११० | पृ. ३६३ | उ. १०१ |
| अश्विमानथा | ४।४।१२६ | पृ. ४८५ | उ. २२३ |
| अश्वइत्ताश्रितावर्ज० | ५।४।७ | उ. १०३ | उ. ३७२ |
| अश्वष्टतृतीयास्य० | ६।३।८८ | उ. २८५ | उ. ६१७ |
| अष्टन आ विभक्ती | ७।२।८४ | उ. ३८७ | उ. ७८६ |
| अष्टनः सजायाम् | ६।३।१२५ | उ. २८२ | उ. ० |
| अष्टनो वीचीत् | ६।१।१७२ | उ. १८२ | उ. ५११ |
| अष्टाभ्य श्रीण् | ७।१।२१ | उ. ३४६ | उ. ७०८ |
| असयोगाल्लिङ् कित् | १।२।५ | पृ. ३२ | पृ. १५१ |
| असंज्ञायां तिल० | ४।३।१४६ | पृ. ४५६ | उ. १८४ |
| असमासे निष्का० | ५।१।२० | उ. ७ | उ. ३७८ |
| असाप्रतिके | ४।३।८ | पृ. ४२४ | उ. १६३ |
| असिञ्जवत्राभात् | ६।४।२२ | उ. ३०१ | उ. ६४० |
| असुरस्य ह्यम् | ४।४।१२३ | पृ. ४२५ | उ. २२२ |
| असुर्येलाटयो० | ६।२।७६ | पृ. २२६ | पृ. ६१६ |
| अस्त च | १।४।६८ | पृ. ८५ | पृ. ३२३ |
| अस्तासि च | ५।३।४० | उ. ८२ | उ. ३४१ |
| अस्तिनास्तिदिष्ट० | ४।४।६० | पृ. ४७२ | उ. २१० |
| अस्तिविचोपुत्ते | ७।३।८६ | उ. ४३५ | उ. ८३८ |

| | आ पा सू | | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|------------------------|-------------|--|--------|-----|----------|------|
| | | | | | | |
| अस्तौर्भू. | २ । ४ । ५२ | | पू | १७३ | पू. | ४८३ |
| अस्थित्वितकथ्य० | ५ । १ । ७५ | | उ | ३६९ | उ. | ७३२ |
| अस्मदौतुयोप्रच | १ । २ । ५६ | | पू | ४६ | पू | १६७ |
| अस्मद्यु तम | १ । ४ । १०७ | | पू | १०२ | पू | ३४० |
| अस्मायामंधास्र० | ५ । २ । १२१ | | उ | ६६ | उ | ३८७ |
| अस्य च्यौ | ७ । ४ । ३२ | | उ | ४४७ | उ | ८५६ |
| अस्यत्तितुयोः क्रिया० | ३ । ४ । ५७ | | पू | ३१५ | पू | ७३५ |
| अस्यत्तित्याक्तख्याति० | ३ । १ । ५२ | | पू | १६६ | पू | ५६९ |
| अस्यते स्युक्त | ७ । ४ । १७ | | उ | ४४४ | उ | ८५३ |
| अस्याङ्गपूर्वपठान्ता | ४ । १ । ५३ | | पू | ३४५ | उ | ५४ |
| अह सर्वकवेणसख्या० | ५ । ४ । ८७ | | उ | १२३ | उ | ४०० |
| अहंशुभमोर्गुस् | ५ । २ । १४० | | उ | ७४ | उ. | ३३१ |
| अचन् | ८ । २ । ६८ | | उ | ५१३ | उ | ६५१ |
| अर्चानि द्वितीया | ६ । ३ । ४७ | | उ | २२२ | उ | ५४० |
| अर्हेति विनियोगे च | ८ । १ । ६९ | | उ. | ४६३ | उ | ६११ |
| अती च | ८ । १ । ४० | | उ. | ४७७ | उ | ६०५ |
| अहृष्टयोरिव | ६ । ४ । १४५ | | उ | ३३९ | उ | ६६० |
| अह्नाद्यन्तात् | ८ । ४ । ७ | | उ | ५५६ | उ | १०२० |
| अह्नीहृ गतभ्यः | ५ । ४ । ८८ | | उ | १२४ | उ | ४०९ |
| आकडारादेका संज्ञा | १ । ४ । १ | | पू | ७८ | पू | २० |
| आकर्षाण्टल् | ४ । ४ । ६ | | पू | ४४३ | उ | २०२ |
| आकर्षादिभ्यः कन् | ५ । २ । ६४ | | उ | ५५ | उ | ३७७ |
| आकालिकडायन्त० | ५ । १ । ११४ | | उ. | ३० | उ. | २६६ |
| आकान्दादुश्च | ४ । ४ । ३८ | | पू | ४६८ | उ. | २०६ |
| आक्षोभे च | ६ । २ । १५८ | | उ | २५१ | उ | ५६८ |
| आक्षोभे नञ्यनिः | ३ । ३ । ११२ | | पू. | २८३ | पू | ६६९ |
| आक्षोभे (अन्यार्थः) | ३ । ३ । ४५ | | पू | २७० | पू | ६०८ |
| आक्षोस्तच्छीलत्० | ३ । २ । १३४ | | पू | २४७ | पू | ६५० |
| आख्यातौपयोगे | १ । ४ । २६ | | पू | ८४ | पू | २८८ |
| आग्नीचीनः | ५ । २ । १४ | | उ | ४१ | उ | २८६ |
| आगस्यकीयिह्न्य० | २ । ४ । ७० | | पू. | १७६ | पू. | ४६९ |
| आगृह्यायययथस्यादृक् | ४ । २ । २६ | | पू. | ३८६ | उ | १३१ |
| आङ् उद्गमने | १ । ४ । ४० | | पू. | ६४ | पू | २३७ |
| आङ् चापः | ७ । ३ । १०५ | | उ. | ४३७ | उ | ८४० |
| आङ् ताच्छीक्ये | ३ । २ । ११ | | पू. | २२१ | पू | ६५४ |
| आङ् युद्धे | ६ । ३ । ७६ | | पू | २७५ | पू. | ० |
| आङ्गी वानास्यविहृ० | १ । ३ । २० | | पू | ५७ | पू | ३३० |

| | काशिक्षा | | पठमञ्जरी | | |
|----------------------|----------|----|----------|----|------|
| | भा | पा | पु | पु | |
| आखी नास्त्रियाम | ७।३।१२० | उ | ४४० | उ | ८४४ |
| आखीनुनासिक० | ८।१।१२६ | उ | १७८ | उ | ४८६ |
| आखी यमशन. | १।३।१२२ | पु | ६० | उ | २३३ |
| आखी धि | ७।१।६५ | उ | ३५७ | उ | ७२५ |
| आङ्गर्थावाभिधिः | २।१।१३ | पु | १०८ | पु | ३५६ |
| आङ्गर्थादायचने | १।४।८६ | पु | ६६ | पु | ३२६ |
| आङ्गाङ्गीप्रच | ६।१।७४ | उ | १६४ | उ | ४५५ |
| आ च त्यात् | ५।१।१२० | उ | ३२ | उ | २७४ |
| आ च ही | ६।४।११७ | उ | ३३४ | उ | ६८१ |
| आद्यायापसर्जन० | ६।२।१०४ | उ | २३५ | उ | ५३६ |
| * आद्यायापसर्जनप्रच० | ६।२।३६ | उ | २१७ | उ | ५५४ |
| आच्छीनद्योर्नुम् | ७।१।८० | उ | ३६२ | उ | ७३३ |
| आञ्जसेरमुक् | ७।१।५० | उ | ३५३ | उ | ७२० |
| आज्ञाधिनि च | ६।३।५ | उ | २६२ | उ | ० |
| आटप्रच | ६।१।६० | उ | १६६ | उ | ४६६ |
| आडजादीनाम् | ६।४।७२ | उ | ३१३ | उ | ६६७ |
| आहुतमस्मिपिच | ३।४।६२ | पु | ३२४ | पु | ७४६ |
| आकक्षाचितपात्रा० | ५।१।५३ | उ | १५ | उ | २४६ |
| आक्यमुभगस्थूल० | ३।२।५६ | पु | २३० | पु | ६२० |
| आक्यनद्याः | ७।३।११२ | उ | ४३६ | उ | ८४२ |
| आत ऐ | ३।४।६५ | पु | ३२४ | पु | ७४६ |
| आत औ बालः | ७।१।३४ | उ | ३४६ | उ | ७१३ |
| आतः | ३।४।११० | पु | ३२७ | पु | ७५३ |
| आतपचोपसर्ग | *३।१।१३६ | पु | २१६ | पु | ० |
| आतपचोपसर्ग | ३।३।१०६ | पु | २८१ | पु | ० |
| आतीकित. | ७।२।८९ | उ | ३६७ | उ | ६८६ |
| आतीकटि नित्यं | ८।३।३ | उ | ५३७ | उ | ७८५* |
| आती धातोः | ६।४।१४० | उ | ३२६ | उ | ६८८ |
| आतीनुपसर्गं कः | ३।२।३ | पु | २१६ | पु | ६११ |
| आती मनिन्कानि० | ३।२।७४ | पु | २३५ | पु | ६३७ |
| आती युक्तिष्० | ७।३।३३ | उ | ४१८ | उ | ८१३ |
| आती युक् | ३।३।१२८ | पु | २८७ | पु | ० |
| आतीलोप इटि च | ६।४।६४ | उ | ३१२ | उ | ६६५ |
| आत्मनप्रच पूरयो | ६।३।६ | उ | २६२ | उ | ५८२ |
| आत्मनेपदैधनतः | ७।१।५ | उ | ३३३ | उ | ७०३ |

* अत्र सूत्रेयासिनीइति अशु. चासीति पु. ।

| | अ | पा | सू | काशिका | पत्रमञ्जरी |
|------------------------|---------|----|----|--------|------------|
| | | | | पृ | पृ |
| आत्मनोपदेश्यत्वम्० | २।४।४४ | | | पृ १७९ | पृ ४८२ |
| आत्मनोपदेश्यत्वम्० | ३।१।५४ | | | पृ १८७ | पृ ५३२ |
| आत्मस्विप्रयजन० | ५।१।८ | | | उ ३ | उ ३३१ |
| आत्ममाने स्वप्रच | ३।२।८३ | | | पृ ७३७ | पृ ६३६ |
| आत्माध्यायी ख | ६।४।१६६ | | | उ ३३७ | उ ० |
| आधर्माधिकार्यम्० | ४।३।१३३ | | | पृ ४५३ | उ ६६० |
| आद्वैतानुसारेण स० | १।४।६३ | | | पृ ६४ | पृ ३२९ |
| आदाचार्याणां | ७।३।४६ | | | उ ४२४ | उ ८२९ |
| आदि प्रत्यनसि | ६।२।२७ | | | उ २९४ | उ ५३४ |
| आदिः सिचोन्व० | ६।१।१८७ | | | उ १६५ | उ ५९८ |
| आदिकर्मणा क क० | ३।४।७९ | | | पृ ३९६ | पृ ७४२ |
| आदितप्रच | ७।२।१६ | | | उ ३७७ | उ ७६० |
| आदितरनयेन सशैला | १।१।७९ | | | पृ २६ | पृ १४९ |
| आदिरुवातः | ६।२।८४ | | | उ २२६ | उ ५४७ |
| आदिजिदुद्धयः | १।३।५ | | | पृ ५४ | पृ २९६ |
| आदिर्गोमुन्वयत्व० | ६।१।१६४ | | | उ १६८ | उ ५२० |
| आदिप्रियवशातीनाम् | ६।२।१३५ | | | उ ३४० | उ ५५६ |
| आद्वैतमश्नजन० | ३।२।१७९ | | | पृ २५५ | पृ ६५८ |
| आदेः परस्व | १।१।५४ | | | पृ २९ | पृ १०२ |
| आदे ख उपदेशे ऽग्नि० | ६।१।४५ | | | उ १५५ | उ ४३८ |
| आदेशप्रत्यययोः | ८।३।५६ | | | उ ५४२ | उ ८६७ |
| आनुषः | ६।१।८७ | | | उ १६८ | उ ४६८ |
| आद्यन्तयदेकस्मिन् | १।१।२९ | | | पृ १९ | पृ ७२ |
| आद्यन्ती दक्षिणी | १।१।४६ | | | पृ १८ | पृ ६९ |
| आद्युवात् द्व्यच्छन्द० | ६।२।१९६ | | | उ २३६ | उ ५५७ |
| आद्युवात्प्रच | ३।१।३ | | | पृ १८३ | पृ ५०३ |
| आधारोऽधिकरणम् | १।४।४५ | | | पृ ८७ | पृ ३६६ |
| आनङ् कति तुम्हे | ६।३।२५ | | | उ २६७ | उ ५८६ |
| आन्वय्योऽनित्ये | ३।१।१२७ | | | पृ २५३ | पृ ६०९ |
| आनि लोद् | ८।४।५६ | | | उ ५६२ | उ १०२३ |
| आने मुक् | ७।२।८२ | | | उ ३६७ | उ ७८५ |
| आत्मज्ञतः समाप्ता० | ६।३।४६ | | | उ २७३ | उ ५६६ |
| आप्तस्य च सखि० | ६।४।१५९ | | | उ ३३३ | उ ६६२ |
| आप्तोक्त्याद्योद् | ६।१।१९८ | | | उ १७६ | उ ४८३ |
| आप्तोक्त्याद्योद् | ७।४।१५ | | | उ ४४४ | उ ० |
| आप्तोक्त्याद्योद् | ७।४।५५ | | | उ ४५२ | उ ८६२ |
| आप्तोक्त्याद्योद् | ५।२।८ | | | उ ३६ | उ ३६२ |

| | काशिका | | पद्यमञ्जरी | | |
|------------------------|---------|-----|------------|-----|-----|
| | अ पा सू | पु | पु | पु | |
| आवाधे च | ८।१।१० | उ | ४६६ | उ | ८६० |
| आभीक्ष्यये गामुल् च | ३।४।३५ | सू | ३०० | सू. | ७३४ |
| आम् एकान्तरमाम० | ८।१।५५ | उ | ४८१ | उ | २०६ |
| आमः | २।४।८९ | सू | १८१ | सू. | ४६५ |
| आमन्त्रितं पूर्वमग्नि० | ८।१।७२ | उ. | ४८७ | उ. | ६१७ |
| आमन्त्रितस्य च | ६।१।१६८ | उ. | १६८ | उ. | ५३१ |
| आमन्त्रितस्य च | ८।१।१६ | उ. | ४७० | उ. | ८६० |
| आमि सर्वनाम् सुट | ७।१।५२ | उ. | ३५४ | उ. | ७२० |
| आमेतः | ३।४।६० | सू | ३२३ | सू. | ७४६ |
| आम्पत्ययवत्कञ्जानु० | १।३।६३ | सू | ६६ | सू. | २४४ |
| आम्नेडित भर्त्सने | ८।१।६५ | उ. | ५३१ | उ. | ६६६ |
| आम्नेयोनीयियः फट्० | ७।१।३ | उ. | ३४१ | उ. | ७०० |
| आम्पादय आर्द्धधातु० | ३।१।३१ | सू. | १६१ | सू. | ५४४ |
| आम्पुक्तकुपलाभ्या० | २।३।४० | सू. | १४६ | सू. | ४३६ |
| आम्पुधनीयिभ्यश्च० | ४।३।६५ | सू. | ४४३ | उ. | १८३ |
| आम्पुधनीयिसघा० | ५।३।११४ | उ. | ६६ | उ. | ३६८ |
| आम्पुधाच्छ च | ४।४।१४ | सू. | ४६४ | उ. | २०३ |
| आम्पुदीचाम् | ४।१।१३० | सू. | ६६८ | उ. | १०६ |
| आर्धधातुर्क षेपः | ३।४।११४ | सू | ३३८ | सू. | ७५३ |
| आर्द्धधातुर्कस्येद० | ७।२।३५ | उ. | ३८३ | उ. | ७६७ |
| आर्धधातुर्के | ३।४।३५ | सू. | १६६ | सू. | ४८० |
| आर्धधातुर्के | ३।४।४६ | उ. | ३०७ | उ. | ६५५ |
| आर्था ब्राह्मणकुमा० | ३।२।५८ | उ. | २२४ | उ. | ० |
| आर्थादगोपुच्छसंख्या० | ६।१।१६ | उ. | ६ | उ. | ३६७ |
| आर्त्तजाटयो अहु० | ५।२।१३५ | उ. | ७० | उ. | ३२८ |
| आवट्याच्च | ४।१।७५ | सू. | ३५० | उ. | ० |
| आवप्रयकाधमवर्ष० | ३।३।१७० | सू. | २२६ | सू. | ७१२ |
| आवसधात् ष्टल् | ४।४।७४ | सू. | ४७६ | उ. | ३१३ |
| आवसाया भूतवच्च | ३।३।१३२ | सू. | २८८ | सू. | ६६० |
| आवसावचश्च लिङ् | ३।३।१३४ | सू. | २८८ | सू. | ६६६ |
| आवसावचानेदीय० | ३।३।३१ | उ. | २१२ | उ. | ५३३ |
| आवसितः कर्ता | ६।१।३०७ | उ. | ३०० | उ. | ५२३ |
| आवसिते भुवः करण० | ३।३।४५ | सू. | ३३७ | सू. | ६२० |
| आवसि च | ३।१।१५० | सू. | २१८ | सू. | ६०६ |
| आवसि नाथः | ३।३।५५ | सू. | १५२ | सू. | ४५० |
| आवसि लिङ्लोटी | ३।३।१७२ | सू. | ३०० | सू. | ७१३ |
| आवसि हनः | ३।३।४६ | सू. | २३८ | सू. | ६३१ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|------------------------------|---------|-------|----------|--------|
| | अ | पा सू | पु | पु |
| आप्रथममनित्ये | ६।१।१४७ | उ | १८४ | उ ४८७ |
| आप्रथयुक्त्वा युञ्ज | ४।३।४५ | पु | ४३१ | उ १७२ |
| आसवीषदृष्टीयज्ञ० | ८।२।१२ | उ | ४६७ | उ ६३५ |
| आ सर्वनाम्नः | ६।३।६१ | उ | २८४ | उ ६१६ |
| आसुयुधपिरिपल० | ३।१।१२६ | पु | २१२ | पु ६०१ |
| आस्यव प्रतिष्ठा० | ६।१।१४६ | उ | १८४ | उ ४६७ |
| आप्तस्य. | ८।२।३५ | उ | ५०४ | उ ६४६ |
| आचि च वृरे | ५।३।३७ | उ | ८१ | उ ३४० |
| आद्यो उताद्यो धानन्त० | ८।१।४६ | उ | ४८० | उ ६०७ |
| ब्रह्मः काशे | ६।३।१२३ | उ | २६१ | उ ६२२ |
| ब्रह्मः सुजि | ६।३।१३४ | उ | २६३ | उ ६२३ |
| ब्रह्मो गुणवृद्धी | १।१।३ | पु | ६ | पु ४० |
| ब्रह्मो ऽचि विभक्तौ | ७।१।७३ | उ | ३५६ | उ ७२८ |
| ब्रह्मो भक्त | १।२।६ | पु | ३३ | पु १५४ |
| ब्रह्मो यथाधि | ६।१।७७ | उ | ११५ | उ ४५६ |
| ब्रह्मो यत्त ऽपीलोः | ६।३।१२१ | उ | २६१ | उ ६२२ |
| ब्रह्मो ऽस्यार्थापाक० | ६।१।१२७ | उ | १७८ | उ ४८७ |
| ब्रह्मो ह्यस्यो ऽह्योमा० | ६।३।६१ | उ | २७७ | उ ६०५ |
| ब्रह्मन्तकालकपालभ० | ६।२।२६ | उ | २१४ | उ ५३४ |
| ब्रह्मन्ताच्छ लघुपूर्वात् | ५।१।१३१ | उ | ३६ | उ २७६ |
| ब्रह्मवधज्ञापीकिरः० | ३।१।१३५ | पु | २१६ | पु ६०५ |
| ब्रह्मवधः संप्रसारण | १।१।४५ | पु | १६ | पु ६१ |
| ब्रह्मवध | २।४।४८ | पु | १७२ | पु ० |
| ब्रह्मवध | ३।३।२१ | पु | २६५ | पु ६७३ |
| ब्रह्मधार्म्यः शत्रुक० | ३।२।१३० | पु | २४८ | पु ६५० |
| ब्रह्म शक्राद्यो ऽम्प्रत्यय० | ६।३।६८ | उ | २७६ | उ ६०८ |
| ब्रह्म कर्मव्यतिहार | ५।४।१२७ | उ | १३३ | उ ४०८ |
| ब्रह्मका | ३।३।१०१ | पु | २८० | पु ६८७ |
| ब्रह्मकार्यभ्यो विभा० | ३।३।१६० | पु | २६७ | पु ७०६ |
| ब्रह्मकार्यसु लिङ्गलो० | ३।३।१५७ | पु | २६६ | पु ७०८ |
| ब्रह्माद्यैः सनुमः | ८।४।३२ | उ | ५६६ | उ १०२८ |
| ब्रह्माद्यैश्च गुह्यमता ऽन्० | ३।१।३६ | पु | १६२ | पु ५४६ |
| ब्रह्मा प्राधान्य | २।४।६७ | पु | १७५ | पु ४८६ |
| ब्रह्मवध | ४।२।११२ | पु | ४१३ | उ १५४ |
| ब्रह्म ब्रह्मि | ८।२।२८ | उ | ५०२ | उ ६४३ |
| ब्रह्मिन् | ३।४।१४६ | पु | ३२६ | पु ७५१ |
| ब्रह्म सनि धा | ७।२।४१ | उ | ३८५ | उ ७७३ |

| | काशिका | पद्यमञ्जरी |
|--------------------------|---------|------------|
| अ पा. मू | पृ | पृ |
| अद्वयर्चिष्यपतीनाम् | ७।३।६६ | ७।३।६६ |
| अडाया प्रा | ८।३।५४ | ७।३।६६ |
| असाः पः | ८।३।३६ | ७।३।६६ |
| असाः शीर्षं लुक्निटां० | ८।३।७८ | ७।३।६६ |
| अयो गा लुङि | २।४।४६ | ७।३।६६ |
| अयो यण् | ६।४।८९ | ७।३।६६ |
| अयकोः | ८।३।५७ | ७।३।६६ |
| अयनगजिसर्तिभ्यः | ३।३।१६३ | ७।३।६६ |
| अयिनष्टायाम् | ७।३।४३ | ७।३।६६ |
| अतराभ्यो ऽपि वृषयन्ते | ५।३।१४ | ७।३।६६ |
| अतरैतरान्योन्योपपदा० | ९।३।१६ | ७।३।६६ |
| अतप्रच | ३।४।१०० | ७।३।६६ |
| अतप्रच लोपः परस्मैप० | ३।४।६७ | ७।३।६६ |
| अतप्रचानिञः | ४।१।१२२ | ७।३।६६ |
| अतोत्सर्वनामस्थाने | ७।१।८६ | ७।३।६६ |
| अतो मनुष्यजातः | ४।१।६५ | ७।३।६६ |
| अत्यभूतलक्षणे | २।३।२९ | ७।३।६६ |
| अत्यभूतेन क्तमि० | ६।३।१४६ | ७।३।६६ |
| अर्धकर्मोरीशकी | ६।३।६० | ७।३।६६ |
| अत्र तोमसि | ७।१।४६ | ७।३।६६ |
| अदम अण् | ५।३।३ | ७।३।६६ |
| अदम स्थमु० | ५।३।२४ | ७।३।६६ |
| अदमो (स्त्रादेशे) ऽणतुं० | २।४।६२ | ७।३।६६ |
| अदमो मः | ७।३।१०८ | ७।३।६६ |
| अदमोर्तिंस् | ५।३।१६ | ७।३।६६ |
| अदमो हः | ५।३।१९ | ७।३।६६ |
| अदितो नुम्धातोः | ७।१।५८ | ७।३।६६ |
| अदुदुपपस्य चाप्रत्ययो | ८।३।४९ | ७।३।६६ |
| अदुद्दयाम् | ७।३।१९७ | ७।३।६६ |
| अदो ऽय् पुंसि | ७।३।१९९ | ७।३।६६ |
| अदोययाः | ९।३।५० | ७।३।६६ |
| अद्वरिद्वस्य | ६।४।१९४ | ७।३।६६ |
| अद्वृद्धौ | ६।४।१८८ | ७।३।६६ |
| अनाः स्त्रियाम् | ५।४।१५२ | ७।३।६६ |
| अनचूपिठच्चिकचि च | ५।३।३३ | ७।३।६६ |
| अनययनपत्ये | ६।४।१६४ | ७।३।६६ |
| अनिप्रकटयचप्रच | ४।३।५९ | ७।३।६६ |

| | श्र पा. सू | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------------|------------|--------|-----|----------|-----|
| | | पृ | पृ | पृ | पृ |
| अनुसूयसगभयशर्मरु० | ४।१।४८ | पृ | ३४४ | अ | ५१ |
| अनुसूयमिन्द्रलिङ्गमि० | ५।२।८३ | अ | ६१ | अ | ३१५ |
| अनुसूय 'नित्यम्' | ६।१।१२४ | अ | १७८ | अ | ४८५ |
| अन्धभवतिभ्या च | १।२।६ | पृ | ३२ | पृ | १५३ |
| अन्तनुपार्यम्णा प्री | ६।४।१२ | अ | २६७ | अ | ३३१ |
| अरयो रे | ६।४।७६ | अ | ३१४ | अ | ६६६ |
| अरिता वा | ३।१।५७ | पृ | १६७ | पृ | ५८३ |
| अथे प्रतिकृती | ५।३।६६ | अ | १५ | अ | ३६६ |
| अपुगमियमा क' | ७।३।७७ | अ | ४३० | अ | ८२८ |
| अष्टकोपीकामा० | ६।३।६५ | अ | २७८ | प | ६०३ |
| अष्टस्य विद् च | ६।४।१५६ | अ | ३३५ | अ | ६६५ |
| अष्टादिभ्यश्च | ५।२।८८ | अ | ६० | अ | ० |
| अष्टोनिमित्तं च | ७।१।४८ | अ | ३५३ | प | ० |
| असुमुक्तान्तात्काः | ७।३।५१ | अ | ४२४ | अ | ८२२ |
| असुतोः सामर्थ्यं | ८।३।४४ | अ | ५३८ | अ | ६६१ |
| अस्मन्त्वन्वियेषु च | ६।४।६७ | अ | ३१६ | अ | ६७५ |
| अधाधोः | ७।४।३१ | अ | ४४७ | अ | ८५८ |
| अं च त्यनः | ३।१।११२ | पृ | २०६ | पृ | ५६६ |
| अं च गणः | ७।४।६७ | अ | ४६३ | अ | ८७४ |
| अं च द्वियचने | ७।१।७७ | प | ३६१ | प | ७३३ |
| अं चाकथर्मशास्य | ६।१।१३० | अ | १७६ | अ | ४८८ |
| अंङानोऽर्थं च | ७।२।७८ | अ | ३६५ | अ | ७८३ |
| अंङयन्त्वृशसदुक्ता० | ६।१।२१४ | अ | २०२ | अ | ५२४ |
| अंङयने. सोमवक्रयाधोः | ६।३।७ | अ | २६७ | अ | ० |
| अंदासः | ७।२।८३ | अ | ३६७ | अ | ७८६ |
| अंभुती च सप्रम्यर्थं | १।१।१६ | पृ | ११ | पृ | ६६ |
| अंभुवेत्त्रियचनं प्रगक्षाम् | १।१।११ | पृ | ६ | पृ | ६१ |
| अंभ्यति | ६।४।६५ | प | ३२२ | अ | ६६६ |
| अंभ्यश्च | ५।४।१५६ | अ | १३६ | अ | ४१२ |
| अंभ्यः | ६।१।२२१ | अ | २०३ | अ | ५२५ |
| अंभ्यः से | ७।२।७७ | अ | ३६५ | प | ७८६ |
| अंभ्यरे तीसुन्कनुनौ | ३।४।१३ | पृ | ३०५ | पृ | ७२१ |
| अंभ्यक्षता | २।२।७ | पृ | १३७ | पृ | ३८६ |
| अंभ्यन्त्यतस्वाम् | ६।२।५४ | अ | ३३४ | अ | ५४५ |
| अंभ्यर्थं | ६।३।१०५ | अ | २८६ | अ | ६१८ |
| अंभ्यसमाप्ता कल्पच्छे० | ५।३।६७ | अ | ८२ | अ | ३५५ |
| अंभ्यसुःसुपु कल्पच्छे० | ३।३।१२६ | पृ | २८६ | पृ | ६६५ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | | |
|---------------------------|----------|----|----------|----|------|
| | अ पा मृ. | पु | पु | पु | |
| ई शल्ययोः | ४।४।११३ | उ | ३२३ | उ | ४८० |
| उगधादिभ्यो यस् | ५।१।२ | उ | १ | उ | २२८ |
| उगितप्रच | ४।१।४ | पु | ३३१ | उ | २० |
| उगितप्रच | ४।३।४५ | उ | ३७३ | उ | ५६६ |
| उगितवर्त्त सर्थनाम० | ७।१।७० | उ | ३५८ | उ | ७२४ |
| उग्रपथेरमद्वयाशिध० | ३।२।३७ | पु | ३२४ | प | ४१६ |
| उच्चीकवात्तः | १।३।२६ | पु | ३८ | पु | १४८ |
| उच्चीस्तरा वा वषट्कारः | १।२।३५ | पु | ४० | पु | १७३ |
| उज. | १।१।१७ | पु | १० | पु | ४८ |
| उजि च पदे | ८।३।३१ | उ | ५३१ | उ | ६८० |
| उञ्छति | ४।४।३२ | पु | ४४७ | उ | ० |
| उञ्छादीना च | ४।१।१६० | उ | १८८ | उ | ५०४ |
| उणावयो अचुलम् | ३।३।१ | पु | २।६ | पु | ४५२ |
| उत्तश्च प्रत्यया० | ४।४।१०४ | उ | ३२१ | उ | ४७७ |
| उताप्योः समर्थयो० | ३।३।१५२ | पु | २६४ | पु | ७०५ |
| उता वृद्धिर्लुकि हलि | ७।३।८६ | उ | ४३४ | उ | ६३४ |
| उत्क उन्मनाः | ५।३।८० | उ | ५८ | उ | ३५१ |
| उत्करादिभ्यप्रकः | ४।२।६० | पु | ४०७ | उ | ० |
| उत्तमेकाभ्या च | ५।४।६० | उ | १२४ | उ | ४०१ |
| उत्तरपथेनाहृतं च | ५।१।७७ | उ | २१ | उ | २५६ |
| उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च | ४।२।१०५ | उ | २३२ | उ | ५५५ |
| उत्तरपदस्य | ७।३।१० | उ | ४१० | उ | ८०५ |
| उत्तरपदादि. | ४।२।१११ | उ | २३७ | उ | ५५४ |
| उत्तरमगपूर्वाच्च सकृश्च | ५।४।६८ | उ | १२४ | उ | ० |
| उत्तराच्च | ५।३।३८ | उ | ८२ | उ | ३४० |
| उत्तराधरदक्षिणादा० | ५।३।३४ | उ | ८१ | उ | ३३६ |
| उत्तरस्यात्. | ७।४।८८ | उ | ४० | उ | ८७१ |
| उत्सादिभ्यो ङ | ४।१।८४ | पु | ३५४ | उ | ७७ |
| उत्त ईत् | ४।४।१३६ | उ | ३२६ | उ | ० |
| उत्त' स्यास्तम्भोः पूर्व० | ८।४।४१ | उ | १७३ | उ | ५०४४ |
| उत्तकस्योदाः सजायाम | ४।३।५७ | उ | २७४ | उ | ४०४ |
| उत्तकी कौवले | ४।२।६४ | उ | २३४ | उ | ५५४ |
| उत्तक् च विपाश. | ४।२।७४ | पु | ४०५ | पु | १४४ |
| उत्तङ्गो ऽनुवकी | ३।३।१३३ | पु | ७८५ | पु | ४६४ |
| उत्तङ्गानुवधी च | ४।२।१३ | उ | ४६८ | उ | ६४४ |
| उत्तङ्गाट्टगाङ्गुने | ५।२।४७ | उ | ५५ | उ | ३०४ |
| उत्तराधरेणुपु | ४।२।१०७ | उ | ३३४ | उ | ० |

| | अ | पा | मू | काशिका | पदमञ्जरी | | |
|------------------------|---|----|-----|--------|----------|-----|------|
| | | | | पृ | पृ | | |
| उदप्रहरः सकर्मकात् | १ | ३ | ५३ | पू. | ६७ | पू. | २४० |
| उदप्रियतो ऽन्यतरस्वा० | ४ | ३ | १६ | पू. | ३८५ | उ | १३० |
| उदानयणो शल्पूर्वात् | ६ | १ | १७४ | उ | १६२ | उ | ५१२ |
| उदात्तस्वरितपरस्य | १ | ३ | ४० | पू. | ४२ | पू. | १७६ |
| उदात्तस्वरितयोर्यथाः० | ८ | ३ | ४ | उ | ४६४ | उ | ६३० |
| उदात्तादनुदात्तस्य० | ८ | ४ | ६६ | उ, | ५७४ | उ, | ० ३६ |
| उदि कूल रुजिघ्नोः | ३ | ३ | ३१ | पू. | २२५ | पू. | ६१८ |
| उदि गघ्. | ३ | ३ | ३५ | पू. | २६७ | पू. | ६७५ |
| उदितो वा | ७ | ३ | ५६ | उ | ३८६ | उ, | ० |
| उदि श्रयतिथीतिपूनुवः | ३ | ३ | ४६ | पू. | २७० | पू. | ६७८ |
| उदीक्षा वृक्षादगो० | ४ | १ | १५७ | पू. | ३७५ | उ | ११४ |
| उदीक्षामात, स्याने० | ७ | ३ | ४६ | उ | ४२२ | उ | ८१६ |
| उदीक्षाभिञ्ज | ४ | १ | १५३ | पू. | ३७४ | उ. | ११२ |
| उदीक्षां माङ्गी व्यती० | ३ | ४ | १६ | पू. | ३०६ | पू. | ७२२ |
| उदीक्षायामाञ्ज शङ्ख० | ४ | ३ | १०६ | पू. | ४१२ | उ | १५३ |
| उदुग्धाद्वावादिर्कर्म० | १ | ३ | २१ | पू. | ३६ | पू. | १६३ |
| उदीनू० कर्मणि | १ | ३ | २४ | पू. | ५६ | पू. | २३२ |
| उदीष्टप्रथमस्य | ७ | १ | १०२ | उ | ३६७ | उ | ७४५ |
| उद्धने ऽस्याधानम | ३ | ३ | ८० | पू. | २७६ | पू. | ६८३ |
| उद्धिभ्या काकुवस्य | ५ | ४ | १४८ | उ | १३७ | उ | ० |
| उद्धिभ्या तपः | १ | ३ | २७ | पू. | ६० | पू. | २३३ |
| उन्धोर्य, | ३ | ३ | ३६ | पू. | २६६ | पू. | ६७३ |
| उपक्रादिभ्योन्यतर० | २ | ४ | ६६ | पू. | १७६ | . | ४६१ |
| उपघ्न आश्रये | ३ | ३ | ८५ | पू. | ३७७ | पू. | ६८३ |
| उपज्ञानूपकर्षापरमी० | ४ | ३ | ४० | पू. | ४३० | उ | १७१ |
| उपज्ञाने | ४ | ३ | ११५ | पू. | ४४६ | उ | १८७ |
| उपज्ञापरकम तद्वाद्या० | २ | ४ | २१ | पू. | १६४ | पू. | ४७२ |
| उपदेशस्तुतोऽयाम | ३ | ४ | ४७ | पू. | ३१२ | पू. | ७३२ |
| उपदेशे ऽनुनासिक० | १ | ३ | २ | पू. | ५३ | पू. | २१३ |
| उपदेशे ऽत्यसः | ७ | २ | ६२ | उ, | ३६१ | उ | ७७६ |
| उपधारां च | ८ | ३ | ७८ | उ | ५१६ | उ | ६५७ |
| उपधाराश्च | ७ | १ | १०१ | उ | ३६७ | उ | ७४५ |
| उपधवमतिञ्ज | २ | ३ | १६ | पू. | १३० | पू. | ४०० |
| उपधराभ्याम् | १ | ३ | ३६ | पू. | ६३ | पू. | २३७ |
| उपमान शब्दार्थ० | ६ | ३ | ८० | उ | २३० | उ | ५५० |
| उपमानाश्च | ५ | ४ | १३७ | उ, | १३५ | उ | ० |
| उपमानावप्राणिपु | ५ | ४ | ६७ | उ | १३६ | उ | ४०२ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|------------|---------------|-----------------|
| उपमानाटाचारे | ३।१।१० | पृ. १९५ | पृ. ५९८ |
| उपमानानि सामान्य० | २।१।५५ | पृ. १९६ | पृ. ३७६ |
| उपमाने कर्मणि च | ३।४।४५ | पृ. ३९२ | पृ. ० |
| उपमितं व्याघ्रादिभिः० | २।१।५६ | पृ. १२० | पृ. ३७८ |
| उपरिखिटासीदि० | ८।२।१०२ | उ. ५२३ | उ. ६६८ |
| उपर्यध्यधसः सामोष्ये | ८।१।७ | उ. ४६५ | उ. ८८६ |
| उपर्युपरिष्ठात् | ५।३।३९ | उ. ८० | उ. ० |
| उपसंवादाशङ्कयोश्च | ३।४।८ | पृ. ३०४ | पृ. ७२० |
| उपसर्गप्राटुर्भ्याम० | ८।३।८७ | उ. ५४१ | उ. १००६ |
| उपसर्गव्यपेतञ्च | ८।१।३८ | उ. ४७७ | उ. ६०४ |
| उपसर्गस्य घञ्यम० | ६।३।१२२ | उ. २६१ | उ. ६२२ |
| उपसर्गस्यायतो | ८।२।१६ | उ. ४६६ | उ. ६३६ |
| उपसर्गाः क्रियायोगे | १।४।५६ | पृ. ६२ | पृ. ३९६ |
| उपसर्गाञ्च | ५।४।१९६ | उ. १३१ | उ. ४०६ |
| उपसर्गाच्छन्दमि० | ५।१।११८ | उ. ३१ | उ. २७१ |
| उपसर्गात्प्लुचञेः | ७।१।६७ | उ. ३५८ | उ. ७२५ |
| उपसर्गात्सुनोतिमुद्य० | ८।३।६५ | उ. ५४४ | उ. १००९ |
| उपसर्गात्स्याङ्गं ध्रु० | ६।२।१७७ | उ. २५५ | उ. ५७३ |
| उपसर्गादध्यनः | ५।४।८५ | उ. १२३ | उ. ४०० |
| उपसर्गादसमासेपि० | ८।४।१४ | उ. ५६१ | उ. १०२३ |
| उपसर्गाद्वृत्ति धातो | ६।१।६१ | उ. १६६ | उ. ४७० |
| उपसर्गादप्रत्यय कृतेः | ७।४।२३ | उ. ४४५ | उ. ८५४ |
| उपसर्गादुहलम् | ८।४।२८ | उ. ५६५ | उ. १०२७ |
| उपसर्गे घोः क्रिः | ३।३।६२ | पृ. २७८ | पृ. ० |
| उपसर्गे च संज्ञायाम् | ३।२।६६ | पृ. २४० | पृ. ६३४ |
| उपसर्गे ऽदः | ३।३।५६ | पृ. २७२ | पृ. ६८० |
| उपसर्गे रुवः | ३।३।२२ | पृ. २६५ | पृ. ० |
| उपसर्जनं पूर्वम् | २।२।३० | पृ. १३४ | पृ. ४९३ |
| उपसर्गाकाल्याप्र० | ३।१।१०४ | पृ. २०७ | पृ. ५६४ |
| उपाञ्च | १।३।८४ | पृ. ७४ | पृ. २५७ |
| उपाजेऽन्वाजे | १।४।७३ | पृ. ६६ | पृ. ० |
| उपात्प्रतियक्वैकृत० | ६।१।१३६ | उ. १८२ | उ. ४६४ |
| उपात्प्रसंसायाम् | ७।१।६६ | उ. ३५८ | उ. ७२५ |
| उपाद् द्व्यञ्जिनमर्गा० | ६।२।१६४ | उ. २५६ | उ. ५७५ |
| उपाद्यमः स्वकरणे | १।३।५६ | पृ. ६७ | पृ. २४१ |
| उपाधिभ्यां त्यक्त्वा० | ५।२।३४ | उ. ४५ | उ. २६२ |
| उपान्मन्त्रकरणे | १।३।२५ | पृ. ५६ | पृ. २६२ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|----------------------|------------|--------|-----|----------------------------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| उपान्वध्याङ्गसः | १।४।४८ | पृ. | ८८ | पृ. | ३०० |
| उपेयिद्याननाप्रवान० | ३।३।१०६ | पृ. | २४९ | पृ. { अ.पु. ६५३ सु. ६३७ | |
| उपोत्तमं रिति | ६।१।२१७ | अ. | २०२ | अ. | ० |
| उपोधिके च | १।४।८७ | पृ. | ६८ | पृ. | ३२६ |
| उप्ते च | ४।३।४४ | पृ. | ४३० | अ. | १७२ |
| उभयथर्त्तु | ८।३।८ | अ. | ५२८ | अ. | ० |
| उभयप्राप्तौ कर्मणि | २।३।६६ | पृ. | १५५ | पृ. | ४५४ |
| उभाटुटातो नित्यम् | ५।२।४४ | अ. | ४६ | अ. | २६८ |
| उभे अभ्यस्तम् | ६।१।५ | अ. | १४२ | अ. | ४२२ |
| उभे वनस्यत्याटिपु० | ६।३।१४० | अ. | २४४ | अ. | ५६३ |
| उभौ ज्ञान्यासस्य | ८।४।२९ | अ. | ५६३ | अ. | १०२५ |
| उभौर्गायोर्वा | ४।३।१५८ | पृ. | ४५६ | अ. | १६७ |
| उरःप्रभतिभ्यः कप् | ५।४।१५९ | अ. | १३८ | अ. | ४९० |
| उरण् रघरः | १।१।५९ | पृ. | २९ | पृ. | ६८ |
| उरत् | ७।४।६६ | अ. | ४५६ | अ. | ८६६ |
| उरसो ऽगच | ४।४।६४ | पृ. | ४८० | अ. | २९८ |
| उरसो यञ् | ४।३।११४ | पृ. | ४४६ | अ. | ० |
| उर्कत् | ७।४।७ | अ. | ४४२ | अ. | ८४६ |
| उश्च | १।३।१२ | पृ. | ३४ | पृ. | १५८ |
| उषटिज्जागभ्यो० | ३।१।३८ | पृ. | १६३ | पृ. | ५५९ |
| उषासोवसः | ६।३।३९ | अ. | २६८ | अ. | ५८८ |
| उष्टः साटिवाभ्योः | ६।२।४० | अ. | २२० | अ. | ५३७ |
| उष्ट्राद् युञ् | ४।३।१५७ | पृ. | ४५८ | अ. | ० |
| उस्यपदान्तात् | ६।१।६६ | अ. | १७९ | अ. | ४७९ |
| ऊँ | १।१।१८ | पृ. | ९९ | पृ. | ६८ |
| ऊकालो ऽऽकस्यटीर्चः | १।२।२७ | पृ. | ३७ | पृ. | १६५ |
| ऊङुतः | ४।१।६६ | पृ. | ३४८ | अ. | ६० |
| ऊङिउं पटाद्यप्सो० | ६।१।१७९ | अ. | १६९ | अ. | ५९९ |
| ऊङित्यूतिङ्गितिसाति० | ३।३।६७ | पृ. | २७६ | पृ. | ६८६ |
| ऊङनोर्दोषो | ६।३।६८ | अ. | २८५ | अ. | ६९७ |
| ऊङुपधाया गोष्ठः | ६।४।८६ | अ. | ३९७ | अ. | ६७२ |
| ऊङसो ऽनङ् | ५।४।१३९ | अ. | १३५ | अ. | ४०८ |
| ऊङार्थं ऋःतृती० | ६।२।१५३ | अ. | २४६ | अ. | ५६७ |
| ऊङस्यपटादीभ्यो | ४।१।६६ | पृ. | ३४६ | अ. | ६९ |
| ऊङाया पुस् | ५।२।१३३ | अ. | ७० | अ. | ३२८ |
| ऊङातिविभाषा | ७।२।६ | अ. | ३७० | अ. | ० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|--------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| ऊर्धातिर्दिभाषा | ७।३।१० | उ. ४३४ | उ. ० |
| ऊर्ध्वादिभाषा | ५।४।१३० | उ. १३४ | उ. ० |
| ऊर्ध्वं शुषिपूरोः | ३।४।४४ | प. ३१२ | प. ७३२ |
| ऊर्धादिच्चडाचश्च | १।४।६१ | प. १३ | प. ३२० |
| ऊषसुपिमुष्कमधो रः | ५।२।१०७ | उ. ६५ | उ. ३३३ |
| ऋक्परब्धःप्रथामानत्रे | ५।४।७४ | उ. १२० | उ. ३२७ |
| ऋचः श्रे | ६।३।५५ | उ. २७५ | उ. ६०४ |
| ऋचि तनुद्यामक्षुत० | ६।३।१३३ | उ. २६३ | उ. ६३३ |
| ऋच्छत्युताम | ७।४।११ | उ. ४४३ | उ. ६५१ |
| ऋणमाधमर्ये | ८।२।६० | उ. ५११ | उ. ६५३ |
| ऋत उत् | ६।१।१११ | उ. १७४ | उ. ४८० |
| ऋतश्च | ७।४।१२ | उ. ४६१ | उ. ८७२ |
| ऋतश्च संयोगादेः | ७।२।४३ | उ. ३८५ | उ. ७७३ |
| ऋतश्च संयोगादेर्गुणः | ७।४।१० | उ. ४४३ | उ. ८५० |
| ऋतश्चन्द्रसि | ५।४।१५८ | उ. १३६ | उ. ० |
| ऋतष्टञ् | ४।३।७८ | प. ४३६ | उ. १७६ |
| ऋतेरीयङ् | ३।१।२६ | प. १६१ | प. ५४१ |
| ऋतो ङिसर्वनाम० | ७।३।११० | उ. ४३८ | उ. ८४१ |
| ऋतो ङ् | ४।४।४६ | प. ४७० | उ. २०८ |
| ऋतो भारद्वाजम्य | ७।२।६३ | उ. ३६२ | उ. ७८० |
| ऋतो रण | ५।१।१०५ | उ. २८ | उ. २६५ |
| ऋतो विद्यायोनिबंध० | ६।३।२३ | उ. २६६ | उ. ५८६ |
| ऋत्यकः | ६।१।१२८ | उ. १७६ | उ. ४८७ |
| ऋत्विगदधक्सगिदगु० | ३।२।५६ | प. २३१ | प. ६२४ |
| ऋव्यवास्त्व्यवा० | ६।४।१७५ | उ. ३४० | उ. ६६८ |
| ऋदुपधाच्चाक्पि० | ३।१।११० | प. २०६ | प. ५६६ |
| ऋदुशनस्युरुदंसो नो० | ७।१।६४ | उ. ३६५ | उ. ७३६ |
| ऋदुशोऽङि गुणः | ७।४।१६ | उ. ४४४ | उ. ८५३ |
| ऋद्वनोः स्ये | ७।२।७० | उ. ३६४ | उ. ७८३ |
| ऋद्वेभ्यो ङीप् | ४।१।५ | प. ३३१ | उ. २० |
| ऋद्वभोषानहोर्ज्यः | ५।१।१४ | उ. ५ | उ. २३६ |
| ऋद्व्यन्धकवृष्याकु० | ४।१।११४ | प. ३६५ | उ. १०३ |
| ऋद्वलोपर्यत् | ३।१।१२४ | प. २१२ | प. ६०१ |
| ऋत इच्छातोः | ७।१।१०० | उ. ३६७ | उ. ७४५ |
| ऋदोरप् | ३।३।५७ | प. २७२ | प. ६८० |
| एकः पूर्वपरयोः | ६।१।८४ | उ. १६७ | उ. ४५६ |
| एकगोपूर्वाट्टञ् नि० | ५।२।११८ | उ. ६८ | उ. ३२६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | | पटमञ्जरी | |
|------------------------|--------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| मकतद्धिते च | ६।३।६२ | उ. | २७७ | उ. | ६०६ |
| मकधुगान्तुक् च | ४।४।७६ | पू. | ४७६ | उ. | २१४ |
| सकं व्यसुव्रीहिवत् | ८।१।६ | उ. | ४६६ | उ. | ८८८ |
| सकवचनं सुसुद्धिः | २।३।४६ | पू. | १५१ | पू. | ४४६ |
| सकवचनस्य च | ७।१।३२ | उ. | ३४८ | उ. | ० |
| सकविभक्ति चापूर्व० | १।२।४४ | पू. | ४३ | पू. | १८० |
| सकशालायाष्टज० | ५।३।१०६ | उ. | ६८ | उ. | ३६७ |
| सकश्रुतिदूरात्संबुद्धी | १।२।३३ | पू. | ३६ | पू. | १७१ |
| सकस्य सकच्च | ५।४।१६ | उ. | १०६ | उ. | ३७६ |
| सकहलादी पुरयित० | ६।३।५६ | उ. | २७६ | उ. | ६०५ |
| सकाच उपदेशे ऽनु० | ७।२।१० | उ. | ३७२ | उ. | ७५२ |
| सकाचो द्वे प्रथमस्य | ६।१।१ | उ. | १४० | उ. | ४१३ |
| सकाचो वशो भष् भ० | ८।२।३७ | उ. | ५०५ | उ. | ६४६ |
| सकाच्च प्राचाम् | ५।३।६४ | उ. | ६५ | उ. | ३६५ |
| सकाजुत्तरपदे सः | ८।४।१२ | उ. | ५६१ | उ. | १०२२ |
| सकाटाशिक्षास० | ५।३।५२ | उ. | ८४ | उ. | ३४३ |
| सकादिशचैकस्य चादुक् | ६।३।७६ | उ. | २८१ | उ. | ६१२ |
| सकादेश उदात्तेनादात्तः | ८।२।५ | उ. | ४६५ | उ. | ६३२ |
| सकादो ध्यमुजन्य० | ५।३।४४ | उ. | ८३ | उ. | ३४२ |
| सकान्याभ्यां समर्था० | ८।१।६५ | उ. | ४८४ | उ. | ६१२ |
| सको गोत्रे | ४।१।६३ | पू. | ३५७ | उ. | ८८ |
| सङ्घः पदान्तादति | ६।१।१०६ | उ. | १७४ | उ. | ० |
| सङ्घि पररूपम् | ६।१।६४ | उ. | १७० | उ. | ४७१ |
| सङ्घ प्राचां देशे | १।१।७५ | पू. | ३१ | पू. | १४५ |
| सङ्घः इत्यात्मबुद्धेः | ६।१।६६ | उ. | १६३ | उ. | ४५१ |
| सङ्घ इग्रन्थादेशे | १।१।४८ | पू. | २० | पू. | ६३ |
| सद्यो ऽप्रगृह्यस्या० | ८।२।१०७ | उ. | ५२४ | उ. | ६७० |
| सद्यो ऽववायावः | ६।१।७८ | उ. | १६५ | उ. | ० |
| सज्ञो खश्च | ३।२।२८ | पू. | २२४ | पू. | ६१७ |
| सद्यो ङञ् | ४।३।१५६ | पू. | ४५६ | उ. | १६७ |
| सत इदुह्यवचने | ८।२।८१ | उ. | ५१७ | उ. | ६५६ |
| सत मे | ३।४।६३ | पू. | ३२४ | पू. | ७४६ |
| सतसदोः सु नोपे० | ६।१।१३२ | उ. | १८० | उ. | ४८६ |
| सतसदस्वतमास्वतसां० | २।४।३३ | पू. | १६६ | पू. | ४७६ |
| सतसोऽपु | ५।३।५ | उ. | ७५ | उ. | ३३४ |
| *सतसज्ञायामगात् | ८।३।६६ | उ. | ५५२ | उ. | १०१० |

| | क्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------|--------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| एतित्तुशास्वृद्धञ० | ३।१।१०६ | पृ. २०८ | पृ. ५६५ |
| एततो रथोः | ५।३।४ | उ. ५५ | उ. ३३३ |
| एतर्लिङि | ७।४।२४ | उ. ४४५ | उ. ८५४ |
| एत्येधत्पूठसु | ६।१।८६ | उ. १६८ | उ. ४६८ |
| एधाञ्च | ५।३।४६ | उ. ८३ | उ. ३४२ |
| एनपा द्वितीया | २।३।३५ | पृ. १४६ | पृ. ४३५ |
| एनअन्यतास्यामदूरे० | ५।३।३५ | उ. ८१ | उ. ३४० |
| एरच् | ३।३।५६ | पृ. २७२ | पृ. ६०६ |
| एरनेकाचो ऽसंयोग० | ६।४।८२ | उ. ३१६ | उ. ६७० |
| एरुः | ३।४।८६ | पृ. ३२३ | पृ. ७४८ |
| एर्लिङि | ६।४।६७ | उ. ३१३ | उ. ० |
| एहिमन्ये प्रहामे लट् | ८।१।४६ | उ. ४७६ | उ. ६०६ |
| ऐकागारिकट् चारं | ५।१।११३ | उ. ३० | उ. २६६ |
| ऐषमोह्यप्रवसो ऽन्व | ४।२।१०५ | पृ. ४११ | उ. १५२ |
| ओः पुयणञ्यपरं | ७।४।८० | उ. ४५८ | उ. ८६६ |
| ओः सुपि | ६।४।८३ | उ. ३१६ | उ. ६७१ |
| ओक उचः के | ७।३।६४ | उ. ४२७ | उ. ८६६ |
| ओजःसहोम्मसा० | ४।४।२७ | पृ. ४६६ | उ. ० |
| ओजःसहोऽम्मस्तमस० | ६।३।३ | उ. २६२ | उ. ५८१ |
| ओजस्वे ऽहनि यत्वर्षी | ४।४।१३० | पृ. ४८७ | उ. २२५ |
| ओत् | १।१।१५ | पृ. १० | पृ. ६७ |
| ओत्तः प्रयनि | ७।३।७१ | उ. ४२६ | उ. ८२७ |
| ओतो गार्घ्यस्य | ८।३।२० | उ. ५३१ | उ. ६८० |
| ओदितश्च | ८।२।४५ | उ. ५०७ | उ. ६५० |
| ओमभ्यादाने | ८।२।८७ | उ. ५१६ | उ. ६६४ |
| ओमाडोश्च | ६।१।६५ | उ. १७१ | उ. ४७१ |
| ओरञ् | ४।२।७१ | पृ. ४०० | उ. १४५ |
| ओरञ् | ४।३।१३६ | पृ. ४५४ | उ. १६३ |
| ओरावप्रयके | ३।१।१२५ | पृ. २१२ | पृ. ६०१ |
| ओर्गुणाः | ६।४।१४६ | उ. ३३१ | उ. ६१० |
| ओर्द्वेणे ठञ् | ४।२।११६ | पृ. ४१४ | उ. १५६ |
| ओषधेरजाति | ५।४।३७ | उ. ११० | उ. ३८४ |
| ओषधेश्च विभक्ता० | ६।३।१३२ | उ. ३६३ | उ. ० |
| ओसि च | ७।३।१०४ | उ. ४३७ | उ. ० |
| ओत्तमनपत्ये | ६।४।१७३ | उ. ३३८ | उ. ० |
| ओड् प्रायः | ७।१।१८ | उ. ३४५ | उ. ७०७ |
| ओत् | ७।३।११८ | उ. ४४० | उ. ८४३ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|--------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| श्रीतोऽग्निः | ६।१।६३ | उ. | १७० | उ. | ४७० |
| कःकरत्करति क० | ८।३।५० | उ. | ५४० | उ. | ६६३ |
| कंशंभ्यां बभर्मुस्ति० | ५।३।१३८ | उ. | ७३ | उ. | ३३९ |
| कंसमन्यगूर्पपाय्य० | ६।३।१३२ | उ. | २४० | उ. | ५५८ |
| कंसाद्विठन | ५।१।३५ | उ. | ८ | उ. | २४२ |
| कंसीयपरश्वयो० | ४।३।१६८ | पु. | ४६९ | उ. | ९६६ |
| ककुटस्यावस्थायां० | ५।४।१४६ | उ. | १३७ | उ. | ४१० |
| कच्छाग्निवक्रव० | ४।२।१२६ | पु. | ४१६ | उ. | १५७ |
| कच्छादिभ्यश्च | ४।३।१३३ | पु. | ४१८ | उ. | १५६ |
| कठचरकाल्लुक | ४।३।१०७ | पु. | ४४७ | उ. | ० |
| कठिनान्तप्रस्तारसं० | ४।४।७२ | पु. | ४७५ | उ. | २९२ |
| कडंकरदक्षिणाच्छ च | ५।१।६६ | उ. | २० | उ. | २५७ |
| कङ्काराः कर्मधारये | २।२।३८ | पु. | १३७ | पु. | ४९६ |
| कशोमनसो श्रद्धाप्रती० | १।४।६६ | पु. | ६४ | पु. | ३२२ |
| कगठपृष्टयीवाजङ्घं च | ६।२।११४ | उ. | २३८ | उ. | ० |
| कगङ्गादिभ्यो यक् | ३।१।२७ | उ. | १६० | पु. | ५३६ |
| कगवादिभ्यो गात्रे | ४।३।१११ | पु. | ४९२ | उ. | १५४ |
| कतरकतमे कर्मधा० | ६।२।५७ | उ. | २२४ | उ. | ५४६ |
| कतरकतमे जातिप० | २।१।६३ | पु. | १२२ | पु. | ३८३ |
| कच्यादिभ्यो ठकञ् | ४।२।६५ | पु. | ४०६ | उ. | १५० |
| कथादिभ्यो ष्टक् | ४।४।१०२ | पु. | ४८९ | उ. | ० |
| कद्रुकमगडत्वाश्च० | ४।१।७१ | पु. | ३४६ | उ. | ६९ |
| कन्याश्च | ६।२।१२४ | उ. | २४० | उ. | ५५८ |
| कन्यापलदनगरया० | ४।३।१४२ | पु. | ४२९ | उ. | १६० |
| कन्यायाष्टक् | ४।३।१०२ | पु. | ४१० | उ. | ० |
| कन्यायाः कनीनश्च | ४।१।११६ | पु. | ३६५ | उ. | १०४ |
| कपिज्ञात्योर्ढक् | ५।१।१७७ | उ. | ३४ | उ. | २७८ |
| कपिपूर्वम् | ६।२।१७३ | उ. | २५४ | उ. | ५७१ |
| कपिविधादाङ्गिरसे | ४।१।१०० | पु. | ३६२ | उ. | १०९ |
| कपिष्ठला गात्रे | ८।३।६९ | उ. | ५५० | उ. | १००८ |
| कर्मशिङ् | ३।१।३० | पु. | १६९ | पु. | ५४७ |
| कम्बलाच्च संज्ञायाम् | ५।१।३ | उ. | ३ | उ. | ३२६ |
| कम्बीजाल्लुक | ४।१।१७५ | पु. | ३७६ | उ. | १३२ |
| करणाधिकरणयोश्च | ३।३।११७ | पु. | २६४ | पु. | ६६३ |
| करणे च स्तोत्रान्य० | २।३।३३ | पु. | १४७ | पु. | ४३६ |
| करणे यजः | ३।२।८५ | पु. | २३७ | पु. | ६३० |
| करणयोर्विद्रुषु | ३।३।८२ | पु. | २७६ | पु. | ६८३ |

| | अ. पा. सू. | काशिका प. | पदमञ्जरी प. |
|-------------------------|------------|--------------|----------------|
| करणे हनः | ३।४।३७ | पु. ३१० | पु. ७३७ |
| कर्कलोहितादीकक् | ५।३।११० | उ. १८ | उ. ३६७ |
| कर्णाललाटात्कनलं. | ४।३।६५ | पु. ४३५ | उ. ० |
| कर्णो लक्षणस्यावि. | ६।३।११५ | उ. २८१ | उ. ६२१ |
| कर्णो वर्णलक्षणात् | ६।२।११२ | उ. २३७ | उ. ५५६ |
| कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे | १।३।१४ | पु. ५६ | पु. २२६ |
| कर्त्तरि क्त | ३।४।६७ | पु. ३१८ | पु. ७३८ |
| कर्त्तरि च | ३।२।१६ | पु. १२६ | पु. ३१६ |
| कर्त्तरि चर्षि० | ३।२।१८६ | पु. २५८ | पु. ६६९ |
| कर्त्तरि भुवः खिष्णाच्. | ३।२।५७ | पु. २३० | पु. ६२३ |
| कर्त्तरि शप् | ३।१।६८ | पु. ११६ | पु. ५६७ |
| कर्त्तर्युपमाने | ३।२।७६ | पु. २३६ | पु. ६२८ |
| कर्तुः षड् सलोपश्च | ३।१।११ | पु. १८५ | पु. ५१८ |
| कर्तुरीप्सततमं कर्म | १।४।४६ | पु. ८८ | पु. ३०० |
| कर्तृकरणायोस्तृतीया | ३।३।१८ | पु. १४३ | पु. ४८८ |
| कर्तृकरणो क्ता बहु० | २।१।३२ | पु. ११३ | पु. ३६५ |
| कर्तृकर्मणोः कति | २।३।६५ | पु. १५५ | पु. ४५३ |
| कर्तृकर्मणोश्च भूक्० | ३।३।१२७ | पु. २८६ | पु. ६१५ |
| कर्तृस्थे चाशरीरे क० | १।३।३७ | पु. ६३ | पु. २३७ |
| कर्त्राजीवपुरुषयोर्न० | ३।४।४३ | पु. ३१२ | पु. ७३३ |
| कर्मणा उक्ञ | ५।१।१०३ | उ. २८ | उ. २६४ |
| कर्मणा यमभिप्रेति० | १।४।३२ | पु. ८४ | पु. २८१ |
| कर्मणि घटोऽटच् | ५।२।३५ | उ. ४६ | उ. २१२ |
| कर्मणि च | २।२।१४ | पु. १२१ | पु. ३१८ |
| कर्मणि च येन सं० | ३।३।११६ | पु. २८४ | पु. ६१२ |
| कर्मणि द्विशिविदैः | ३।४।२८ | पु. ३०६ | पु. ७२६ |
| कर्मणि द्वितीया | २।३।२ | पु. १३८ | पु. ४३० |
| कर्मणि भूतौ | ३।२।२२ | पु. २२३ | पु. ६१७ |
| कर्मणि हनः | ३।२।८६ | पु. २३७ | पु. ६३७ |
| कर्मणीनिर्विक्रियः | ३।२।१३ | पु. २३६ | पु. ६३३ |
| कर्मणो रोमन्धतटो० | ३।१।१५ | पु. १८७ | पु. ५२४ |
| कर्मण्यन्याख्यायाम् | ३।२।१२ | पु. २३६ | पु. ६३३ |
| कर्मण्यण् | ३।२।१ | पु. २१६ | पु. ६०६ |
| कर्मण्यधिकरणो च | ३।३।१३ | पु. २७८ | पु. ६८४ |
| कर्मण्यक्रोशे क्. | ३।४।१५ | पु. ३०८ | पु. ७२५ |
| कर्मधारयवदुत्तरेपु | ६।१।११ | उ. ४६७ | उ. ८१० |
| कर्मधारयोनिष्ठा | ६।२।४६ | उ. २२२ | उ. ५४० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| कर्मन्तकशाप्रवादि० | ४।३।११९ | पृ. ४४८ | उ. ० |
| कर्मप्रवचनीययुक्ते० | २।३।१८ | पृ. १४० | पृ. ० |
| कर्मप्रवचनीयाः | १।४।८३ | पृ. ८८ | पृ. ३२७ |
| कर्मवत्कर्मणा तुल्य० | ३।१।८७ | पृ. २०३ | पृ. ५७२ |
| कर्मवेवाद्यत् | ५।१।१०० | उ. २७ | उ. २६४ |
| कर्मव्यतिहारे शा० | ३।३।४३ | पृ. २६६ | पृ. ६७६ |
| कर्माध्ययने वृत्तम् | ४।४।६३ | पृ. ४७३ | उ. २१९ |
| कर्पात्वतो घ० | ६।१।१५६ | उ. १८८ | उ. ५०५ |
| कलापिनेऽण् | ४।३।१०८ | पृ. ४४७ | उ. १८६ |
| कलापिप्रेशभ्याय० | ४।३।१०४ | पृ. ४४६ | उ. १८५ |
| कलाप्यप्रवत्ययवसुसा० | ४।३।४८ | पृ. ४३९ | उ. १७२ |
| कलेठक् | ४।२।८ | पृ. ३८२ | उ. १२७ |
| कल्याणयात्रीनामि० | ४।१।१२६ | पृ. ३६८ | उ. ० |
| कत्रं चोष्णो | ६।३।१०७ | उ. २८७ | उ. ६१८ |
| कथ्यध्वरएतनस्य चि० | ७।४।३६ | उ. ४४८ | उ. ० |
| कथ्यपुरीषपुरीष्येषु० | ३।२।६५ | पृ. २३३ | पृ. ० |
| कषादिपु यथाविध्य० | ३।४।४६ | पृ. ३९२ | पृ. ० |
| कष्टायक्रमणे | ३।१।१४ | पृ. १८६ | पृ. ५२३ |
| कस्कादिपु च | ८।३।४८ | उ. ५३६ | उ. ६६३ |
| कस्य चदः | ५।३।७२ | उ. ८६ | उ. ३५६ |
| कस्येत् | ४।२।२५ | पृ. ३८७ | उ. १३९ |
| काण्डायडादीरचीर० | ५।२।११९ | उ. ६७ | उ. ० |
| काण्डान्तात्वेने | ४।१।२३ | पृ. ३३६ | उ. ३५ |
| कानामेडिते | ८।३।१२ | उ. ५२६ | उ. ६७६ |
| कापथ्यज्ञयोः | ६।३।१०४ | उ. २८६ | उ. ६९७ |
| कापिप्रयाः फक् | ४।२।६६ | पृ. ४०६ | उ. १५९ |
| कामप्रवेदनेऽक० | ३।३।१५३ | पृ. २६५ | पृ. ७०५ |
| काम्यच्च | ३।१।६ | पृ. १८५ | पृ. ५९७ |
| कारकाद्धतयुतयो० | ६।२।१४८ | उ. २४७ | उ. ५६६ |
| कारके | १।४।२३ | पृ. ८३ | पृ. २८० |
| कारनाम्नि च प्राचां | ६।३।१० | उ. २६३ | उ. ५८३ |
| कारस्करोरुत्रः | ६।१।१५६ | उ. १८६ | उ. ४६६ |
| कारे सत्यागदस्य | ६।३।७० | उ. २७६ | उ. ६१० |
| कार्तिकोजपादयप्रव | ६।२।३७ | उ. २१७ | उ. ५३६ |
| कार्मस्ताच्छीत्ये | ६।४।१७२ | उ. ३३८ | उ. ६६७ |
| कालप्रयोजनाद्रोगे | ५।३।८९ | उ. ५८ | उ. ३९९ |
| कालविभागे चान० | ३।३।१३७ | पृ. २२६ | पृ. ७०९ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|------------------------|------------|---------------|-----------------|
| कालसमयधेलासु० | ३।३।१६७ | पृ. २६६ | पृ. ७११ |
| कालाः | २।१।२८ | पृ. ११२ | पृ. ३६३ |
| कालाः परिमाणना | २।२।५ | पृ. १२६ | पृ. ३८६ |
| कालाच्च | ५।४।३३ | उ. १०६ | उ. ३८३ |
| कालाङ्कज् | ४।३।११ | पृ. ४२४ | उ. १६३ |
| कालात् | ५।१।७८ | उ. २२ | उ. २५६ |
| कालात्साधुयुष्यत्य० | ४।३।४३ | पृ. ४३० | उ. १७२ |
| कालाद्यत् | ५।१।१०७ | उ. २६ | उ. २६५ |
| कालाध्वनोरत्यन्त० | २।३।५ | पृ. १३६ | पृ. ४२२ |
| कालेभ्यो भयवत् | ४।२।३४ | पृ. ३८८ | उ. १३३ |
| कालोपसर्जने च० | १।२।५७ | पृ. ४८ | पृ. १६५ |
| काप्रथपकौशिका० | ४।३।१०३ | पृ. ४४५ | उ. १८४ |
| काप्रयादिभ्यष्ट० | ४।२।११६ | पृ. ४१३ | उ. १५५ |
| कामूगोणीभ्यां ष्टरच् | ५।३।६० | उ. ६३ | उ. ० |
| कास्तीराजस्तुन्दे० | ६।१।१५५ | उ. १८६ | उ. ४६६ |
| कास्त्रत्ययादात्मम० | ३।१।३५ | पृ. १६२ | पृ. ५४८ |
| क्रियत्तदोर्निर्धारणे० | ५।३।६२ | उ. ६४ | उ. ३६४ |
| क्रियुत्तं च चिदुत्तरं | ८।१।४८ | उ. ४७६ | उ. ६०७ |
| क्रियुत्ते लिङ्गलटो | ३।३।१४४ | पृ. २६२ | पृ. ७६३ |
| क्रियुत्ते लिप्सायाम् | ३।३।६ | पृ. २६० | पृ. ६६५ |
| क्रिसर्वनामबहुभ्या० | ५।३।२ | उ. ७४ | उ. ३३३ |
| किं किलास्त्यर्थेषु० | ३।३।१४६ | पृ. २६३ | पृ. ७०४ |
| किं क्रियाप्रश्ने जुष० | ८।१।४४ | उ. ४७८ | उ. ६०५ |
| किं क्षेपे | २।१।६४ | पृ. १२२ | पृ. ० |
| कितः | ६।१।१६५ | उ. १६० | उ. ० |
| किति च | ७।२।११८ | उ. ४७७ | उ. ८०० |
| किटाशिशि | ३।४।१०४ | पृ. ३२६ | पृ. ७५१ |
| किमः कः | ७।२।१०३ | उ. ४०४ | उ. ७६६ |
| किमः क्षेपे | ५।४।७० | उ. ११६ | उ. ३६६ |
| क्लिमः संख्यापरि० | ५।२।४१ | उ. ४८ | उ. ३६६ |
| किमश्च | ५।३।२५ | उ. ७६ | उ. ३३० |
| किमिदंभ्यां वो चः | ५।२।४० | उ. ४८ | उ. ३६६ |
| किमेतिङ्गव्ययघादा० | ५।४।११ | उ. १०४ | उ. ३०५ |
| किमोत्- | ५।३।१२ | उ. ७६ | उ. ३३५ |
| किरतो लवने | ६।१।१४० | उ. १८२ | उ. ४६४ |
| किरश्च पञ्चभ्यः | ७।२।७५ | उ. ३६५ | उ. ७८३ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| कक्रणपर्यादारद्वा० | ४।२।१४५ | पृ. ४२२ | उ. १६१ |
| कक्रगहनयोः कषः | ७।२।२२ | उ. ३७६ | उ. ७६३ |
| कजः प्रतियत्ने | २।३।५३ | पृ. १५२ | पृ. ४५० |
| कजः श च | ३।३।१०० | पृ. २८० | पृ. ६२७ |
| कजो द्वितीयतृतीय० | ५।४।५८ | उ. ११६ | उ. ३८२ |
| कजो हेतुनाच्छील्या० | ३।२।२० | पृ. २२३ | पृ. ६१५ |
| कज् चानुप्रयुज्यते | ३।१।४० | पृ. १६३ | पृ. ५५१ |
| कतलब्धक्रीतकुश० | ४।३।३८ | पृ. २२६ | उ. १६६ |
| कते गन्धे | ४।३।११६ | पृ. ४४६ | उ. १८७ |
| कतच्छितसमासाश्च | १।२।४६ | पृ. ४४ | पृ. १८५ |
| कत्यचः | ८।४।२६ | उ. ५६५ | उ. १०२७ |
| कत्यतुल्याख्या अजा० | २।१।६८ | पृ. १२३ | पृ. ३८४ |
| कत्यत्युटो बहुलम् | ३।३।११३ | पृ. २८३ | पृ. ६६१ |
| कत्याः प्राग्० | ३।१।६५ | पृ. २०६ | पृ. ५६१ |
| कत्यानां कर्तरि वा | २।३।७१ | पृ. १५७ | पृ. ४५७ |
| कत्यार्थे तवैक्ये० | ३।४।१४ | पृ. ३०५ | पृ. ७२१ |
| कत्याश्च | ३।३।१०१ | पृ. २६६ | पृ. ७१२ |
| कत्यैरधिकार्थवचने | २।१।३२ | पृ. ११३ | पृ. ३६५ |
| कत्यैर्भ्यो | २।१।४३ | पृ. ११६ | पृ. ३७० |
| कत्योकेषुच्चारवा० | ६।२।१६० | उ. २५१ | उ. ५६८ |
| कत्वार्थप्रयोगे का० | २।३।६४ | पृ. १५५ | पृ. ४५२ |
| कदतिङ् | ३।१।६३ | पृ. २०५ | पृ. ५८७ |
| कन्मेजन्तः | १।१।३६ | पृ. १७ | पृ. ८७ |
| कपो रो लः | ८।२।१८ | उ. ४६६ | उ. ६३७ |
| कसद्रुहिभ्यश्चन्दसि | ३।१।५६ | पृ. १६८ | पृ. ५६३ |
| कषेश्चन्दसि | ७।४।६४ | उ. ४५४ | उ. ० |
| कसभवस्तुद्रसुश्रुवो० | ७।२।१३ | उ. ३७६ | उ. ७५८ |
| क धान्ये | ३।३।३० | पृ. २६६ | पृ. ६७३ |
| केकयमिचयुप्रलयानां० | ७।३।२ | उ. ४०७ | उ. ७०२ |
| के ङ्याः | ७।४।१३ | उ. ४४४ | उ. ८५२ |
| केदाराद्यञ्च | ४।२।४० | पृ. ३६० | उ. ० |
| केवलमामकभागधे० | ४।१।३० | पृ. ३३८ | उ. ३८ |
| केशाद्वेऽन्यतर० | ५।२।१०६ | उ. ६६ | उ. ६३४ |
| केशाप्रवाभ्यां य० | ४।२।४८ | पृ. ३६३ | उ. ० |
| कोः कत्तत्पुरुषेऽचि | ६।३।१०१ | उ. २८६ | उ. ६१७ |
| कोपधाञ्च | ४।२।७६ | पृ. ४०२ | उ. ० |
| कोपधाञ्च | ४।३।१३७ | पृ. ४५४ | उ. १६२ |

| | श्र. पा. सू. | | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|--------------------------|--------------|---------|--------------------------|-----|----------|-----|
| | श्र. | पा. सू. | पु. | पु. | उ. | पु. |
| कोपघादण | ४ | २।१३२ | पु. | ४९८ | उ. | ९५६ |
| कोशाङ्गज | ४ | ३।४२ | पु. | ४३० | उ. | ९७९ |
| कोपिञ्जलहास्तिप० | ४ | ३।१३२ | पु. | ४५६ | उ. | ९८६ |
| कोमारापूर्ववचने | ४ | २।१३ | पु. | ३८४ | उ. | ९२८ |
| कोरव्यमागङ्काभ्यां च | ४ | १।१९६ | पु. | ३३५ | उ. | ३३ |
| कोशल्यकार्मार्या० | ४ | १।१५५ | पु. | ३७४ | उ. | ९९३ |
| कृडिति च | १ | १।५ | पु. | ७ | पु. | ४६ |
| क्तक्तवत् निष्ठा | १ | १।२६ | पु. | ९३ | पु. | ७५ |
| क्तस्य च वर्तमाने | २ | ३।६७ | पु. | ९५६ | पु. | ४५५ |
| क्तादल्याख्यायाम् | ४ | १।५९ | पु. | ३४४ | उ. | ५३ |
| क्तिचकृती च सं० | ३ | ३।१७४ | पु. | ३०० | पु. | ७९३ |
| क्ते च | ६ | २।४५ | उ. | ३२१ | उ. | ५४० |
| क्तेन च पूजायाम् | २ | २।१२ | पु. | ९२८ | पु. | ३६० |
| क्तेन नञ्विशिष्टे० | २ | १।६० | पु. | ९२९ | पु. | ३८९ |
| क्तेनाहोरात्रावयवाः | ३ | १।४५ | पु. | ९६६ | पु. | ३७९ |
| क्ते नित्यार्थे | ६ | ३।६९ | उ. | ३२५ | उ. | ५४६ |
| क्तेर्धिकरणे च धी० | ३ | ४।७६ | पु. | ३२० | पु. | ७४३ |
| क्त्वा च | २ | २।२२ | पु. | ९३९ | पु. | ४०४ |
| क्त्वातोमुन्कसुनः | १ | १।४० | पु. | ९८ | पु. | ० |
| क्त्वापिच्छन्दसि | ७ | १।३८ | उ. | ३५० | उ. | ७९७ |
| क्त्विस्कान्दिस्यन्दोः | ६ | ४।३९ | उ. | ३०३ | उ. | ६५९ |
| क्त्वो यक् | ७ | १।४७ | उ. | ३५३ | उ. | ७२० |
| क्वद्मानिनोश्च | ६ | ३।३६ | उ. | २७० | उ. | ५६६ |
| क्वचित् च | ७ | ४।३३ | उ. | ४४७ | उ. | ८५६ |
| क्वच्योश्च | ६ | ४।१५२ | उ. | ३३३ | उ. | ६६३ |
| क्वस्य विभाषा | ६ | ४।५० | उ. | ३०८ | उ. | ६५६ |
| क्वाच्छन्दसि | ३ | २।१७० | पु. | २५४ | पु. | ६५८ |
| क्वतुयज्ञेभ्यश्च | ४ | ३।६८ | पु. | ४३६ | उ. | ९७७ |
| क्वतैक्वादिमूत्रान्ताट्० | ४ | २।६० | पु. { अमु. ९६ मु. ३६७ | | उ. | ९४९ |
| क्वतो कुण्डपायसं० | ३ | १।१३० | पु. | २९४ | पु. | ६०३ |
| क्वत्याटपश्च | ६ | २।१९८ | उ. | २३६ | उ. | ० |
| क्वमः परस्मैपदेषु | ७ | ३।७६ | उ. | ४३० | उ. | ८२८ |
| क्वमश्च क्त्व | ६ | ४।१८ | उ. | २६६ | उ. | ६३७ |
| क्वमादिभ्यो युन् | ४ | २।६९ | पु. | ३६८ | उ. | ० |
| क्वप्यस्तदर्थे | ६ | १।८२ | उ. | १६६ | उ. | ४५८ |
| क्वथ्ये च | ३ | २।६६ | पु. | २३३ | पु. | ६३६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-------------------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| क्रियाथोपपदस्य च क० | २।३।१४ | पृ. | १४९ | पृ. | ४२५ |
| क्रियासमभिहारे लोट० | ३।४।२ | पृ. | ३०९ | पृ. | ७९५ |
| क्रीङ्जीनां यौ | ६।१।७८ | उ. | १५६ | उ. | ४४९ |
| क्रीडानुसंपरिभ्य० | १।३।२९ | पृ. | ५८ | पृ. | २३० |
| क्रीतवत्परिमाणात् | ४।३।१५६ | पृ. | ४५८ | उ. | १६६ |
| क्रीतात्करणपूर्वात् | ४।१।५० | पृ. | ३४४ | उ. | ५२ |
| क्रुधद्दुर्हेर्षासूयार्था० | १।४।३७ | पृ. | ८६ | पृ. | २६५ |
| क्रुधद्दुर्होरुपसृष्टयोः कर्म | १।४।३८ | पृ. | ८६ | पृ. | २६५ |
| क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च | ३।२।१५१ | पृ. | २५९ | पृ. | ० |
| क्रौञ्चादिभ्यश्च | ४।१।८० | पृ. | ३५२ | उ. | ७० |
| क्रवादिभ्यः ङनाः | ३।१।८९ | पृ. | २०९ | पृ. | ० |
| क्लिशः त्वानिष्ठयोः | ७।२।५० | उ. | ३८८ | उ. | ७०५ |
| क्वयो वीणायां च | ३।३।६५ | पृ. | २७३ | पृ. | ६८९ |
| क्वसुश्च | ३।२।१०० | पृ. | २४९ | पृ. | ६५२ |
| क्वाति | ७।२।१०५ | उ. | ४०४ | उ. | ७६६ |
| क्विन्प्रत्ययस्य कुः | ८।२।६२ | उ. | ५९९ | उ. | ६५४ |
| क्विप् च | ३।२।७६ | पृ. | २३५ | पृ. | ६२७ |
| क्वत्राद् घः | ४।१।१३८ | पृ. | ३७० | उ. | १०७ |
| क्वयो निवासे | ६।१।२०१ | उ. | १६६ | उ. | ५२२ |
| क्व्यज्यौ शक्यार्थे | ६।१।८९ | उ. | ५०६ | उ. | ० |
| क्वायो मः | ८।२।५३ | पृ. | २८८ | पृ. | ६६६ |
| क्विप्रवचने लट् | ३।३।१३३ | उ. | ३१० | उ. | ० |
| क्वियः | ६।४।५६ | उ. | ५२३ | उ. | ६६६ |
| क्वियाशीःप्रिषेष्ु ति० | ८।२।१०४ | उ. | ५०८ | उ. | ६५० |
| क्वियो दीर्घात् | ८।२।४६ | पृ. | ३८५ | उ. | १३० |
| क्विराङ्कञ् | ४।२।२० | पृ. | १६९ | पृ. | ४६४ |
| क्वुद्जन्तवः | ३।४।८ | पृ. | ३६६ | उ. | ४०६ |
| क्वुद्भाभ्यो वा | ४।१।१३९ | पृ. | ४५० | उ. | १८७ |
| क्वुद्भाभ्रमरघट्टरपा० | ४।३।११६ | पृ. | ३७७ | उ. | ७६९ |
| क्वुद्भ्यस्यान्तध्वान्त० | ७।२।९८ | उ. | ५६८ | उ. | १०३० |
| क्वुद्भादिषु च | ८।४।३६ | उ. | ३९६ | उ. | ५३७ |
| क्वुल्लकाश्च वेषवदेवै | ६।२।३६ | उ. | ६९ | उ. | ३९४ |
| क्वुन्नियस् परत्वेनेचि० | ५।२।६२ | उ. | ३९ | पृ. | ३७९ |
| क्वुपे | ५।१।४७ | पृ. | १०७ | पृ. | ५५५ |
| क्वुपे | ६।२।१०८ | उ. | ३३६ | उ. | ५५५ |
| क्वुमप्रियमट्टेऽयच्च | ३।२।४४ | पृ. | २२७ | पृ. | ० |

| | अ. या. मू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|------------|---------------|-----------------|
| कस्यस्यचि | ७।३।७२ | उ. ४२६ | उ. ६३७ |
| खः सर्वधुरात् | ४।४।७८ | पू. ४७६ | उ. ३९३ |
| ख च | ४।४।९३२ | पू. ४८७ | उ. ३३५ |
| खचि कृत्वः | ६।४।६४ | उ. ३९६ | उ. ० |
| खट्वाक्षपे | ३।९।३६ | पू. ९९९ | पू. ३६२ |
| खण्डिकादिभ्यश्च | ४।२।४५ | पू. ३६९ | उ. ९३५ |
| खनो घ च | ३।३।९२५ | पू. २८६ | पू. ६६४ |
| खरघसानयोर्विसर्ज० | ८।३।९५ | उ. ५३० | उ. ६७७ |
| खरि च | ८।४।५५ | उ. ५७२ | उ. ९०३३ |
| खलगोरधात् | ४।२।५० | पू. ३६३ | उ. ९३८ |
| खलयवमाषतिलवृष० | ५।९।७ | उ. ३ | उ. २३० |
| खाया ईकन् | ५।९।३३ | उ. ९० | उ. २४५ |
| खायाः प्राचाम् | ५।४।९०९ | उ. ९२७ | उ. ४०२ |
| खित्यनव्ययस्य | ६।३।६६ | उ. २७८ | उ. ६०७ |
| खित्देश्चन्दसि | ६।९।५२ | उ. ९५७ | उ. ४४३ |
| ख्यत्यात्परस्य | ६।९।९९२ | उ. ९७१ | उ. ४८० |
| गतिकारकोपपटा० | ६।२।९३६ | उ. २४४ | उ. ५६९ |
| गतिबुद्धिप्रत्यघसाना० | ९।४।५२ | पू. ८६ | पू. ३९० |
| गतिरनन्तरः | ६।२।४६ | उ. ३३२ | उ. ५४० |
| गतिर्गती | ८।९।७० | उ. ४८७ | उ. ६९५ |
| गतिश्च | ९।४।६० | पू. ६३ | पू. ३२० |
| गत्यर्थकर्मणि द्विती० | २।३।९२ | पू. ९४० | पू. ४२४ |
| गत्यर्थलोटा लृपन० | ८।९।५९ | उ. ४८० | उ. ६७७ |
| गत्यर्थकर्मकश्चिप० | ३।४।७२ | पू. ३९६ | पू. ७४२ |
| गत्वरश्च | ३।२।९६४ | पू. २५३ | पू. ० |
| गदमदचरयमश्चा० | ३।९।९०० | पू. २७७ | पू. ५६३ |
| गन्तव्ययायं वाणिजे | ६।२।९३ | उ. २०६ | उ. ५३२ |
| गन्धस्येक्षुत्पृतिसुमु० | ५।४।९३५ | उ. ९३५ | उ. ४०६ |
| गन्धनावक्षेपणसेवन० | ९।३।३२ | पू. ६५ | पू. ३३४ |
| गमः क्ली | ६।४।४० | उ. ३०५ | उ. ६५३ |
| गमश्च | ३।२।४७ | पू. ३३८ | पू. ६३० |
| गमश्चजनस्यनघ० | ६।४।६८ | उ. ३९६ | उ. ६७५ |
| गमोरेट् परस्मैपठेपु | ७।२।५८ | उ. ३६० | उ. ७७६ |
| गम्भीराञ्ज्यः | ४।३।५८ | पू. ४३३ | उ. ९७३ |
| गर्गादिभ्यो यञ् | ४।९।९०५ | पू. ३६९ | उ. ९०० |
| गर्गात्तरपटाच्छः | ४।२।९३७ | पू. ४९६ | उ. ९५६ |
| गर्हायां लक्षिप० | ३।३।९४२ | पू. ३६२ | पू. ७०३ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|----------------------------|------------|---------|------------|-----|
| | अ. पा. सू. | पृ. | अ. पा. सू. | पृ. |
| गर्हाणां च | ३।३।१४६ | पृ. २६४ | पृ. ७०५ | |
| गवाश्वप्रभृतीनि च | २।४।१९ | पृ. १६९ | पृ. ४६५ | |
| नविपुर्धियां स्थिरः | ८।३।६५ | उ. ५५९ | उ. १००६ | |
| गस्थकन् | ३।९।१४६ | पृ. २९८ | पृ. ६०८ | |
| गर्हादिभ्यश्च | ४।२।१३८ | पृ. ४२० | उ. १६० | |
| गाङ्गुटादिभ्योऽङिण० | ९।२।९ | पृ. ३९ | पृ. १४६ | |
| गाङ्गु लिटि | २।४।४६ | पृ. १०२ | पृ. ४८२ | |
| गायञ्जगात्संज्ञा० | ५।२।१९० | उ. ६६ | उ. ३८४ | |
| गातिस्थ्यागुपाभूभ्यः | २।४।७७ | पृ. ९८० | पृ. ४६३ | |
| गाथिविदथिकेशिण० | ६।४।१६५ | उ. ३३७ | उ. ६६६ | |
| गाधलवणयोः प्रमाणे | ६।२।४ | उ. २०६ | उ. ५३० | |
| गाथोष्टक् | ३।२।८ | पृ. २२० | पृ. ६९३ | |
| गिरेश्च सेनकस्य | ५।४।१९२ | उ. १२६ | उ. ४०४ | |
| गुडादिभ्यष्टञ् | ४।४।१०३ | पृ. ४८९ | उ. ० | |
| गुणवचनत्राह्मणा० | ५।१।१२४ | उ. ३३ | उ. २७७ | |
| गुणोपुक्ते | ७।३।६९ | उ. ४३४ | उ. ८३६ | |
| गुणो यङ्लुकोः | ७।४।८२ | उ. ४५६ | उ. ८७० | |
| गुणोर्तिसंयोगाद्योः | ७।४।२६ | उ. ४४६ | उ. ८५६ | |
| गुपूधूपविच्छिपशि० | ३।९।२८ | पृ. ९६९ | पृ. ५४९ | |
| गुपेश्छन्दसि | ३।९।५० | पृ. ९६६ | पृ. ५६० | |
| गुप्तिञ्छिन्मयः सन् | ३।९।५ | पृ. ९८३ | पृ. ५०७ | |
| गुरोरनृतानन्त्यस्याप्येके० | ८।२।८६ | उ. ५९६ | उ. ६६३ | |
| गुरीश्च हलः | ३।३।१०३ | पृ. २८० | पृ. ६८८ | |
| गृधिवस्योः प्रलम्भने | ९।३।६६ | पृ. ७९ | पृ. २५४ | |
| गृध्यादिभ्यश्च | ४।९।१३६ | पृ. ३६६ | उ. १०७ | |
| गृहपतिना संपुक्ते ज्यः | ४।४।६० | पृ. ४७८ | उ. २१६ | |
| गृहे कः | ३।९।१४४ | पृ. २९७ | पृ. ६०७ | |
| गोः पादान्ते | ७।९।५७ | उ. ३५५ | उ. ७२२ | |
| गोचरसंचरवहवज्ज० | ३।३।१९६ | पृ. २८५ | पृ. ६६३ | |
| गोतन्त्रियवं पाले | ६।२।७८ | उ. २२६ | उ. ५५० | |
| गोप्तो णित् | ७।९।६० | उ. ३६४ | उ. ७३८ | |
| गोत्रज्ञत्रियाख्येभ्यो० | ४।३।६६ | पृ. ४४४ | उ. ९८३ | |
| गोत्रचरणाच्छ्राधा० | ५।९।१३४ | उ. ३७ | उ. २८० | |
| गोत्रचरणादुञ् | ४।३।१२६ | पृ. ४५९ | उ. ९८८ | |
| गोत्रस्त्रियाः कुत्सने० | ४।९।१४७ | पृ. ३७९ | उ. १०६ | |
| गोत्रादङ्गुधत् | ४।३।८० | पृ. ४३६ | उ. १७६ | |
| गोत्रादून्यस्त्रियाम् | ४।९।६४ | पृ. ३५७ | उ. ६३ | |

| | श्र. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-----------------------|--------------|---------------|-----------------|
| गोत्रान्तेवासिमायव० | ६।२।६६ | उ. २२७ | उ. ५४८ |
| गोत्राययवात् | ४।१।७६ | पू. ३५१ | उ. ६८ |
| गोत्रे कुञ्जादिभ्य० | ४।१।६८ | पू. ३५६ | उ. ६६ |
| गोत्रेऽलुगर्चि | ४।१।८६ | पू. ३५५ | उ. ८१ |
| गोत्रोद्गोष्टोरभराज० | ४।२।३६ | पू. ३६० | उ. १३५ |
| गोद्वेवासंख्या० | ५।१।३६ | उ. १२ | उ. २४७ |
| गोधाया द्रक् | ४।१।१२६ | पू. ३६८ | उ. ० |
| गोपयस्यत् | ४।३।१६० | पू. ४५६ | उ. १६७ |
| गोपुच्छाट्टञ् | ४।४।६ | पू. ४६२ | उ. ० |
| गोपवाग्वाञ्च | ४।२।१३६ | पू. ४९६ | उ. ० |
| गोरतद्धितलुकि | ५।४।६२ | उ. १२५ | उ. ४०२ |
| गोविडालसिंहसिन्ध० | ६।२।७२ | उ. २२८ | उ. ५४६ |
| गोपञ्च पुरीषे | ४।३।१४५ | पू. ४५६ | उ. १६४ |
| गोपदादिभ्यो लुन् | ५।२।६२ | उ. ५४ | उ. ० |
| गोष्ठात्ववभूतपूर्वे | ५।२।१८ | उ. ४२ | उ. २८७ |
| गोष्यं संवितासंवि० | ६।१।१४५ | उ. १८३ | उ. ४६६ |
| गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य | १।२।४८ | पू. ४५ | पू. १८७ |
| गोः साटसादिसार० | ६।२।४१ | उ. २२० | उ. ५३८ |
| गन्यान्ताधिके च | ६।३।७६ | उ. ३८१ | उ. ६१३ |
| गसितस्कभितस्त० | ७।२।३४ | उ. ३८२ | उ. ७६६ |
| गह्वदृनिप्रिचगमप्रच | ३।३।५८ | पू. ३७२ | पू. ६८० |
| गह्विज्यायव्यधिच० | ६।१।१६ | उ. १४६ | उ. ४३० |
| गहोर्गलिटि दीर्घः | ७।२।३७ | उ. ३८४ | उ. ७७१ |
| गामः शिल्पिनि | ६।२।६२ | उ. २२५ | उ. ५४७ |
| गामकौटाभ्यां च त० | ५।४।६५ | उ. १२६ | उ. ० |
| गामजनपदैऋदेशाद० | ४।३।७ | पू. ४२३ | उ. १६३ |
| गामजनवन्धुभ्यस्तल् | ४।२।४३ | पू. ३६९ | उ. ० |
| गामात्पर्यनुपूर्वात् | ४।३।६९ | पू. ४३५ | उ. ० |
| गाम्नाद्यत्वञौ | ४।२।६४ | पू. ४०८ | उ. १५० |
| गामोऽनिवसन्तः | ६।२।८४ | उ. २३९ | उ. ५५९ |
| गाम्यप्रशुमङ्घेयतरु० | १।२।७३ | पू. ५२ | पू. २९० |
| गोवाभ्याश्च | ४।३।५० | पू. ४३३ | उ. १७३ |
| ग्रीष्मवसन्तादन्यतर० | ४।३।४६ | पू. ४३९ | उ. ० |
| ग्रीष्मावरसमाट्टञ् | ४।३।४६ | पू. ४३९ | उ. १७२ |
| गो यङि | ८।२।२० | उ. ५०० | उ. ६४० |
| गनाजिस्थश्चगमुः | ३।२।१३६ | पू. २४८ | पू. ६५२ |
| घकालतनेपु कालना० | ६।३।१० | उ. २६४ | उ. ५८४ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| घञ्चौ च | ४।४।११७ | पृ. ४८४ | उ. २२१ |
| घञः सास्यां क्रिये० | ४।२।५८ | पृ. ३९६ | उ. १४० |
| घञपोश्च | २।४।३८ | पृ. १७० | ० |
| घञि च भावकरणायोः | ६।४।२७ | उ. ३०२ | उ. ६५१ |
| घनिलचौ च | ५।३।७९ | उ. ९१ | उ. ३६१ |
| घरूपकल्पचेलङ्गुव० | ६।३।४३ | उ. २७२ | उ. ५९८ |
| घसिमसोर्हलि च | ६।४।१०० | उ. ३२० | उ. ६७६ |
| घुमास्थगापाजहा० | ६।४।६६ | उ. ३१२ | उ. ६६६ |
| घुषिरविशब्दने | ७।२।२३ | उ. ३७९ | उ. ७६३ |
| घेडिति | ७।३।१११ | उ. ४३९ | उ. ८४१ |
| घोलोपो लेटि वा | ७।३।७० | उ. ४२९ | उ. ८२७ |
| घोषादिषु च | ६।२।८५ | उ. २३१ | उ. ५५१ |
| घ्वसोरेच्चावभ्यास० | ६।४।११९ | उ. ३२४ | उ. ६८१ |
| ङमे कृत्वादिच ङमु० | ८।३।३२ | उ. ५३४ | उ. ९८२ |
| ङयि च | ६।१।२१२ | उ. २०१ | उ. ५२३ |
| ङमिङसोश्च | ६।१।११० | उ. १७४ | उ. ४७६ |
| ङसिङयोः स्मारिस्मनौ | ७।१।१५ | उ. ३४४ | उ. ० |
| ङिच्च | १।१।५३ | पृ. २० | पृ. १०१ |
| ङिति कृत्वश्च | १।४।६ | पृ. ७९ | पृ. २६८ |
| ङेप्रथमयोरम् | ७।१।२८ | उ. ३४७ | उ. ७११ |
| ङेरासदानीभ्यः | ७।३।११६ | उ. ४४० | उ. ८४३ |
| ङेर्यः | ७।१।१३ | उ. ३४४ | उ. ७०६ |
| ङणोः कुक्कुक् शरि | ८।३।२८ | उ. ५३३ | उ. ९८१ |
| ङ्यायोः संज्ञाच्छन्दसो० | ६।३।६३ | उ. २७७ | उ. ६०६ |
| ङ्याप्पातिपटिकात् | ४।१।१ | पृ. ३२९ | उ. १ |
| ङ्याप्रच्छन्दसि व्यु० | ६।१।१७८ | उ. १९४ | उ. ० |
| चत्तिङः ख्याञ् | २।४।५४ | पृ. १७३ | पृ. ४८३ |
| चङि | ६।१।११ | उ. १४४ | उ. ४२७ |
| चङ्यन्तरस्याम् | ६।१।२१८ | उ. २०२ | उ. ५२४ |
| चञोः कुचिगयतोः | ७।३।५२ | उ. ४२४ | उ. ८२२ |
| चटकाया शेरक् | ४।१।१२८ | पृ. ३६८ | उ. १०६ |
| चतुरः शसि | ६।१।१६७ | उ. १९० | उ. ५०९ |
| चतुरनहुहोरामुदात्तः | ७।१।९८ | उ. ३६६ | उ. ७४४ |
| चतुर्थी चाशिष्यायु० | २।३।७३ | पृ. १५८ | पृ. ४५७ |
| चतुर्थी तदर्थार्थब० | २।१।३६ | पृ. ११४ | पृ. ३६६ |
| चतुर्थी तदर्थे | ६।२।४३ | उ. २२१ | उ. ५३९ |
| चतुर्थी संप्रदाने | २।३।१३ | पृ. १४१ | पृ. ४२५ |

| | अ. पा. मू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|----------|
| चतुर्थ्यर्थे बहुलं ह० | २।३।६२ | पू. १५४ | पू. ४५३ |
| चतुष्पादो गर्भणया | २।१।७१ | पू. १२४ | पू. ३८५ |
| चतुष्पात्कथो ढञ् | ४।१।१३५ | पू. ३६६ | ल. १०० |
| चनचिद्विद्यगोत्रादि० | ८।१।५७ | ल. ४८२ | ल. ६११ |
| चरणो ब्रह्मचारिणि | ६।३।८६ | ल. २८३ | ल. ६१५ |
| चरणेभ्यो धर्मवत् | ४।२।४६ | पू. ३६२ | ल. १३७ |
| चरति | ४।४।८ | पू. ४६३ | ल. ० |
| चरफलोञ्च | ७।४।८७ | ल. ४६० | ल. ८७१ |
| चरेष्टः | ३।२।१६ | पू. २२२ | पू. ० |
| चर्मणोऽञ् | ५।१।१५ | ल. ५ | ल. २३६ |
| चर्मोदरयोः पूरः | ३।४।३१ | पू. ३०६ | पू. ७२६ |
| चलनशब्दार्थादक० | ३।२।१४८ | पू. २५० | पू. ६५४ |
| चवायोगे प्रथमा | ८।१।५६ | ल. ४८३ | ल. ६११ |
| चादयो सत्त्वे | १।४।५७ | पू. ६१ | पू. ३१७ |
| चादिलोपे विभाषा | ८।१।६३ | ल. ४८४ | ल. ६११ |
| चादिषु च | ८।१।५८ | ल. ४८३ | ल. ६११ |
| चायः की | ६।१।२१ | ल. १४६ | ल. ४३२ |
| चायः की | ६।१।३५ | ल. १५३ | ल. ० |
| चाये द्वन्द्वः | २।२।२६ | पू. १३४ | पू. ४११ |
| चाहलोपयेत्यथ० | ८।१।६२ | ल. ४८४ | ल. ६११ |
| चिणो लुक् | ६।४।१०४ | ल. ३२१ | ल. ६७७ |
| चिणामुलोदीर्घान्य० | ६।४।६३ | ल. ३१८ | ल. ६७३ |
| चिरते पठः | ३।१।६० | पू. १६८ | पू. ५६३ |
| चिरभाषकर्मणोः | ३।१।६६ | पू. १६६ | पू. ५६५ |
| चित्तः | ६।१।१६३ | ल. १८६ | ल. ५०० |
| चित्तेः कृपि | ६।३।१२७ | ल. २६२ | ल. ० |
| चित्तवति नित्यम् | ५।१।८६ | ल. २४ | ल. २६० |
| चित्याग्निचित्ये च | ३।१।१३२ | पू. २१४ | पू. ६०३ |
| चित्रीकरणे च | ३।३।१५० | पू. २६४ | पू. ० |
| चिदिति चोपमाथे० | ८।२।१०१ | ल. ५२२ | ल. ६६८ |
| चिन्तिपूजिकश्चि० | ३।३।१०५ | पू. २८१ | पू. ६६८ |
| चिस्फुरोर्णो | ६।१।५४ | ल. १५७ | ल. ० |
| चिभिसुपमानम् | ६।२।१२७ | ल. २४१ | ल. ५५६ |
| चुट्ट | १।३।७ | पू. ५४ | पू. ३१८ |
| चूर्णादिनिः | ४।४।२३ | पू. ४६६ | ल. २०४ |
| चूर्णादीन्यप्राणि० | ६।२।१३४ | ल. २४२ | ल. ५६० |
| चेलखेटकटुकका० | ६।२।१२६ | ल. २४० | ल. ५५६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| चैले क्रोपे: | ३।४।३३ | पृ. ३१० | पृ. ७३० |
| चोः कुः | ८।२।३० | उ. ५०३ | उ. ६४४ |
| चौ | ६।१।२२२ | उ. २०३ | उ. ५२५ |
| चौ | ६।३।१३८ | उ. २६४ | उ. ६२४ |
| च्छयोः शूडनुनासिके च | ६।४।१६ | उ. ३०० | उ. ६३७ |
| च्छि लुङि० | ३।१।४३ | पृ. १६४ | पृ. ५५४ |
| च्छः सिच् | ३।१।४४ | पृ. १६४ | पृ. ५५७ |
| च्छौ च | ७।४।२६ | उ. ४४६ | उ. ० |
| छगलिनो टिनुक् | ४।३।१०६ | पृ. ४४८ | उ. ० |
| छ च | ४।२।२८ | पृ. ३८७ | उ. १३२ |
| छत्रादिभ्यो याः | ४।४।६२ | पृ. ४७३ | उ. २१० |
| छदिरूपधिवलेर्हञ् | ५।१।१३ | उ. ५ | उ. २३५ |
| छन्दसि गत्यर्थेभ्यः | ३।३।१२६ | पृ. २८७ | पृ. ० |
| छन्दसि घस् | ५।१।१०६ | उ. २६ | उ. २६५ |
| छन्दसि च | ५।१।६७ | उ. १६ | उ. ० |
| छन्दसि च | ५।४।१४२ | उ. १३६ | उ. ० |
| छन्दसि च | ६।३।१२६ | उ. २६२ | उ. ६२३ |
| छन्दसि ठञ् | ४।३।१६ | पृ. ४२६ | उ. १६५ |
| छन्दसि निष्टवर्त्य० | ३।१।१२३ | पृ. २११ | पृ. ६०० |
| छन्दसि परिपन्थि० | ५।२।८६ | उ. ६० | उ. ३१३ |
| छन्दसि परोपि | १।४।८१ | पृ. ६७ | पृ. ३२७ |
| छन्दसि पुनर्वस्वारे० | १।२।६१ | पृ. ४६ | पृ. १६८ |
| छन्दसि लिट् | ३।२।१०५ | पृ. २४१ | पृ. ६३५ |
| छन्दसि लुङ्लङ्० | ३।४।६ | पृ. ३०३ | पृ. ७२० |
| छन्दसि वनसनर० | ३।२।२७ | पृ. २२४ | पृ. ६१७ |
| छन्दसि वा प्राप्ते० | ८।३।४६ | उ. ५३६ | उ. ६६३ |
| छन्दसि शायजापि | ३।१।८४ | पृ. २०२ | पृ. ५७० |
| छन्दसि सहः | ३।२।६३ | पृ. २३२ | पृ. ६२५ |
| छन्दसीरः | ६।२।१५ | उ. ४६८ | उ. ० |
| छन्दसो निर्मिते | ४।४।६३ | पृ. ४७६ | उ. २१८ |
| छन्दसो यदणो | ४।३।७१ | पृ. ४३७ | उ. १७८ |
| छन्दस्यनेकमपि० | ८।१।३५ | उ. ४७६ | उ. ६०४ |
| छन्दस्यपि दृश्यते | ६।४।७३ | उ. ३१४ | उ. ० |
| छन्दस्यपि दृश्यते | ७।१।७६ | उ. ३६१ | उ. ७३३ |
| छन्दस्युभयथा | ३।४।११७ | पृ. ३२८ | उ. ७५४ |
| छन्दस्युभयथा | ६।४।५ | उ. २६६ | उ. ६२६ |
| छन्दस्युभयथा | ६।४।८६ | उ. ३१६ | उ. ० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-------------------------|-------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| कन्दस्यद्रवपहात् | ८ । ४ । २६ | उ. ५६४ | उ. १०२६ |
| कन्दोर्गाक्रियक्रया० | ४ । ३ । १२६ | पू. ४५२ | उ. १८६ |
| कन्दोर्नामि च | ३ । ३ । ३४ | पू. २६७ | पू. ६७४ |
| कन्दोर्नामि च | ८ । ३ । ६४ | उ. ५५९ | उ. १००६ |
| कन्दोर्ब्राह्मणानि च त० | ४ । २ । ६६ | पू. ३६६ | उ. १४४ |
| कात्यायनः शालायाम् | ६ । २ । ८६ | उ. २३९ | उ. ५५२ |
| काठेर्घोऽपसर्गस्य | ६ । ४ । ६६ | उ. ३९६ | उ. ६७५ |
| काया ब्राह्मणे | २ । ४ । २२ | पू. १६५ | पू. ४७२ |
| के च | ६ । १ । ७३ | उ. १६४ | उ. ४५५ |
| केटादिभ्यो नित्यम् | ५ । १ । ६४ | उ. ९६ | उ. २५५ |
| कृत्तित्यादयः षट् | ६ । १ । ६ | उ. १४२ | उ. ४२४ |
| कङ्कलधेनुवलजान्त० | ७ । ३ । २५ | उ. ४९५ | उ. ८९९ |
| जनपदतदवध्याश्च | ४ । २ । १२४ | पू. ४९६ | उ. १५७ |
| जनपदशब्दान्त० | ४ । १ । १६८ | पू. ३७८ | उ. १२० |
| जनपदिना जनपद० | ४ । ३ । १०० | पू. ४४४ | उ. १८३ |
| जनपदे लुप् | ४ । २ । ८९ | पू. ४०५ | उ. ० |
| जनसनयनक्रमगमो० | ३ । २ । ६७ | पू. २३३ | पू. ६२५ |
| जनसनयनां सञ्फलोः | ६ । ४ । ४२ | उ. ३०६ | उ. ६५४ |
| जनिकर्तुः प्रकृतिः | १ । ४ । ३० | पू. ८४ | पू. २८८ |
| जनिता मन्त्रे | ६ । ४ । ५३ | उ. ३०६ | उ. ० |
| जनिवध्याश्च | ७ । ३ । ३५ | उ. ४९८ | उ. ८९४ |
| जपजभट्टहट्टशभञ्ज० | ७ । ४ । ८६ | उ. ४६० | उ. ८७९ |
| जम्ब्या वा | ४ । ३ । १६५ | पू. ४६० | उ. १६८ |
| जम्भासुहरितवृण० | ५ । ४ । १२५ | उ. १३३ | उ. ४७७ |
| जयः करणम् | ६ । १ । २०२ | उ. १६६ | उ. ० |
| जराया जरसन्य० | ७ । २ । १०९ | उ. ४०३ | उ. ७६४ |
| जल्पभित्तकुट्टलुण्ठ० | ३ । २ । १५५ | पू. २५२ | पू. ६५६ |
| जसः शी | ७ । १ । १७ | उ. ३४५ | उ. ७०७ |
| जप्रशसाः शिः | ७ । १ । २० | उ. ३४५ | उ. ७०८ |
| जसि च | ७ । ३ । १०६ | उ. ४३८ | उ. ८४९ |
| जहातेश्च | ६ । ४ । ११६ | उ. ३२४ | उ. ६८९ |
| जहातेश्च तिव | ७ । ४ । ४३ | उ. ४४६ | उ. ८५६ |
| जागरकः | ३ । २ । १६५ | पू. २५४ | पू. ० |
| जासो विचिण्या० | ७ । ३ । ८५ | उ. ४३२ | उ. ८३९ |
| जातरुपेभ्यः ष० | ४ । ३ । १५३ | पू. ४५७ | उ. १६५ |
| जातिकालसुखा० | ६ । २ । १७० | उ. २५४ | उ. ५७० |
| जातिनामः क्व | ५ । ३ । ८९ | उ. ६९ | उ. ३६९ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------|--------------|---------|----------|
| जातिरप्राणिनाम् | २।४।६ | पू. १६० | पू. ४६३ |
| जातुपदोर्लिङ् | ३।३।१४० | पू. २६३ | पू. ७०४ |
| जातेरस्त्रीविषयाद० | ४।१।६३ | पू. ३४८ | उ. ५७ |
| जातेष्व | ६।३।४९ | उ. २७९ | उ. ५६० |
| जात्यन्ताच्छ बन्धुनि | ५।४।६ | उ. १०४ | उ. ३७४ |
| जात्याख्यायामेक० | १।२।५८ | पू. ४८ | पू. १६६ |
| जात्वपूर्वम् | ८।१।४७ | उ. ४७६ | उ. ६०७ |
| जानपदकुण्ड० | ४।१।४२ | पू. ३४९ | उ. ४४ |
| जान्तनशा विभाषा | ६।४।३२ | उ. ३०३ | उ. ६५९ |
| जायाया निङ् | ५।४।१३४ | उ. १३५ | उ. ० |
| जालमानायः | ३।३।१२४ | पू. २८६ | पू. ६६४ |
| जासिनिप्रहणनाट० | ३।३।५६ | पू. १५३ | पू. ४५० |
| जिघ्रतेर्वा | ७।४।६ | उ. ४४२ | उ. ० |
| जिह्विवित्री० | ३।२।१५७ | पू. २५२ | पू. ६५६ |
| जिह्वामूलाङ्गुलेष्वः | ४।३।६२ | पू. ४३५ | उ. ० |
| जीर्घतेरत्न | ३।२।१०४ | पू. २४९ | पू. ० |
| जीघति तु वंशये० | ४।१।१६३ | पू. ३७६ | उ. १९७ |
| जीविकार्थं चापयये० | ५।३।६६ | उ. ६६ | उ. ३६६ |
| जीघिकोपनिषदावौ० | १।४।७६ | पू. ६७ | पू. ३२५ |
| जुचइक्रम्यदन्त्रम्य० | ३।२।१५० | पू. २५९ | पू. ६५४ |
| जुष्टार्पिते चच्छ० | ६।१।२०६ | उ. ३०९ | उ. ५३३ |
| जुसि च | ७।३।८३ | उ. ४३२ | उ. ८३० |
| जुहोत्यादिभ्यः श्लुः | २।४।७५ | पू. १८० | पू. ४६३ |
| जुष्रश्च्योः त्तिव | ७।२।५५ | उ. ३८६ | उ. ० |
| जूस्तम्भुमुचुमुचु० | ३।१।५८ | पू. १६७ | पू. ५६३ |
| जि प्रोष्ठपदानाम् | ७।३।१८ | उ. ४९३ | उ. ८०६ |
| जाजनोर्जा | ७।३।७६ | उ. ४३९ | उ. ८३० |
| जाशुस्मृशं सनः | १।३।५७ | पू. ६७ | पू. ३४९ |
| जो विदर्थस्य करयो | २।३।५९ | पू. १५९ | पू. ४४८ |
| ज्य च | ५।३।६९ | उ. ८७ | उ. ३५९ |
| ज्यश्च | ६।१।४२ | उ. १५५ | उ. ० |
| ज्यादादीयसः | ६।४।१६० | उ. ३३६ | उ. ६६५ |
| ज्योतिरायुषः स्तोमः | ८।३।८३ | उ. ५४८ | उ. १००६ |
| ज्योतिर्जनपदरा० | ६।३।८५ | उ. २८३ | उ. ६९५ |
| ज्योत्स्नातमिसा० | ५।२।१९४ | उ. ६७ | उ. ३२५ |
| ज्वरत्वरसिष्यवि० | ६।४।२० | उ. ३०० | उ. ६४० |
| ज्वलितिकथन्ते० | ३।१।१४० | पू. २९६ | पू. ६०६ |

| | अ. पा. सु. | काशिका | पद्मञ्जरी |
|-------------------------|------------|---------|-----------|
| | | पृ. | पृ. |
| अयः | ५।४।१११ | उ. १२६ | उ. ४०३ |
| अयः | ८।२।१० | उ. ४६७ | उ. ६३५ |
| अयो ह्यन्यतरस्याम् | ८।४।६२ | उ. ५७३ | उ. १०३४ |
| अरो अरि सवर्गौ | ८।४।६५ | उ. ५७४ | उ. १०३५ |
| अलां जशान्ते | ८।२।३६ | उ. ५०६ | उ. ६४८ |
| अलां जश् अशि | ८।४।५३ | उ. ५७१ | उ. १०३३ |
| अलो अलि | ८।२।२६ | उ. ५०२ | उ. ६४३ |
| अल्युपात्तम् | ६।१।१८० | उ. १६४ | उ. ५१४ |
| अवस्तयोर्द्धो ऽधः | ८।२।४० | उ. ५०६ | उ. ६४८ |
| अस्य रन् | ३।४।१०५ | पृ. ३२६ | पृ. ७५१ |
| अर्जुस् | ३।४।१०८ | पृ. ३२६ | पृ. ७५२ |
| अःान्तः | ७।१।३ | उ. ३४१ | उ. ७०३ |
| अितश्च तत्प्रत्ययात् | ४।३।१५५ | पृ. ४५८ | उ. १६५ |
| अीतः क्तः | ३।२।१८७ | पृ. २५८ | पृ. ६६१ |
| अनित्यादिर्नित्यम् | ६।१।१६७ | उ. १६८ | उ. ५२१ |
| अ्यादवस्तद्राजाः | ५।३।११६ | उ. १०१ | उ. ० |
| टाङ्गिहसामि० | ७।१।१२ | उ. ३४३ | उ. ७०५ |
| टाङ्गिच | ४।१।६ | पृ. ३३२ | उ. २२ |
| टिङ्गायाञ्चट्टयस० | ४।१।१५ | पृ. ३३३ | उ. २६ |
| टित् आत्मने पदानां टेरि | ३।४।७६ | पृ. ३२१ | पृ. ७४५ |
| टेः | ६।४।१४३ | उ. ३३० | उ. ६६४ |
| टेः | ६।४।१५५ | उ. ३३५ | उ. ६८६ |
| ट्वितोयुच | ३।३।८६ | पृ. २७८ | पृ. ६८४ |
| ठक्कौ च | ४।२।८४ | पृ. ४०६ | उ. ० |
| ठगापस्थानेभ्यः | ४।३।७५ | पृ. ४३८ | उ. १७६ |
| ठञ्चवचिनश्च | ४।२।४१ | पृ. ३६१ | उ. ० |
| ठस्येकः | ७।३।५० | उ. ४२४ | उ. ८२१ |
| ठाजादावूर्ध्वं द्विती० | ५।३।८३ | उ. ६२ | उ. ३६१ |
| डः सि धुट् | ८।३।३६ | उ. ५३३ | उ. ६८१ |
| डति च | १।१।२५ | पृ. १३ | पृ. ७५ |
| डायुभाभ्यामन्य० | ४।१।१३ | पृ. ३३३ | उ. २४ |
| ड्वितः क्तः | ३।३।६८ | पृ. २७७ | पृ. ६६४ |
| ठकि लोपः | ४।१।११३ | पृ. ३६६ | उ. १०६ |
| ठक् च मगङ्गात् | ४।१।११६ | पृ. ३६६ | उ. ० |
| ठञ्चन्दसि | ४।४।१०६ | पृ. ४८२ | उ. ० |
| ठे लोपो ञ्कट्वाः | ६।४।१४७ | उ. ३३१ | उ. ६६० |
| ठेा ठे लोपः . | ८।३।१३ | उ. ५२६ | उ. ६७६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|------------------------------|------------|---------------|-----------------|
| द्वलोपे पूर्वस्य० | ६।३।११९ | उ. २८८ | उ. ६२० |
| गात्रः स्त्रियामञ् | ५।४।१४ | उ. १०५ | उ. ३०६ |
| गानुत्तमा वा | ७।१।६१ | उ. ३६५ | उ. ७३६ |
| गात्रश्च | १।३।७४ | पृ. ७२ | पृ. २५६ |
| गिजां त्रयाणाम् | ७।४।७५ | उ. ४५७ | उ. ८६८ |
| गिनिः | ६।२।७६ | उ. २३० | उ. ० |
| गिनिद्रुसु० | ३।१।४८ | पृ. १६५ | पृ. ५६० |
| गोरगौ यत्कर्म गौ | १।३।६७ | पृ. ७० | पृ. २४६ |
| गोरध्ययने वृत्तं | ७।२।२६ | उ. ३८० | उ. ७६४ |
| गोरनिटि | ६।४।५१ | उ. ३०८ | उ. ६५६ |
| गोर्विभाषा | ८।४।३० | उ. ५६५ | उ. १०२८ |
| गोशब्दन्तसि | ३।२।१३७ | पृ. २४८ | पृ. ६५२ |
| गो नः | ६।१।६५ | उ. १६१ | उ. ४४८ |
| गौ गमिरद्योधने | २।४।४६ | पृ. १७१ | पृ. ० |
| गौ चङ्गुपधाया ह्रस्वः | ७।४।१ | उ. ४४० | उ. ८४४ |
| गौ च संश्चङोः | २।४।५१ | पृ. १७२ | पृ. ४८३ |
| गौ च संश्चङोः | ६।१।३१ | उ. १५२ | उ. ४३५ |
| गयश्चावश्यके | ७।३।६५ | उ. ४२८ | उ. ८२६ |
| गयत्तत्रियार्पितो० | २।४।५८ | पृ. १७४ | पृ. ४८५ |
| गयासश्चन्या युच् | ३।३।१०७ | पृ. २८१ | पृ. ६८६ |
| गयुद् च | ३।१।१४७ | पृ. २१८ | पृ. ६०८ |
| गयुत्तुच् | ३।१।१३३ | पृ. २१४ | पृ. ० |
| तडानावात्मनेपदम् | १।४।१०० | पृ. १०१ | पृ. ३३४ |
| तत आगतः | ४।३।७४ | पृ. ४३८ | उ. १७६ |
| तत्पुरुषः | २।१।२२ | पृ. ११० | पृ. ३६० |
| तत्पुरुषः समानाधि० | १।२।४२ | पृ. ४३ | पृ. १७७ |
| तत्पुरुषस्याद्गुणेः० | ५।४।८६ | उ. १२३ | उ. ४०० |
| तत्पुरुषे कति अ० | ६।३।१४ | उ. २६४ | उ. ५८४ |
| तत्पुरुषे तुल्यार्थवृत्तिया० | ६।२।२ | उ. २०४ | उ. ५२६ |
| तत्पुरुषे शालायां० | ६।२।१२३ | उ. २४० | उ. ५५८ |
| तत्पुरुषो नञ्कर्म० | २।४।१६ | पृ. १६४ | पृ. ४७१ |
| तत्प्रकृतवचने मयद् | ५।४।२१ | उ. १०६ | उ. ३८७ |
| तत्प्रत्यनुपूर्वमीप० | ४।४।३८ | पृ. ४६६ | उ. २०४ |
| तत्प्रत्ययस्य च | ७।३।२६ | उ. ४१६ | उ. ८१२ |
| तत्प्रयोजको हेतुश्च | १।४।५५ | पृ. ६१ | पृ. ३१४ |
| तत्र | २।१।४६। | पृ. ११७ | पृ. ३७१ |
| तत्र कुशलः पथः | ५।२।६३ | उ. ५४ | उ. ३०७ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|-------------|---------------|-----------------|
| तत्र च दीयते कार्य० | ५ । १ । ६६ | अ. २६ | अ. २६३ |
| तत्र जातः | ४ । ३ । २५ | पृ. ४२७ | अ. १६७ |
| तत्र तस्येव | ५ । १ । ११६ | अ. ३१ | अ. २६६ |
| तत्र तेनेदमिति स० | २ । २ । २७ | पृ. १३३ | पृ. ४१० |
| तत्र नियुक्तः | ४ । ४ । ६६ | पृ. ४७५ | अ. २१२ |
| तत्र भवः | ४ । ३ । ५३ | पृ. ४३२ | अ. १७३ |
| तत्र विदित इति च | ५ । १ । ४३ | अ. १३ | अ. २४७ |
| तत्र साधुः | ४ । ४ । ६८ | पृ. ४८० | अ. २१६ |
| तत्रोद्धतममत्रेभ्यः | ४ । २ । १४ | पृ. ३८४ | अ. १३६ |
| तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् | ३ । १ । ६२ | पृ. २०५ | पृ. ५८५ |
| तत्सर्वादेः पथ्यङ्कर्म० | ५ । २ । ७ | अ. ३६ | अ. २८३ |
| तथायुक्त चानी० | १ । ४ । ५० | पृ. ८८ | पृ. ३०३ |
| तदधीते तद्वेद | ४ । २ । ५६ | पृ. ३६६ | अ. १४० |
| तदधीनवचने | ५ । ४ । ५४ | अ. ११५ | अ. ३६१ |
| तदर्थं विक्रतेः प्रकृती | ५ । १ । १२ | अ. ४ | अ. २३३ |
| तदहति | ५ । १ । ६३ | अ. १६ | अ. २५५ |
| तदर्हम् | ५ । १ । ११७ | अ. ३१ | अ. २७० |
| तदश्रिष्यं संज्ञाप्र० | १ । २ । ५३ | पृ. ४७ | पृ. १६३ |
| तदस्मिन्नाधिकमि० | ५ । २ । ४५ | अ. ४६ | अ. २६६ |
| तदस्मिन्नत्र प्राये० | ५ । २ । ८२ | अ. ५८ | अ. ३१८ |
| तदस्मिन्नस्तांति दे० | ४ । २ । ६७ | पृ. ३६६ | अ. १४५ |
| तदस्मिन्वृद्धयायला० | ५ । १ । ४७ | अ. १३ | अ. २४७ |
| तदस्मि दीयते नि० | ४ । ४ । ६६ | पृ. ४७४ | अ. २११ |
| तदस्य तदस्मिन्स्या० | ५ । १ । १६ | अ. ५ | अ. २३६ |
| तदस्य पययम् | ४ । ४ । ५१ | पृ. ४७१ | अ. २०८ |
| तदस्य परिमाणं | ५ । १ । ५७ | अ. १६ | अ. २५० |
| तदस्य ब्रह्मचर्यम् | ५ । १ । ६४ | अ. २५ | अ. २६१ |
| तदस्य संजातं तार० | ५ । २ । ३६ | अ. ४६ | अ. २६३ |
| तदस्य सोढम् | ४ । ३ । ५२ | पृ. ४३२ | अ. १७२ |
| तदस्यां प्रहरणमि० | ४ । २ । ५७ | पृ. ३६६ | अ. ० |
| तदस्यास्त्यस्मिन्नि० | ५ । २ । ६४ | अ. ६२ | अ. ३१५ |
| तदोः सः सावन० | ७ । २ । १०६ | अ. ४०४ | अ. ७६७ |
| तदो दा च | ५ । ३ । १६ | अ. ७७ | अ. ३३६ |
| तदुच्छति पशितयोः | ४ । ३ । ८५ | पृ. ४४० | अ. १८० |
| तद्वरतिपश्यायहति० | ५ । १ । ५० | अ. १४ | अ. २४८ |
| तद्वरतिपश्यायहतिः | १ । १ । ३८ | पृ. १७ | पृ. ८५ |
| तद्वरतिपश्यायहतिः | ६ । १ । १६४ | अ. १८६ | अ. ५०८ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| तद्धिताः | ४।१।७६ | पृ. ३५१ | उ. ६४ |
| तद्धितार्थोत्तरपद० | ३।१।५१ | पृ. ११८ | पृ. ३७३ |
| तद्धितेष्वचामादेः | ७।२।११७ | उ. ४०६ | उ. ७६६ |
| तद्युक्तात्कर्मणोः | ५।४।३६ | उ. ११० | उ. ३८३ |
| तद्राजस्य बहुषु० | ३।४।६२ | पृ. १७६ | पृ. ४८७ |
| तद्वहतिरथयुगप्रास० | ४।४।७६ | पृ. ४७६ | उ. २१३ |
| तद्वानासामुपधानो० | ४।४।१२५ | पृ. ४८५ | उ. २२२ |
| तनाटिकृजभ्य उः | ३।१।७६ | पृ. २०१ | पृ. ५६६ |
| तनाटिभ्यस्तथासोः | २।४।७६ | पृ. १८१ | पृ. ४६४ |
| तनिपत्योः प्रकृन्दिषि | ६।४।६६ | उ. ३३० | उ. ६७६ |
| तनूकरणो तच्चः | ३।१।७६ | पृ. ३०० | पृ. ५६८ |
| तनोतेर्यक | ६।४।४४ | उ. ३०६ | उ. ० |
| तनोतेर्विभाषा | ६।४।१७ | उ. २६६ | उ. ६३७ |
| तन्वादिचिरापहृते | ५।२।७० | उ. ५६ | उ. ३०८ |
| तपःसहस्राभ्यां चि० | ५।२।१०२ | उ. ६५ | उ. ३२३ |
| तपरस्तत्कालस्य | १।१।७० | पृ. २६ | पृ. १४० |
| तपस्तपः कर्मकस्यैव | ३।१।८८ | पृ. ३०३ | पृ. ५७६ |
| तपोनुतापे च | ३।१।६५ | पृ. १६६ | पृ. ५६४ |
| तप्तनप्तनथनाश्च | ७।१।४५ | उ. ३५२ | उ. ७१६ |
| तमधीष्टोभतेभू० | ५।१।८० | उ. ३२ | उ. २५६ |
| तयोरैव कृत्यक्तखलर्थाः | ३।४।७० | पृ. ३१८ | पृ. ७४१ |
| तयोर्ध्याहिनी चक्रे० | ५।३।२० | उ. ७७ | उ. ३३६ |
| तयोर्ध्यावचि संज्ञि० | ८।२।१०८ | उ. ५२५ | उ. ६७१ |
| तरति | ४।४।५ | पृ. ४६२ | उ. ० |
| तरप्तमपो घः | १।१।२२ | पृ. १२ | पृ. ७३ |
| तद्यकममकावेकवचने | ४।३।३ | पृ. ४२३ | उ. १६२ |
| तवममो ङसि | ७।२।६६ | उ. ४०१ | उ. ० |
| तवे चान्तश्च युगपत् | ६।२।५१ | उ. २२३ | उ. ५४४ |
| तव्यत्तव्यानीयरः | ३।१।६६ | पृ. २०६ | पृ. ५६१ |
| तक्षिलादिष्वाकृत्व० | ६।३।३५ | उ. २६६ | उ. ५६४ |
| तसिश्च | ४।३।११३ | पृ. ४४६ | उ. १८७ |
| तसेश्च | ५।३।८ | उ. ७५ | उ. ३४५ |
| तसो मत्वर्थे | १।४।१६ | पृ. ८२ | पृ. २७६ |
| तस्यस्यमिषां तां० | ३।४।१०१ | पृ. ३२५ | पृ. ० |
| तस्माच्छसो नः पुंसि | ६।१।१०३ | उ. १७३ | उ. ४७६ |
| तस्मादित्युत्तरस्य | १।१।६७ | पृ. २८ | पृ. १३५ |
| तस्मानुडचि | ६।३।७४ | उ. २८० | उ. ६११ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|------------|---------------|-----------------|
| तस्मान्द् द्विहलः | ७।४।७९ | उ. ४५७ | उ. ८६८ |
| तस्मिन्नाणि च युष्माका० | ४।३।२ | पु. ४२२ | उ. ९६९ |
| तस्मिन्निति निर्दिष्टे० | ९।९।६६ | पु. २७ | पु. ९३४ |
| तस्मै प्रभवति सं० | ५।९।९०९ | उ. २७ | उ. ० |
| तस्मै हितम् | ५।९।५ | उ. २ | उ. २३० |
| तस्य तात् | ७।९।४४ | उ. ३५२ | उ. ७९६ |
| तस्य च दक्षिणा यज्ञा० | ५।९।६५ | उ. २६ | उ. २६२ |
| तस्य धर्म्यं | ४।४।४७ | पु. ४०० | उ. २०८ |
| तस्य निमित्तं संयो० | ५।९।३८ | उ. ९२ | उ. २४६ |
| तस्य निवासः | ४।२।६६ | पु. ४०० | उ. ९४५ |
| तस्य परमाश्रितम् | ८।९।२ | उ. ४६४ | उ. ८८९ |
| तस्य पाकमूलेपी० | ५।२।२४ | उ. ४३ | उ. २८६ |
| तस्य पूरणे इद् | ५।२।४८ | उ. ५९ | उ. ३०२ |
| तस्य भावस्त्वतली | ५।९।९९६ | उ. ३९ | उ. २७९ |
| तस्य लोपः | ९।३।६ | पु. ५५ | पु. ३९६ |
| तस्य वापः | ५।९।४५ | उ. ९३ | उ. २४७ |
| तस्य विकारः | ४।३।९३४ | पु. ४५३ | उ. ९६० |
| तस्य व्याख्यानइति० | ४।३।६६ | उ. ४३६ | उ. ९७५ |
| तस्य समूहः | ४।२।३७ | पु. ३८६ | उ. ९३४ |
| तस्यादित उदात्त० | ९।२।३२ | पु. ३६ | पु. ९७० |
| तस्यापत्यम् | ४।९।६२ | पु. ३५७ | उ. ८७ |
| तस्येदम् | ४।३।९२० | पु. ४५० | उ. ९८७ |
| तस्येश्वरः | ५।९।४२ | उ. ९३ | उ. ० |
| ताच्छीन्यवषोवच० | ३।२।९२६ | पु. २४६ | पु. ६५० |
| तादौ च निति क० | ६।२।५० | उ. २२३ | उ. ५४४ |
| तान्येकवचनद्वय० | ९।४।९०२ | पु. ९०९ | पु. ३३६ |
| ताभ्यामन्यत्रोखादयः | ३।४।७५ | पु. ३२० | पु. ७४३ |
| तालादिभ्यो ष्ण | ४।३।९५२ | पु. ४५७ | उ. ९६४ |
| तावृत्तियं यद्गणमिति० | ५।२।७७ | उ. ५७ | उ. ३९० |
| तासंस्त्योलोपः | ७।४।५० | उ. ४५९ | उ. ८६९ |
| तासि च रूपः | ७।२।६० | उ. ३६९ | उ. ७७८ |
| तास्यनुदात्तेच्छिद० | ६।९।९८६ | उ. ९६५ | उ. ५९६ |
| तिक्रिकितवादिभ्यो० | २।४।६८ | पु. ९०८ | पु. ४६० |
| तिक्रादिभ्यः फिञ् । | ४।९।९५४ | पु. ३७४ | उ. ९९२ |
| तिङ्प्रच | ५।३।५६ | उ. ८५ | उ. ३४८ |
| तिङ्श्लोणि त्रीणि० | ९।४।९०९ | पु. ९०९ | पु. ३३५ |
| तिङ् चोदात्तवति | ८।९।७९ | उ. ४८७ | उ. ६९६ |

| | श्र. पा. मू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|--------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| तिङो गोत्रादीनि कु० | ८११।२७ | उ. ४०४ | उ. ६०९ |
| तिङ्ङितिङ्ङः | ८११।२८ | उ. ४०५ | उ. ६०२ |
| तिङ्ङिशत्सार्धधातु. | ३१४।११३ | पू. ३२७ | पू. ७५३ |
| ति च | ७१४।८६ | उ. ४६९ | उ. ८७२ |
| तितुन्नतथसिसुसरक० | ७१२।६ | उ. ३७९ | उ. ७५२ |
| तित्तिरिवरतन्तु० | ४१३।१०२ | पू. ४४५ | उ. ९८४ |
| तिस्वरितम् | ६११।१८५ | उ. ९६५ | उ. ५९५ |
| तिप्तस्मिस्मिष्यत्यमि० | ३१४।७८ | पू. ३२९ | पू. ७४४ |
| तिष्यनस्तेः | ८१२।७३ | उ. ५९५ | उ. ० |
| तिरसस्तिर्यलोपे | ६१३।६४ | उ. २२५ | उ. ६९६ |
| तिरसोऽन्यतरस्याम् | ८१३।४२ | उ. ५३७ | उ. ६८६ |
| तिरोऽन्तर्धौ | ९१४।७९ | पू. ६५ | पू. ३२३ |
| तिर्यच्यपवर्गे | ३१४।६० | पू. ३९६ | पू. ७३६ |
| ति विंशतीर्द्धिति | ६१४।१४२ | उ. ३३० | उ. ६८८ |
| तिष्ठतेरित् | ७१४।५ | उ. ४४२ | उ. ८४६ |
| तिष्ठदुप्रभतीनि च | २११।१७ | पू. १०६ | पू. ३५८ |
| तिष्यपुनर्वस्वोर्नञ्च० | ९१२।६३ | पू. ४६ | पू. ९६६ |
| तिसृभ्यो जसः | ६११।१६६ | उ. ९६० | उ. ५०८ |
| तीरहृष्योत्तरपदा० | ४१२।१०६ | पू. ४९९ | उ. ९५२ |
| तीर्थे ये | ६१३।८७ | उ. २८३ | उ. ६९५ |
| तीषसहलुभकपरियः | ७१२।४८ | उ. ३८७ | उ. ७७५ |
| तुपाञ्चन् | ४१४।११५ | पू. ४८३ | उ. २२९ |
| तुजादीनां दीर्घा० | ६११।७ | उ. ९४३ | उ. ४२५ |
| तुदादिभ्यः शः | ३११।७७ | पू. २०९ | पू. ५६८ |
| तुन्द्रशोकयोः परिम्० | ३१२।५ | पू. ३२० | पू. ६९३ |
| तुन्द्रादिभ्य इलच्च | ५१२।११७ | उ. ६८ | उ. ३२६ |
| तुन्द्रिबलिवटैर्भः | ५१२।१३६ | उ. ७३ | उ. ० |
| तुपश्यप्रयताहैः पू. | ८११।३६ | उ. ४७७ | उ. ६०४ |
| तुभ्यमसौ ङयि | ७१२।६५ | उ. ४०९ | उ. ० |
| तुमर्थाच्च भावधचनात् | २१३।१५ | पू. ९४२ | पू. ४२६ |
| तुमर्थे सेसेनसे० | ३१४।६ | पू. ३०४ | पू. ७२९ |
| तुमुन्गलुलो क्रियायां० | ३१३।१० | पू. २६९ | पू. ६६६ |
| तुरिष्टमेयः सु | ६१४।१५४ | उ. ३३४ | उ. ६६३ |
| तुरुन्तुग्राम्यमः सा० | ७१३।६५ | उ. ४३५ | उ. ८३८ |
| तुल्यार्थेतुलोपमा० | २१३।७२ | पू. ९५८ | पू. ४५७ |
| तुल्यास्यप्रयत्नं स० | ९११।६ | पू. ८ | पू. ५५ |
| तुयङ्ङन्दि | ५१३।५६ | उ. ८६ | उ. ३५० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|--------------------|
| | | पृ. | पृ. |
| तुह्योन्नातङ्काशिश० | ७।१।३५ | उ. ३४६ | उ. ७१४ |
| तुदीशलातुरधर्मती० | ४।३।६४ | पू. ४४३ | उ. ० |
| तूष्णीमि भुवः | ३।४।६३ | पू. ३१७ | पू. ० |
| तृजकाभ्यां कर्तरि | २।२।१५ | पू. १२६ | पू. ३६८ |
| तृज्वत्क्रोष्टुः | ७।१।६५ | उ. ३६६ | उ. ७३६ |
| तृणहृ इम् | ७।३।६२ | उ. ४३४ | उ. ८३६ |
| तृणो च जाती | ६।३।१०३ | उ. २६६ | उ. ० |
| तृतीया कर्मणि | ६।२।४८ | उ. २२२ | उ. ५४० |
| तृतीया च होश्कन्दसि | २।३।३ | पू. १३८ | पू. ४२९ |
| तृतीया तत्कृतार्थेन० | २।१।३० | पू. ११२ | पू. ३६३ |
| तृतीयादिषु भाषित० | ७।१।७४ | उ. ३६० | उ. ७३९ |
| तृतीयाप्रभतीन्य० | २।२।२९ | पू. १३९ | पू. ४०४ |
| तृतीयार्थे | १।४।८५ | पू. ६८ | उ. ३२६ |
| तृतीयासमामे | १।१।३० | पू. ९४ | पू. ८९ |
| तृतीयासप्तम्योर्ध्व० | २।४।८४ | पू. १८२ | पू. ४६६ |
| तृन् | ३।२।१३५ | पू. २४७ | पू. ६५९ |
| तृपिमपिक्रशोः काश्य० | १।२।२५ | पू. ३७ | पू. १६५ |
| तृफलभजत्रयश्च | ६।४।१२२ | उ. ३२५ | उ. ६८४ |
| ते तद्राजाः | ०४।१।१७४ | पू. ३७६ | उ. १२९ |
| तेन क्रीतम् | ५।१।३७ | उ. १९ | उ. २४५ |
| तेन तुल्ये क्रिया चे० | ५।१।११५ | उ. ३९ | उ. २६७ |
| तेन दीव्यति खनति | ४।४।२ | पू. ४६२ | उ. २०० |
| तेन निर्वृतम् | ४।२।६८ | पू. ३६६ | उ. १४५ |
| तेन निर्वृतम् | ५।१।७६ | उ. २३ | उ. २५६ |
| तेन परिजव्यलभ्य० | ५।१।६३ | उ. २५ | उ. २६९ |
| तेन प्रोक्तम् | ४।३।१०१ | पू. ४४५ | उ. १८४ |
| तेन यथाकथाचहस्ता० | ५।१।६८ | उ. २७ | उ. २६४ |
| तेन रक्तं रागात् | ४।२।९ | पू. ३८९ | उ. १२४ |
| तेन वितप्रचुञ्चुपचणपी | ५।३।२६ | उ. ४३ | उ. २८६ |
| तेन सद्येति तुल्य० | २।२।२८ | पू. १३४ | पू. ४१० |
| तेनकदिक् | ४।३।११२ | पू. ४४८ | उ. १८७ |
| ते प्राक् धातोः | १।४।८० | पू. ६७ | पू. ३२५ |
| तेमपावेक्यचनस्य | ८।१।२२ | उ. ४७९ | उ. ० |
| तेः पि | ८।४।४३ | उ. ५६६ | उ. १०३९ |
| तेर्लि | ८।४।६० | उ. ५७३ | उ. १०३४ |
| तेः सत् | ३।२।१२७ | पू. २४५ | पू. ६६४ पू. ६४८ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| त्यदादिषु द्वशोना० | ३।२।६० | पृ. | २३९ | पृ. | ६२४ |
| त्यदादीनामः | ७।२।१०२ | उ. | ४०४ | उ. | ७६५ |
| त्यदादीनि च | ९।१।७५ | पृ. | ३० | पृ. | ९४५ |
| त्यदादीनि सर्वेर्नि० | ९।२।७२ | पृ. | ५२ | पृ. | २०६ |
| त्यागारागहासकुह० | ६।१।२१६ | उ. | २०२ | उ. | ५२४ |
| त्रपुजतुनोः युक् | ४।३।१३८ | पृ. | ४५४ | उ. | ९६२ |
| त्रसिग्धिधुषिन्नि० | ३।२।१४० | पृ. | २४८ | पृ. | ६५२ |
| त्रिशच्चत्वारिंशतो० | ५।१।६२ | उ. | ९८ | उ. | २५५ |
| त्रिककुत्पर्वते | ५।४।१४० | उ. | ९३७ | उ. | ४९० |
| त्रिचतुरोः स्त्रियां० | ७।२।६६ | उ. | ४०२ | उ. | ७६३ |
| त्रिभूतिषु शाकटा० | ८।४।५० | उ. | ५७९ | उ. | १०३३ |
| त्रैर्मैत्रित्यम् | ४।४।२० | पृ. | ४६५ | उ. | २०२ |
| त्रेः संप्रसारणं च | ५।२।५५ | उ. | ५२ | उ. | ३०४ |
| त्रेस्त्रयः | ६।३।४८ | उ. | २७५ | उ. | ६०३ |
| त्रेस्त्रयः | ७।१।५३ | उ. | ३५४ | उ. | ७२९ |
| त्वमावेकवचने | ७।२।६७ | उ. | ४०९ | उ. | ७६९ |
| त्वामी द्वितीयायाः | ८।१।२३ | उ. | ४७२ | उ. | ० |
| त्वामै सौ | ७।३।६४ | उ. | ४०९ | उ. | ७६९ |
| त्वै च | ६।३।६४ | उ. | २७८ | उ. | ० |
| थद् च्छन्दसि | ५।२।५० | उ. | ५९ | उ. | ० |
| थलि च सेटि | ६।४।१२९ | उ. | ३२५ | उ. | ६८४ |
| थलि च सेटीड० | ६।१।१६६ | उ. | १६८ | उ. | ५३० |
| थाथघञ्जाजबिन्न० | ६।२।१४४ | उ. | २५६ | उ. | ५६४ |
| थासः से | ३।४।८० | पृ. | ३२९ | पृ. | ७४६ |
| थाहेतौ च्छन्दसि | ५।३।२६ | उ. | ७६ | उ. | ० |
| थो न्यः | ७।१।८७ | उ. | ३६४ | उ. | ७३७ |
| दंशसञ्जस्वजां शपि | ६।४।२५ | उ. | ३०२ | उ. | ६५९ |
| दक्षिणादाच् | ५।३।३६ | उ. | ८९ | उ. | ३४० |
| दक्षिणापञ्चात्पुर० | ४।२।६८ | पृ. | ४०६ | उ. | ९५९ |
| दक्षिणोर्मा लुब्धयोगे | ५।४।१२६ | उ. | १३३ | उ. | ४०७ |
| दक्षिणोत्तराभ्यामत० | ५।३।२८ | उ. | ७६ | उ. | ३३८ |
| दण्डव्यवसर्गयोश्च | ५।४।२ | उ. | १०२ | उ. | ३७० |
| दण्डादिभ्यो० | ५।१।६६ | उ. | ९६ | उ. | २५६ |
| ददातिदधात्येर्वि० | ३।१।१३६ | पृ. | २१६ | पृ. | ६०६ |
| दधस्तथाश्च | ८।२।३८ | उ. | ५०६ | उ. | ६४७ |
| दधातेर्हिः | ७।४।४२ | उ. | ४४६ | उ. | ८५६ |
| दध्णक् | ४।२।९८ | पृ. | ३८५ | उ. | ९३० |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------|--------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| दन्त उचत उरु | ५।२।१०६ | उ. ६५ | उ. ३२३ |
| दन्तशिखात्संज्ञा० | ५।२।११३ | उ. ६७ | उ. ३२५ |
| दम्भ इञ्च | ७।४।५६ | उ. ४५२ | उ. ८६२ |
| दयतेर्दिगि लिटि | ७।४।६ | उ. ४४३ | उ. ८५० |
| दयायासञ्च | ३।१।३७ | पु. १६३ | पु. ५५१ |
| दश्च | ७।२।१०६ | उ. ४०५ | उ. ० |
| दश्च | ८।२।७५ | उ. ५१५ | उ. ६५७ |
| दस्ति | ६।३।१२४ | उ. २६१ | उ. ६२२ |
| दाशञ्च साचे च्चतु० | १।३।५५ | पु. ६७ | पु. २४१ |
| दागिडनायनहा० | ६।४।१७४ | उ. ३३८ | उ. ६६७ |
| दादार्धातीर्थः | ८।२।३२ | उ. ५०३ | उ. ६४५ |
| दाधर्तिवर्ध० | ७।४।६५ | उ. ४५४ | उ. ८६५ |
| दाधाध्वदाप् | १।१।२० | पु. ११ | पु. ७१ |
| दाधेदसिश्चदस० | ३।२।१५६ | पु. २५३ | पु. ६५७ |
| दानी च | ५।३।१८ | उ. ७७ | उ. ० |
| दामन्यादित्रि० | ५।३।११६ | उ. ६६ | उ. ३६८ |
| दामहायनान्ताञ्च | ४।१।२७ | पु. ३३७ | उ. ३७ |
| दाम्नीशसयुज० | ३।२।१८२ | पु. २५७ | पु. ६६१ |
| दायादां दायादे | ६।२।५ | उ. २०६ | उ. ५३० |
| दाशगोश्री सं० | ३।४।७३ | पु. ३२० | पु. ७४२ |
| दाशवान्साधुान्मी० | ६।१।१२ | उ. १४४ | उ. ४२७ |
| दिकृशब्दा यामज० | ६।२।१०३ | उ. २३५ | उ. ५५४ |
| दिकपूर्वपदाटुञ्च | ४।३।६ | पु. ४२३ | उ. १६३ |
| दिकपूर्वपठादमंज्ञा० | ४।२।१०७ | पु. ४११ | उ. १५३ |
| दिकपूर्वपदान् हीप् | ४।१।६० | पु. ३४७ | उ. ५६ |
| दिकशब्देभ्यः सप्रमी० | ५।३।२७ | उ. ७६ | उ. ३३७ |
| दिकसंख्ये संज्ञायां | २।१।५० | पु. ११८ | पु. ३७२ |
| दिगादिभ्यो यत् | ४।३।५४ | पु. ४३२ | उ. १७३ |
| दिङ्नामान्यन्तराले | ८।२।२६ | पु. १३३ | पु. ४०६ |
| दित्यदित्या० | ४।१।८५ | पु. ३५३ | उ. ७६ |
| दित् उत् | ६।१।१३१ | उ. १८० | उ. ४६८ |
| दित् श्रान् | ७।१।८४ | उ. ३६३ | उ. ७३६ |
| दित् कर्म च | १।४।४३ | पु. ८७ | पु. २६८ |
| दित्सञ्च पृथिव्याम् | ६।३।३० | उ. ३६८ | उ. ५८७ |
| दित्सन्तवर्धस्य | २।३।५८ | पु. १५३ | पु. ४५१ |
| दित्वादिभ्यः षण् | ३।१।६६ | पु. १६६ | पु. ५६७ |
| दित्वादिभानिशापभा० | ३।२।२१ | पु. २२३ | पु. ६१६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|--------------------------|--------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| दिवो भल् | ६।१।१८३ | उ. | १६५ | उ. | ५१५ |
| दिवो द्यावा | ६।३।२१ | उ. | २६८ | उ. | ० |
| दिवोऽविजिगीषा० | ८।२।४६ | उ. | ५०८ | उ. | १५१ |
| दिशो मद्राणाम् | ७।३।१३ | उ. | ४११ | उ. | ८०७ |
| दिष्टिवितस्त्योश्च | ६।२।३१ | उ. | २१५ | उ. | ० |
| दीङो युङचि क्लिति | ६।४।६३ | उ. | ३१२ | उ. | ६६४ |
| दीधीवेवीटाम् | १।१।६ | पू. | ७ | पू. | ५१ |
| दीपजनबुधपूरि० | ३।१।६१ | पू. | १६८ | पू. | ५६४ |
| दीर्घ इणः किति | ७।३।६६ | उ. | ४५६ | उ. | ८६७ |
| दीर्घ काशतुषभाङ्ग० | ६।२।८२ | उ. | २३१ | उ. | ५५१ |
| दीर्घजिह्वी चच्छन्त्० | ४।१।५६ | पू. | ३४७ | उ. | ५६ |
| दीर्घ च | १।४।१२ | पू. | ८० | पू. | ० |
| दीर्घाच्च वरुणस्य | ७।३।२३ | उ. | ४१५ | उ. | ८१० |
| दीर्घाञ्जसि च | ६।१।१०५ | उ. | १७३ | उ. | ४७७ |
| दीर्घात् | ६।१।७५ | उ. | १६४ | उ. | ४५६ |
| दीर्घादटि समानपादे | ८।३।६ | उ. | ५२८ | उ. | १७६ |
| दीर्घादाचार्याणाम् | ८।४।५२ | उ. | ५७१ | उ. | १०३३ |
| दीर्घोऽकितः | ७।४।८३ | उ. | ४५६ | उ. | ८७० |
| दीर्घालघोः | ७।४।६४ | उ. | ४६२ | उ. | ८७४ |
| दुःखात्प्रातिलोभ्ये | ५।४।६४ | उ. | ११८ | उ. | ३६४ |
| दुन्योरनुपसर्गे | ३।१।१४२ | पू. | २१७ | पू. | ६०७ |
| दुरस्यर्द्रविणस्युर्व० | ७।४।३६ | उ. | ४४८ | उ. | ८५७ |
| दुष्कुलाङ्कक् | ४।१।१४२ | पू. | ३७० | उ. | ० |
| दुहः कप्चश्च | ३।२।७० | पू. | २३४ | पू. | ६२६ |
| दुहश्च | ३।१।६३ | पू. | १६८ | पू. | ५६४ |
| दूतस्य भागक० | ४।४।१२० | पू. | ४८४ | उ. | २२१ |
| दूराद्धूते च | ८।२।८४ | उ. | ५१८ | उ. | १६२ |
| दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वि० | २।३।३५ | पू. | १४७ | पू. | ४३७ |
| दूरान्तिकार्थेः षष्ठ्य० | २।३।३४ | पू. | १४७ | पू. | ४३६ |
| दृक्तवस्वतवसां | ७।१।८३ | उ. | ३६३ | उ. | ७३६ |
| दृग्दृशवतुषु | ६।३।८६ | उ. | २८३ | उ. | ६१५ |
| दृढः स्थूलबलयोः | ७।२।२० | उ. | ३७८ | उ. | ७६२ |
| दृत्तिकुत्तिकलशिव० | ४।३।५६ | पू. | ४३३ | उ. | १७३ |
| दृशेः कनिप् | ३।२।६४ | पू. | २३६ | पू. | ६३३ |
| दृशेविष्ये च | ३।४।११ | पू. | ३०५ | पू. | ७२१ |
| दृष्टं साम | ४।२।७ | पू. | ३८२ | उ. | १२७ |
| देयमणे | ४।३।४७ | पू. | ४३१ | उ. | ० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|---------------------------------|-------------|--------|-----|----------|-----|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| देवे त्रा च | ५ । ४ । ५५ | उ | ११५ | उ. | ३६९ |
| देवताद्वन्द्वं च | ६ । २ । १४९ | उ. | २४५ | उ. | ५६४ |
| देवताद्वन्द्वं च | ६ । ३ । २६ | उ. | २६७ | उ. | ५८७ |
| देवताद्वन्द्वं च | ७ । ३ । २९ | उ. | ४१५ | उ. | ८१० |
| देवतान्तात्तार्थ्यं० | ५ । ४ । २४ | उ. | १०७ | उ. | ३८९ |
| देवपथादिभ्यश्च | ५ । ३ । १०० | उ. | ६६ | उ. | ३६७ |
| देवब्रह्मणोरनु० | ९ । २ । ३८ | पू. | ४२ | पू. | १७५ |
| देवमनुष्यपुरुष० | ५ । ४ । ५६ | उ. | ११५ | उ. | ३६९ |
| देवसुस्योप्यजुषि | ७ । ४ । ३८ | उ. | ४४८ | उ. | ८५७ |
| देवान्तल् | ५ । ४ । २७ | उ. | १०८ | उ. | ० |
| देविकाशिशपा० | ७ । ३ । १ | उ. | ४७७ | उ. | ८०० |
| देविकुशोप्रचोप० | ३ । २ । १४७ | पू. | २५० | पू. | ६५४ |
| देवो लुबिलक्षी च | ५ । २ । १०५ | उ. | ६५ | उ. | ३२३ |
| देवब्रह्मिणीचिद्व० | ४ । १ । ८९ | पू. | ३५२ | उ. | ७० |
| देव दक्षाः | ७ । ४ । ४६ | उ. | ४५० | उ. | ८५६ |
| देवो गौ | ६ । ४ । ६० | उ. | ३१८ | उ. | ६७३ |
| द्व्यतिस्यतिमास्या० | ७ । ४ । ४० | उ. | ४४६ | उ. | ८५८ |
| द्व्यावापृथिवीगुना० | ४ । २ । ३२ | पू. | ३८८ | उ. | १३२ |
| द्व्यतिस्वाप्याः सं० | ७ । ४ । ६७ | उ. | ४५६ | उ. | ८६६ |
| द्व्युक्तयो लुहि | ९ । ३ । ६९ | पू. | ७७ | पू. | २५६ |
| द्व्यदुभ्यां मः | ५ । २ । १०८ | उ. | ६६ | उ. | २४ |
| द्व्यप्रागपामुठकप्र० | ४ । २ । १०९ | पू. | ४१० | उ. | १५९ |
| द्व्यमूर्तिस्पर्शयोः० | ६ । १ । ३४ | उ. | १४६ | उ. | ४३२ |
| द्व्यं च भव्ये | ५ । ३ । १०४ | उ. | ६७ | उ. | ० |
| द्व्योणपर्वतजीव० | ४ । १ । १०३ | पू. | ३६९ | उ. | ६६ |
| द्व्योपच | ४ । ३ । १६९ | पू. | ४५६ | उ. | १६७ |
| द्व्यन्तमनोज्ञादिभ्य० | ५ । १ । १३३ | उ. | ३६ | उ. | २८० |
| द्व्यन्तं रहस्य मर्यादावचनव्यु० | ८ । १ । १५ | उ. | ४६६ | उ. | ८६५ |
| द्व्यन्तश्च प्राणितूर्य० | २ । ४ । २ | पू. | १५६ | पू. | ४५६ |
| द्व्यन्ताच्चुदपहा० | ५ । ४ । १०६ | उ. | १२८ | उ. | ४०३ |
| द्व्यन्ताच्छः | ४ । ३ । ६ | पू. | ३८२ | उ. | १२६ |
| द्व्यन्ताद् धुन् धरमेधु० | ४ । ३ । १२५ | पू. | ४५९ | उ. | १८८ |
| द्व्यन्तं पि | ३ । २ । ३२ | पू. | १३५ | पू. | ४१४ |
| द्व्यन्तं च | ९ । १ । ३९ | पू. | ९५ | पू. | ८९ |
| द्व्यन्तापतापगत्या० | ५ । ३ । १२८ | उ. | ७९ | उ. | ३२६ |
| द्व्यारादीनां च | ७ । ३ । ४ | उ. | ४०८ | उ. | ८०४ |
| द्व्यपुरिकवचनं | २ । ४ । १ | पू. | १५६ | पू. | ४५८ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|------------------------|--------------|---------|----------|-----|
| | श्र. पा. सू. | पृ. | पृ. | पृ. |
| द्विगुश्च | २।१।२३ | पृ. १११ | पृ. ३६० | |
| द्विगोः | ४।१।२९ | पृ. ३३५ | उ. ० | |
| द्विगो षष्ठश्च | ५।१।५४ | उ. १५ | उ. २४६ | |
| द्विगोयंप | ५।१।८२ | उ. २३ | उ. २६० | |
| द्विगोर्लुगनपत्ये | ४।१।८८ | पृ. ३५५ | उ. ७६ | |
| द्विगोर्वा | ५।१।८६ | उ. २३ | उ. ० | |
| द्विगो क्रती | ६।२।६७ | उ. २३४ | उ. ५५४ | |
| द्विगो प्रमाणे | ६।२।१२ | उ. २०६ | उ. ५३२ | |
| द्वितीयवृत्तीयच० | २।२।३ | पृ. १२६ | पृ. ३८६ | |
| द्वितीयाटोस्वेनः | २।४।३४ | पृ. १६६ | पृ. ४७६ | |
| द्वितीया ब्राह्मणे | २।३।६० | पृ. १५४ | पृ. ४५९ | |
| द्वितीयायां च | ३।४।५३ | पृ. ३१४ | पृ. ० | |
| द्वितीयायां च | ७।२।८७ | उ. ३६८ | उ. ७८७ | |
| द्वितीयाश्रतातीत० | २।१।२४ | पृ. १११ | पृ. ३६० | |
| द्वितीये चानुपाख्ये० | ६।३।८० | उ. २८२ | उ. ६१३ | |
| द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् | ५।४।१८ | उ. १०६ | उ. ३७६ | |
| द्वित्रिपूर्वादण् च | ५।१।३६ | उ. ११ | उ. २४५ | |
| द्वित्रिपूर्वाचिष्कात् | ५।१।३० | उ. १० | उ. २४४ | |
| द्वित्रिभ्यामञ्जलेः | ५।४।१०२ | उ. १२७ | उ. ४०२ | |
| द्वित्रिभ्यां ष मूर्धः | ५।४।११५ | उ. १३० | उ. ४०५ | |
| द्वित्रिभ्यां तयस्याय० | ५।२।४३ | उ. ४६ | उ. २६८ | |
| द्वित्रिभ्यां पाठन्मू० | ६।२।१६७ | उ. २६० | उ. ५७६ | |
| द्वित्र्योश्च धसुञ् | ५।३।४५ | उ. ८३ | उ. ३४२ | |
| द्विदण्डादिभ्यश्च | ५।४।१२८ | उ. १३३ | उ. ४०८ | |
| द्विवचनेचि | १।१।५६ | पृ. २५ | पृ. ११६ | |
| द्विवचनविभज्यो० | ५।३।५७ | उ. ८५ | उ. ३४८ | |
| द्विषत्परयोस्तापेः | ३।२।३६ | पृ. २२६ | पृ. ६१६ | |
| द्विषश्च | ३।४।११२ | पृ. ३२७ | पृ. ७५३ | |
| द्विषोमित्रे | ३।२।१३१ | पृ. २४६ | पृ. ६५० | |
| द्विस्तावाचिस्ताया० | ५।४।८४ | उ. १२३ | उ. ४०० | |
| द्विस्त्रिश्चतुरिति० | ८।३।४३ | उ. ५३७ | उ. १८६ | |
| द्वोपादनुसमुद्रं यञ् | ४।३।१० | पृ. ४३४ | उ. १६३ | |
| द्वेस्तीयः | ५।२।५४ | उ. ५२ | उ. ३०४ | |
| द्वेष्वेयाघ्रादञ् | ४।२।१२ | पृ. ३८४ | उ. १२८ | |
| द्वेषः | ४।१।१२१ | पृ. ३६६ | उ. १०५ | |
| द्वेषच्छन्दसि | ४।३।१५० | पृ. ४५६ | उ. ० | |
| द्वेषोऽतस्तिहः | ६।३।१३५ | उ. २६३ | उ. ६२५ | |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|------------|--------|-----|----------|-----|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| द्वज्जुह्वारगकप्रथमा० | ४।३।७२ | पृ. | ४३७ | उ. | १७८ |
| द्वज्जगधकलि० | ४।१।१७० | पृ. | ३७८ | उ. | ० |
| द्वन्तरूपसर्गभ्यास्य० | ६।३।६७ | उ. | २८५ | उ. | ६१७ |
| द्वष्टनः संख्यायाम० | ६।३।४७ | उ. | २७३ | उ. | ६०३ |
| द्विकयोर्द्विवचनैक० | १।४।२२ | पृ. | ८२ | पृ. | २७६ |
| धः कर्मणिप् | ३।२।१८९ | पृ. | २५७ | पृ. | ६६१ |
| धनगणं लब्धा | ४।४।८४ | पृ. | ४७७ | उ. | २१५ |
| धनहिरगयात्कामे | ५।२।६५ | उ. | ५५ | उ. | ३०८ |
| धनुषश्च | ५।४।१३२ | उ. | १३४ | उ. | ० |
| धन्वयोपधाद्बुज् | ४।२।१२१ | पृ. | ४९५ | उ. | १५६ |
| धर्मं चरति | ४।४।४९ | पृ. | ४६६ | उ. | २०७ |
| धर्मपथ्यर्थन्याया० | ४।४।६२ | पृ. | ४७६ | उ. | २१८ |
| धर्मशीलवर्णान्ता० | ५।२।१३२ | उ. | ७२ | उ. | ३३० |
| धर्माटनिष्केवलात् | ५।४।१२४ | उ. | १३२ | उ. | ४०७ |
| धातुसंबन्धेप्रत्ययाः | ३।४।१ | पृ. | ३०१ | पृ. | ७१३ |
| धातोः | ३।१।६९ | पृ. | २०५ | पृ. | ५८३ |
| धातोः | ६।१।१६२ | उ. | १८६ | उ. | ० |
| धातोः कर्मणः स० | ३।१।७ | पृ. | १८४ | पृ. | ५०६ |
| धातोरेकाच्चा हला० | ३।१।२२ | पृ. | १८६ | पृ. | ५३६ |
| धातोस्तत्रिमि० | ६।१।८० | उ. | १६६ | उ. | ४५८ |
| धात्वादेः षः सः | ६।१।६४ | उ. | १६१ | उ. | ४४६ |
| धान्यानां भवने ङे० | ५।२।१ | उ. | ३८ | उ. | २८१ |
| धारेरुतमर्णः | १।४।३५ | पृ. | ८५ | पृ. | २६४ |
| धि च | ८।२।२५ | उ. | ५०१ | उ. | ६४१ |
| धिन्यिकराव्योर च | ३।१।८० | पृ. | २०१ | पृ. | ५६६ |
| धुरो यच्छको | ४।४।७७ | पृ. | ४७६ | उ. | २१३ |
| धूमादिभ्यश्च | ४।२।१२७ | पृ. | ४९६ | उ. | १५८ |
| धृषिणसी वैयात्ये | ७।२।१६ | उ. | ३७८ | उ. | ७६२ |
| ध्रुवस्यपापेपादानं | १।४।२४ | पृ. | ८३ | पृ. | २८२ |
| ध्वमे ध्वात् | ७।१।४२ | उ. | ३५२ | उ. | ० |
| ध्वाङ्क्षेण क्षेपे | २।१।४२ | पृ. | ११६ | पृ. | ३७० |
| नः क्ये | १।४।१५ | पृ. | ८१ | पृ. | २७४ |
| न क्तिपि | ७।४।१४ | उ. | ४४४ | उ. | ८५२ |
| न कर्मध्यतिहरि | ७।३।६ | उ. | ४०६ | उ. | ८०५ |
| न क्यतेर्यङि | ७।४।६३ | उ. | ४५४ | उ. | ८६५ |
| न कोपधायाः | ६।३।३७ | उ. | २७० | उ. | ५६६ |
| न क्तिचि दीर्घश्च | ६।४।३६ | उ. | ३०५ | उ. | ० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| न त्वा सेद० | १।२।१८ | पृ. ३५ | पृ. १६१ |
| न क्रोडादिबहुचः | ४।१।५६ | पृ. ३४६ | उ. ५५ |
| न क्वादेः | ७।३।५६ | उ. ४२६ | उ. ८२४ |
| नक्षत्राक्षः | ४।४।१४१ | पृ. ४८६ | उ. २२५ |
| *नक्षत्राद्वा | ८।३।१०० | उ. ५५२ | उ. १०१० |
| नक्षत्रे च लुपि | ३।३।४५ | पृ. १५० | पृ. ४४० |
| नक्षत्रेण युक्तः कालः | ४।२।३ | पृ. ३८९ | उ. १२४ |
| नक्षत्रेभ्यो बहुलं | ४।३।३७ | पृ. ४२६ | उ. १६६ |
| नखमुखत्स० | ४।१।५८ | पृ. ३४७ | उ. ५६ |
| न गतिहिसार्थेभ्यः | १।३।१५ | पृ. ५६ | पृ. २२७ |
| नगरात्कुत्सनप्रावी० | ४।२।१२८ | पृ. ४१७ | उ. १५८ |
| न गुणादयो ऽवयवा | ६।२।१७६ | उ. २५५ | उ. ५७२ |
| न गोपवनादिभ्यः | २।४।६७ | पृ. १०८ | पृ. ४६० |
| नगो प्राशिष्यन्य० | ६।३।७७ | उ. २८९ | उ. ६१३ |
| न गोश्रवन्सावयर्ण० | ६।१।१८२ | उ. १६४ | उ. ५१४ |
| नङि संबुद्धयोः | ८।२।८ | उ. ४६६ | उ. ६३४ |
| नचवाहाहिवयुक्ते | ८।१।२४ | उ. ४७२ | उ. ६०० |
| नच्छन्दस्य पुत्रस्य | ७।४।३५ | उ. ४४८ | उ. ८५७ |
| नञ् | २।२।६ | पृ. १२७ | पृ. ३६९ |
| नञः शुचीश्रवश्चेत्र० | ७।३।३० | उ. ४१७ | उ. ८१२ |
| नञस्तत्पुरुषात् | ५।४।७९ | उ. १९६ | उ. ० |
| नञो गुणप्रतिषेधे० | ६।२।१५५ | उ. २५० | उ. ५६७ |
| नञो ज्ञरमरमि० | ६।२।१९६ | उ. २३८ | उ. ५५७ |
| नञ्दुः सुभ्यो हलि० | ५।४।१२१ | उ. १३२ | उ. ४०७ |
| नञ्सुभ्याम् | ६।२।१७२ | उ. २५४ | उ. ५७१ |
| नङशादाङ्कलच् | ४।२।८८ | पृ. ४०७ | उ. १४८ |
| नडादिभ्यः फक् । | ४।१।६६ | पृ. ३५६ | उ. ६७ |
| नडादीनां कुक्च | ४।२।६९ | पृ. ४०८ | उ. १४८ |
| न तिसृचतस्र | ६।४।४ | उ. २६५ | उ. ५२६ |
| नतेनासिकायाः सं० | ५।२।३१ | उ. ४५ | उ. २६९ |
| न-तौल्यलिभ्यः | २।४।६९ | पृ. १७५ | पृ. ४८६ |
| नदण्डमाणावान्ते | ४।३।१३० | पृ. ४५२ | उ. १८६ |
| न दधिपयश्चादीनि | २।४।१४ | पृ. १६२ | पृ. ४६८ |
| नदीपार्षामास्याघ० | ५।४।१९० | उ. १२६ | उ. ४०३ |
| नटी बन्धुनि | ६।२।१०६ | उ. २३७ | उ. ५५६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|--------------|---------|---------------------------|
| | | पृ. | पृ. |
| नदीभिश्च | २।१।२० | पृ. ११० | पृ. ३६० |
| न दुहसुनमां य० | ३।१।८६ | पृ. २०४ | पृ. ५८० |
| न दृशः | ३।१।४७ | पृ. १६५ | पृ. ५५६ |
| नद्याः शेषस्यान्व० | ६।३।४४ | उ. २७३ | उ. ५६८ |
| नद्यादिभ्यो ङक् | ४।२।६० | पृ. ४०६ | उ. १५० |
| नद्यां मत्तुप् | ४।२।८५ | पृ. ४०६ | उ. १४७ |
| न दृतश्च | ५।४।१५३ | उ. १३८ | उ. ४९१ |
| न द्रुचः प्राच्य० | ४।२।११३ | पृ. ४९३ | उ. १५४ |
| न धातुलोपश्चार्ध० | १।१।४ | पृ. ७ | पृ. ४६ |
| न ध्याख्याएमुर्च्छि० | ८।३।५७ | उ. ५१० | उ. ६५३ |
| न नञपूर्वात्तत्पुरुषा० | ५।१।१२१ | उ. ३२ | उ. २७५ |
| न निर्धारयो | २।२।१० | पृ. १२८ | पृ. ३६५ |
| न निविभ्याम् | ६।२।१८१ | उ. २५६ | उ. ० |
| ननौ एष्टप्रतिवचने | ३।२।१२० | पृ. २४४ | पृ. { श्र. ६६० पृ. ६४४ |
| नन्दिग्रहपचादि० | ३।१।१३४ | पृ. २५४ | पृ. ६०३ |
| न न्द्राः संयोगादयः | ६।१।३ | उ. १४१ | उ. ४२२ |
| नन्वित्यनुज्ञेयणा० | ८।१।४३ | उ. ४७८ | उ. ६०५ |
| नन्वोर्धिभाषा | ३।२।१२१ | पृ. २४४ | पृ. ० |
| न पदान्तद्विर्ध्वचन० | १।१।५८ | पृ. २३ | पृ. ११६ |
| न पदान्ताद्वारनाम् | ८।४।४२ | उ. ५६६ | उ. १०३१ |
| न परं नः | ८।३।२७ | उ. ५३३ | उ. ० |
| न पाटम्याह्यमाह्य० | १।३।८६ | पृ. ७६ | पृ. २५८ |
| नपुंसकमनुपुंसके | १।२।६६ | पृ. ५१ | पृ. २०८ |
| नपुंसकस्य क्लञ्चः | ७।१।७२ | उ. ३५६ | उ. ७२७ |
| नपुंसकाच्च | ७।१।१६ | उ. ३४५ | उ. ० |
| नपुंसकादन्यतरस्याम् | ५।४।१०६ | उ. १२६ | उ. ४०३ |
| नपुंसके भावे क्तः | ३।३।११४ | पृ. २८४ | पृ. ६६२ |
| न पूजनात् | ५।४।६६ | उ. ११६ | उ. ३६५ |
| न प्राच्यभर्गादि० | ४।१।१७८ | पृ. ३८० | उ. १२२ |
| न वहुव्रीहौ | १।१।२६ | पृ. १४ | पृ. ८१ |
| न भक्तुंराम् | ८।२।७६ | उ. ५१६ | उ. ६५८ |
| न भाभूप्रकामिगभि० | ८।४।३४ | उ. ५६६ | उ. १०२६ |
| न भूताधिकक्षेत्रीव० | ६।२।६१ | उ. २३३ | उ. ५२५ |
| न भूयाचिद्विधिपु | ६।२।१६ | उ. २११ | उ. ५३२ |
| न भूसुधियोः | ६।४।८५ | उ. ३१६ | उ. ६७१ |
| न भायनपात्रवेदाना० | ६।३।७५ | उ. २८० | उ. ६११ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|------------|---------------|--------------------|
| नमपूर्वाऽपत्येऽथ० | ६।४।१०० | उ. ३३८ | उ. ० |
| नमःस्वन्तिस्वाहास्व० | २।३।१६ | पू. १४२ | पू. ४२७ |
| नमस्युरसोर्गत्याः | ८।३।४० | उ. ५३६ | उ. ६८८ |
| न माङ्गयोगे | ६।४।७४ | उ. ३९४ | उ. ६६८ |
| नमिकाभ्यस्स्यजस० | ३।२।१६७ | पू. २५४ | पू. ६५७ |
| न सु ने | ८।२।३ | उ. ४६९ | उ. ६२५ |
| नमोवरिषत्रिचक्र० | ३।१।१६ | पू. ९८८ | पू. ५२५ |
| न यः | ३।२।१५२ | पू. २५९ | पू. ६५५ |
| न यद्वि | ३।२।१९३ | पू. २४२ | पू. ६५७ पू. ६४९ |
| न यदनाकाङ्क्षे | ३।४।२३ | पू. ३०७ | पू. ७२४ |
| न यासयोः | ७।३।४५ | उ. ४२१ | उ. ६९८ |
| न घ्याभ्यां पदान्ता० | ७।३।३ | उ. ४०८ | उ. ८०२ |
| न रपरसुपिस्तुजि० | ८।३।१९० | उ. ५५४ | उ. १०९२ |
| न रुधः | ३।१।६४ | पू. ९६६ | पू. ५६४ |
| नरे संज्ञायां | ६।३।१२६ | उ. ६२२ | उ. ० |
| न लिङि | ७।३।३६ | उ. ३८४ | उ. ७७२ |
| न लृट् | ८।१।२६ | उ. ४७५ | उ. ६०२ |
| न लुमताङ्गस्य | १।१।६३ | पू. २७ | पू. १३० |
| न लोकाव्ययनिष्ठा० | २।३।६६ | पू. १५६ | पू. ४५५ |
| न लोपः प्रातिपदि० | ८।२।७ | उ. ४५५ | उ. ६३३ |
| न लोपः सुस्वर० | ८।२।२ | उ. ४६० | उ. ६९३ |
| न लोपो नञः | ६।३।७३ | उ. २८० | उ. ६९९ |
| न ल्यपि | ६।४।६६ | उ. ३९३ | उ. ६६७ |
| न वशः | ६।१।२० | उ. १४८ | उ. ० |
| न विभक्ती तुस्माः | १।३।४ | पू. ५३ | पू. २९६ |
| न घृष्ट्वायप्रचतुर्भ्यः | ७।२।५६ | उ. ३६० | उ. ७७७ |
| न वेति विभाषा | १।१।४४ | पू. ९६ | पू. ८६ |
| न व्यो लिटि | ६।१।४६ | उ. १५६ | उ. ५४९ |
| न शब्दप्रलोककलह० | ३।२।२३ | पू. २२३ | पू. ० |
| न शब्ददवादि० | ६।४।१२६ | उ. ३२७ | उ. ६८५ |
| नशः षान्तस्य | ८।४।३६ | उ. ५६७ | उ. १०२६ |
| नशेर्वा | ८।२।६३ | उ. ५९२ | उ. ६५५ |
| नश्च | ८।३।३० | उ. ५३३ | पू. ६८२ |
| नश्च घातुस्थो० | ८।४।२७ | उ. ५६५ | उ. १०२७ |
| नश्चापदान्तस्य भ्० | ८।३।२४ | उ. ५३२ | उ. ६८० |
| नश्चव्यप्रशान् । | ८।३।७ | उ. ५२८ | उ. ६७५ |

सूचीपत्रम् ।

५९

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| न षट्स्यस्राटिभ्यः | ४।१।१० | पृ. ३३२ | उ. २२ |
| न संयोगाहमन्तात् | ६।४।१३७ | उ. ३२६ | उ. ६८८ |
| न संख्यादेः स० | ५।४।८६ | उ. १२४ | उ. ४०९ |
| न संज्ञायाम् | ५।४।१५५ | उ. १३६ | उ. ० |
| नसत्तनिषत्तानु० | ८।२।६९ | उ. ५१९ | उ. ६५४ |
| न संप्रसारणे सं० | ६।१।३७ | उ. १५४ | उ. ४३६ |
| न सामिवचने | ५।४।५ | उ. १०२ | उ. ३७२ |
| न सुदुर्भां केव० | ७।१।६८ | उ. ३५८ | उ. ७२२ |
| न सुब्रह्मयथायां स्व० | १।२।३७ | पृ. ४९ | पृ. ९७५ |
| नस्तद्धिते | ६।४।१४४ | उ. ३३० | उ. ६८६ |
| नह प्रत्यारम्भे | ८।१।३९ | उ. ४७५ | उ. ६०३ |
| न ह्रास्तिनफलक० | ६।२।१०९ | उ. २३५ | उ. ५५४ |
| नह्रिवृत्तिवृषि० | ६।३।१९६ | उ. २६० | उ. ६२९ |
| नहो धः | ८।२।३४ | उ. ५०४ | उ. ६४६ |
| नाग्लोपिशास्व० | ७।४।२ | उ. ४४९ | उ. ८४८ |
| नाचार्यराज्जत्वि० | ६।२।१३३ | उ. २४२ | उ. ५६० |
| नाञ्जला | १।१।१० | पृ. ६ | पृ. ६० |
| नाञ्चैः पूजायाम् | ६।४।३० | उ. ३०३ | उ. ६५९ |
| नाडीतन्व्याः स्वाङ्गे | ५।४।१५६ | उ. १४० | उ. ४१२ |
| नाडीमुष्टयोगच | ३।२।३० | पृ. २२५ | पृ. ६९८ |
| नातः परस्य | ७।३।२७ | उ. ४९६ | उ. ८१९ |
| नादिचि | ६।१।१०४ | उ. १७३ | उ. ४७७ |
| नादिन्याकोशे० | ८।४।४८ | उ. ५७९ | उ. १०३२ |
| नाक्षस्य | ८।२।१७ | उ. ४६६ | उ. ६३७ |
| नाधार्यप्रत्यये | ३।४।६२ | पृ. ३९६ | पृ. ७३७ |
| नानद्यतनवत् | ३।३।१३५ | पृ. २८६ | पृ. ६६६ |
| नानोर्त्रः | १।३।५८ | पृ. ६८ | पृ. २४९ |
| नान्तादसंख्यादेर्मद् | ५।२।४६ | उ. ५९ | उ. ३०३ |
| नाभ्यस्तस्याचि पि० | ७।३।८७ | उ. ४३३ | उ. ८३४ |
| नाभ्यस्ताच्छतुः | ७।१।७८ | उ. ३६२ | उ. ७३३ |
| नामन्त्रिते समा० | ८।१।७३ | उ. ४८८ | उ. ६९६ |
| नामन्यतरस्याम् | ६।१।१७७ | उ. १६३ | उ. ५१३ |
| नामि | ६।४।३ | उ. २६५ | उ. ६२८ |
| नाम्यादिशिपहोः | ३।४।५८ | पृ. ३१५ | पृ. ७३५ |
| नामोहितस्यान्त्य० | ६।१।६६ | उ. १७२ | उ. ४७३ |
| नामो द्विगोः | ५।४।६६ | उ. १२६ | उ. ० |
| नाम्यदिक्शब्द० | ६।२।१६८ | उ. २५३ | उ. ५७० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| नाद्यधीभाषाटतो० | २।४।८३ | पृ. | १८२ | पृ. | ४२६ |
| नासिकास्तनयो० | ३।२।२६ | पृ. | २२५ | पृ. | ६१८ |
| नासिकोदरोष्ट० | ४।१।५५ | पृ. | ३४६ | उ. | ५५ |
| निकटे वसति | ४।४।७३ | पृ. | ४७५ | उ. | २१३ |
| निगरगचलनार्थ० | १।३।८७ | पृ. | ७५ | पृ. | २५८ |
| निगृह्यानुयोगे च | ८।२।६४ | उ. | ५२९ | उ. | ६६६ |
| निजां त्रयाणां गुणः | ७।४।७५ | उ. | ४५७ | उ. | ८६८ |
| निघो निमित्तम् | ३।३।८७ | पृ. | २७७ | पृ. | ६८४ |
| नित्यमाभेदिते० | ६।१।१०० | उ. | १७२ | उ. | ४७३ |
| नित्यं वृक्षशरा० | ४।३।१४४ | पृ. | ४५५ | उ. | १६३ |
| नित्यं शतादिभा० | ५।२।५७ | उ. | ५३ | उ. | ३०५ |
| नित्यं संज्ञाछन्दसोः | ४।१।२६ | पृ. | ३३८ | उ. | ३८ |
| नित्यं सपत्न्यादिपु | ४।१।३५ | पृ. | ३३६ | उ. | ४१ |
| नित्यं समासेनुरप० | ८।३।४५ | उ. | ५३८ | उ. | ६६१ |
| नित्यं स्मयतः | ६।१।५७ | उ. | १५८ | उ. | ४४३ |
| नित्यं हस्तेपाणा० | १।४।७७ | पृ. | ६७ | पृ. | ३३४ |
| नित्यं करोतिः | ६।४।१०८ | उ. | ३२३ | उ. | ६७८ |
| नित्यं कीटिल्ये गती | ३।१।२३ | पृ. | १८६ | पृ. | ५२६ |
| नित्यं कीडाजीविकयोः | २।२।१७ | पृ. | १३७ | पृ. | ३६६ |
| नित्यं डितः | ३।४।६६ | पृ. | ३२५ | पृ. | ० |
| नित्यं छन्दसि | ४।१।४६ | पृ. | ३४३ | उ. | ४८ |
| नित्यं छन्दसि | ७।४।८ | उ. | ४४२ | उ. | ० |
| नित्यमसिचप्रज्ञा० | ५।४।१२२ | उ. | १३२ | उ. | ४०७ |
| नित्यं पणः परिभाषो | ३।३।६६ | पृ. | २७३ | पृ. | ० |
| नित्यं मन्त्रे | ६।१।२१० | उ. | ३०१ | उ. | ५२३ |
| नित्यवीप्सयोः | ८।१।४ | उ. | ४६४ | उ. | ८८२ |
| निनदीभ्यां स्नातेः | ८।३।८६ | उ. | ५५० | उ. | १००८ |
| निन्दहिंसलिशखा० | ३।२।१४६ | पृ. | २५० | पृ. | ६५३ |
| निपात एकाजनाङ् | १।१।१४ | पृ. | १० | पृ. | ६६ |
| निपातस्य च | ६।३।१३६ | उ. | २६३ | उ. | ६२४ |
| निपातैर्यद्वदिहन्तकु० | ८।१।३० | उ. | ४७५ | उ. | ० |
| निपानमाहावः | ३।३।७४ | पृ. | २७५ | पृ. | ६८२ |
| निमूलसमूलयोः कषः | ३।४।३४ | पृ. | ३१० | पृ. | ७३० |
| निरः कुषः | ७।२।४६ | उ. | ३८७ | उ. | ७७४ |
| निरभ्योः पुल्वोः | ३।३।२८ | पृ. | २६६ | पृ. | ६७३ |
| निरुदकादीनि च | ६।२।१८४ | उ. | २५७ | उ. | ५७३ |
| निर्वाणो धाते | ८।२।५० | उ. | ५०६ | उ. | ६५१ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| निर्वृते सत्यतादिभ्यः | ४।४।१६ | पृ. | ४६५ | उ. | ० |
| निघाते वातत्रासो | ६।२।८ | उ. | २०७ | उ. | ५३९ |
| निवासचितिशरी० | ३।३।४९ | पृ. | २६८ | पृ. | ६०६ |
| निव्यभिभ्यो ङ्ङ्य० | ८।३।११६ | उ. | ५५७ | उ. | १०१४ |
| निशाप्रदोषाभ्यां च | ४।३।१४ | पृ. | ४२५ | उ. | ० |
| निष्कृताच्चिष्कोपयो | ५।४।६२ | उ. | ११७ | उ. | ३६४ |
| निष्ठा | २।२।३६ | पृ. | १३६ | पृ. | ४१६ |
| निष्ठा | ३।२।१०२ | पृ. | २४० | पृ. | ६३४ |
| निष्ठा च द्व्यजनात् | ६।१।२०५ | उ. | २०० | उ. | ५२२ |
| निष्ठायां सेटि | ६।४।५२ | उ. | ३०८ | उ. | ६६० |
| निष्ठायामण्यदर्थे | ६।४।६० | उ. | ३१० | उ. | ६६२ |
| निष्ठा शौर्हस्विदि० | १।२।१६ | पृ. | ३६ | पृ. | १६३ |
| निष्ठापमानादन्यत० | ६।२।१६६ | उ. | २५३ | उ. | ५७० |
| निष्ठापसर्गपूर्वमन्य० | ६।२।११० | उ. | २३७ | उ. | ५५६ |
| निष्ठाशिञ्च | ५।४।१६० | उ. | १४० | उ. | ४१२ |
| निससुपविभ्योः | १।३।३० | पृ. | ६१ | पृ. | २३४ |
| निसस्तपतावना० | ८।३।१०२ | उ. | ५५३ | उ. | १०११ |
| नीग्वञ्जुसंमुध्यंसु० | ७।४।८४ | उ. | ४५६ | उ. | ८७१ |
| नीचैरनुदात्तः | १।२।३० | पृ. | ३६ | पृ. | १६६ |
| नीतौ च तद्युक्तात् | ५।३।७७ | उ. | ६० | उ. | ३६० |
| नुगताऽनुनासिका० | ७।४।८५ | उ. | ४६० | उ. | ८७१ |
| नुदविदोऽन्त्राघा० | ८।२।५६ | उ. | ५१० | उ. | ६५२ |
| नुम्विसर्जनीयशर्ष्य० | ८।३।५८ | उ. | ५४९ | उ. | ६६६ |
| नु च | ६।४।६ | उ. | २६६ | उ. | ६२६ |
| नु चान्यतरस्याम् | ६।१।१८४ | उ. | १६५ | उ. | ० |
| नुन्ये | ८।३।१० | उ. | ५२६ | उ. | ६७६ |
| नेटि | ७।२।४ | उ. | ३६६ | उ. | ७५० |
| नेट्यलिटि रधेः | ७।१।६२ | उ. | ३५७ | उ. | ७२४ |
| नेट्यत्रि कृति | ७।२।८ | उ. | ३७१ | उ. | ७५१ |
| नेतराच्छन्दसि | ७।१।२६ | उ. | ३४७ | उ. | ७१० |
| नेटमटमोरकोः | ७।१।११ | उ. | ३४३ | उ. | ७०४ |
| नेन्दस्य परस्य | ७।३।२२ | उ. | ४१५ | उ. | ८१० |
| नेन्सिद्धमधातिपु च | ६।३।१६ | उ. | २६५ | उ. | ५६५ |
| नेयङ्ङुघङ्स्थानावस्ती | १।४।४ | पृ. | ७६ | पृ. | २६७ |
| नेरनिधाने | ६।३।१६३ | उ. | २५६ | उ. | ५७५ |
| नेर्गदनद्वयतपट० | ८।४।१७ | उ. | ५६२ | उ. | १०२३ |
| नेर्दिङ्ङिवरीसवी | ५।२।३२ | उ. | ४५ | उ. | ० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | प. | प. | प. | प. |
| नेर्विशः | १।३।१७ | प. | ५७ | प. | २२८ |
| नेङ्धात्वोः | ६।१।१७५ | उ. | १६३ | उ. | ५१३ |
| नेलरपदेऽनुदात्ता० | ६।२।१४२ | उ. | २४५ | उ. | ५६४ |
| नेत्वद्वर्ध्निन्वात् | ४।३।१५१ | पु. | ४५७ | उ. | १६४ |
| नेदात्तस्वरितोद० | ८।४।६७ | उ. | ५७५ | उ. | १०३६ |
| नेदात्तोपदेशस्य० | ७।३।३४ | उ. | ४९८ | उ. | ८९३ |
| नेानयतिध्वनयत्ये० | ३।१।५१ | पु. | १६६ | पु. | ५६१ |
| नेापधात्यफान्ताद्वा | १।२।२३ | पु. | ३७ | पु. | १६४ |
| नेापधायाः | ६।४।७ | उ. | २६६ | उ. | ६२६ |
| नेा गदनदपठस्यनः | ३।३।६४ | पु. | २७३ | पु. | ० |
| नेा ण च | ३।३।६० | पु. | २७३ | पु. | ० |
| नेाद्गुचष्टन् | ४।४।७ | पु. | ४६२ | उ. | २०१ |
| नेाद्ययोधर्मविषमूल० | ४।४।६९ | पु. | ४७६ | उ. | २९६ |
| नेा वृ धान्ये | ३।३।४८ | पु. | २७० | पु. | ६७८ |
| न्यप्रोधस्य च केवलस्य | ७।३।५ | उ. | ४०६ | उ. | ८०५ |
| न्यङ्कादीनां च | ७।३।५३ | उ. | ४२५ | उ. | ८२३ |
| न्यधी च | ६।४।५३ | उ. | २२३ | उ. | ५४५ |
| पक्षान्तिः | ५।२।२५ | उ. | ४३ | उ. | २८६ |
| पक्षमत्स्यमगान्धन्ति | ४।४।३५ | पु. | ४६८ | उ. | २०६ |
| पङ्क्तिविशतित्रिंशच्च | ५।१।५६ | उ. | १७ | उ. | २५१ |
| पङ्कोपच | ४।१।६८ | पु. | ३४६ | उ. | ६१ |
| पचो वः | ८।२।५२ | उ. | ५०६ | उ. | ० |
| पञ्चदशती वर्गे वा | ५।१।६० | उ. | ९८ | उ. | २५५ |
| पञ्चमी भयेन | ३।१।३७ | पु. | १९४ | पु. | ३६६ |
| पञ्चमी विभक्ते | ३।३।४२ | पु. | १४६ | पु. | ४३६ |
| पञ्चम्यपाङ्परिभिः | ३।३।१० | पु. | १४० | पु. | ० |
| पञ्चम्या अत् | ७।१।३९ | उ. | ३४८ | उ. | ० |
| पञ्चम्याः परावध्यर्थे | ८।३।५९ | उ. | ५४० | उ. | ६६४ |
| पञ्चम्यास्तोकादिभ्यः | ६।३।२ | उ. | २६१ | उ. | ५७८ |
| पञ्चम्यासजातो | ३।२।६८ | पु. | २३६ | पु. | ६३४ |
| पञ्चम्यास्तसिन् | ५।३।७ | उ. | ७५ | उ. | ३३४ |
| पणपाठमाप्रशताद्यत् | ५।१।३४ | उ. | १० | उ. | २४५ |
| पतः पुम् | ७।४।१६ | उ. | ४४५ | उ. | ८५४ |
| पतिः समासएव | १।४।८ | पु. | ७६ | पु. | २६६ |
| पत्यन्तपुरीहितादि० | ५।१।१२८ | उ. | ३४ | उ. | २७८ |
| पत्यावैश्वर्ये | ६।२।१८ | उ. | २९१ | उ. | ५३४ |
| पत्युर्ना यज्ञसंयोगे | ४।१।३३ | पु. | ३३६ | उ. | ३६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|--------------------------|------------|---------------|-----------------|
| पत्रपूर्वादज | ४।३।१२२ | पृ. ४५९ | उ. १८८ |
| पत्राध्यर्षुपरिषदश्च | ४।३।१२३ | पृ. ४५९ | उ. १८८ |
| पथः पन्थ च | ४।३।२६ | पृ. ४२८ | उ. ० |
| पथः प्कन् | ५।१।७५ | उ. २९ | उ. ० |
| पथि च क्कन्दसि | ६।३।१०८ | उ. ३८७ | उ. ० |
| पथिमयोः सर्वना० | ६।१।१६६ | उ. १६६ | उ. ५२९ |
| पथिमथ्यभुक्तामात् | ७।१।८५ | उ. ३६३ | उ. ७३६ |
| पथो विभाषा | ५।४।७२ | उ. १९६ | उ. ० |
| पथ्यतिथिवसति० | ४।४।१०४ | पृ. ४८९ | उ. २९६ |
| पदमस्मिन्दृश्यम् | ४।४।८७ | पृ. ४७८ | उ. २९५ |
| पदरुजविशस्यशो० | ३।३।१६ | पृ. २६३ | पृ. ६६६ |
| पदव्यवायेऽपि० | ८।४।३८ | उ. ५६७ | उ. १०३० |
| पदस्य | ८।१।१६ | उ. ४६६ | उ. ८६५ |
| पदात् | ८।१।१७ | उ. ४७० | उ. ८६७ |
| पदान्तस्य | ८।४।३७ | उ. ५६७ | उ. १०३० |
| पदान्तस्यान्यतरस्याम् | ७।३।६ | उ. ४१० | उ. ० |
| पदान्ताद्वा | ६।१।७६ | उ. १६५ | उ. ४५६ |
| पदास्यैरिवात्याप० | ३।१।११६ | पृ. २१० | पृ. ५६६ |
| पदेऽपदेशे | ६।२।७ | उ. २०७ | उ. ५३९ |
| पदोत्तरपदं गृह्णाति | ४।४।३६ | पृ. ४६८ | उ. २०७ |
| पठ्यचोमासहृच्चिप्रस० | ६।१।६३ | उ. १६० | उ. ४४५ |
| पठ्यत्यतदर्थे | ६।३।५३ | उ. २७५ | उ. ६०४ |
| पन्थो या नित्यम् | ५।१।७६ | उ. २९ | उ. २५८ |
| परः सञ्चिकर्षः सं० | १।४।१०६ | पृ. १०३ | पृ. ३४९ |
| परवलिङ्गं द्वन्द्वतत्पु० | २।४।२६ | पृ. १६५ | पृ. ४७३ |
| परश्च | ३।१।२ | पृ. १८३ | पृ. ५०९ |
| परश्वधाट्टञ्च | ४।४।५८ | पृ. ४७२ | उ. २०६ |
| परस्मिन्विभाषा | ३।३।१३८ | पृ. २६० | पृ. ० |
| परस्मैपदानां शल० | ३।४।८२ | पृ. ३२२ | पृ. ७४६ |
| परस्य च | ६।३।८ | उ. २६३ | उ. ५८२ |
| पराजेरसोऽः | १।४।१६ | पृ. ८३ | पृ. ३६५ |
| परार्दिशकन्देसि० | ६।२।१६६ | उ. ३६० | उ. ५७७ |
| परावनुपौत्यय इणः | ३।३।३८ | पृ. ३६८ | पृ. ६७५ |
| परापरयोगे च | ३।४।२० | पृ. ३७७ | पृ. ७२२ |
| परावराधमोत्तमपूर्वाच्च | ४।३।५ | पृ. ४२३ | उ. १६३ |
| परिक्रयणे संप्रदानम० | १।४।४४ | पृ. ८७ | पृ. ३६६ |
| परिक्रियमाने च | ३।४।५५ | पृ. ३९४ | पृ. ७३५ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|---------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| परिखाया ढङ् | ५।१।१७ | उ. ६ | उ. ० |
| परिनिविभ्यः सेव० | ८।३।७० | उ. ५४५ | उ. १००३ |
| परिन्योर्नाशिोर्द्व्यंता० | ३।३।३७ | पृ. २६८ | पृ. ६७५ |
| परिपन्थं च तिष्ठति | ४।४।३६ | पृ. ४६८ | उ. ३०६ |
| परिप्रत्युपापावर्ज्य० | ६।२।३३ | उ. २१६ | उ. ५३५ |
| परिमाणाख्यायां स० | ३।३।३० | पृ. २६४ | पृ. ६७९ |
| परिमाणान्तस्यासं० | ७।३।१७ | उ. ४१२ | उ. ८०६ |
| परिमाणे पञ्चः | ३।२।३३ | पृ. २२५ | पृ. ६१८ |
| परिमुखं च | ४।४।२६ | पृ. ४६६ | उ. २०५ |
| परिकृत्वा रथः | ४।२।१० | पृ. ३८३ | उ. १२८ |
| परिख्यवेभ्यः क्रियः | १।३।१८ | पृ. ५७ | पृ. २२६ |
| परिषदो ययः | ४।४।४४ | पृ. ४६६ | उ. ३०७ |
| परिषदो ययः | ४।४।१०९ | पृ. ४८१ | उ. ३१६ |
| परिस्कन्दः प्राच्यभ० | ८।३।७५ | उ. ५४७ | उ. ० |
| परैरभितोभाविम० | ६।२।१८२ | उ. २५६ | उ. ५७३ |
| परैर्द्वयः | १।३।८२ | पृ. ७४ | पृ. ० |
| परैर्वर्जने | ८।१।५ | उ. ४६५ | उ. ८८६ |
| परैश्च | ८।३।७४ | उ. ५४६ | उ. १००३ |
| परैश्च चाङ्गयोः | ८।२।२२ | उ. ५०९ | उ. ६४० |
| परोक्षे लिट् | ३।२।११५ | पृ. २४३ | पृ. ६५८ |
| परोवरपरंपरपुत्रपौ६ | ५।२।१० | उ. ४० | उ. २८५ |
| परो चः | ५।३।८४ | पृ. २७७ | पृ. ६८३ |
| परो भुवोऽवज्ञाने | ३।३।५५ | पृ. २७९ | पृ. ० |
| परो यज्ञे | ३।३।४७ | पृ. २७७ | पृ. ६७८ |
| पर्यादिभ्यः षठ् | ४।४।१० | पृ. ४६३ | उ. ३०२ |
| पर्यभिभ्यां च | ५।३।६ | उ. ७५ | उ. ३३५ |
| पर्याप्तिलचनेष्वलम० | ३।४।६६ | पृ. ३९७ | पृ. ७३८ |
| पर्याया ह्यौत्पत्तिपु० | ३।३।११९ | पृ. २८३ | पृ. ६६९ |
| पर्यताच्च | ४।२।१४३ | पृ. ४२९ | उ. ० |
| पर्यादिपौधेयादि० | ५।३।११७ | उ. १०० | उ. ३६८ |
| पल्लसूपश्चात् मिश्रे | ६।२।१२८ | उ. २४९ | उ. ० |
| पलाशादिभ्यो वा | ४।३।१४९ | पृ. ४५५ | उ. १६३ |
| पश्चपश्चा चच्छन्दसि | ५।३।३३ | उ. ८० | उ. ० |
| पश्चात् | ५।३।३२ | उ. ८० | उ. ३३६ |
| पश्याथैश्चानालोचने | ८।१।२५ | उ. ४७३ | उ. ६०० |
| पाककर्णपर्यपुण्यफ० | ४।१।६४ | पृ. ३४८ | उ. ५६ |

सूचीपत्रम् ।

६५

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|----------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| पाघाध्मास्याद्यादा० | ७।३।७८ | उ. | ४३० | उ. | ८२६ |
| पाघाध्माघेद् वृशः० | ३।१।१३७ | पु. | २१६ | पु. | ६०५ |
| पाणिघताडघा शि० | ३।२।५५ | पु. | २२६ | पु. | ० |
| पाण्डुकम्बनादिनिः | ४।२।११ | पु. | ३८४ | उ. | १२८ |
| पातो च बहुलम् | ८।३।५२ | उ. | ५४० | उ. | ६६४ |
| पात्रारूढन् | ५।१।४६ | उ. | १३ | उ. | ० |
| पात्रार्द्धश्च | ५।१।६८ | उ. | २० | उ. | २५७ |
| पात्रे समितादयश्च | २।१।४८ | पु. | ११७ | पु. | ३७१ |
| पाथोनदीभ्यां छण् | ४।४।१११ | पु. | ४८३ | उ. | २२० |
| पादः पत् | ६।४।१३० | उ. | ३२७ | उ. | ६८६ |
| पादशतस्य संख्यादे० | ५।४।१ | उ. | १०१ | उ. | ३६६ |
| पादस्य पदाज्याति० | ६।३।५२ | उ. | २७५ | उ. | ६०३ |
| पादस्य लोपाह० | ५।४।१३८ | उ. | १३५ | उ. | ४०६ |
| पादार्याभ्यां च | ५।४।२५ | उ. | १०७ | उ. | ३८१ |
| पादान्यतरस्याम् | ४।१।८ | पु. | ३३२ | उ. | २१ |
| पानं देशे | ८।४।६ | उ. | ५६० | उ. | १०२१ |
| पापं च शिल्पिनि | ६।२।६८ | उ. | २२७ | उ. | ५४८ |
| पापाशके कुत्सितैः | २।१।५४ | पु. | ११८ | पु. | ० |
| पायसाचार्य्यनि० | ३।१।१२६. | पु. | २१३ | पु. | ६०२ |
| पारस्करप्रभृतीनि० | ६।१।१५७ | उ. | १८६ | उ. | ४६६ |
| पारायणतुरायशाचा० | ५।१।७२ | उ. | २० | उ. | २५८ |
| पाराशर्यशिलालि० | ४।३।११० | पु. | ४४८ | उ. | १८६ |
| पारिमध्ये षष्ठ्या वा | २।१।१८ | पु. | १०६ | पु. | ३५६ |
| पाशैर्नान्विच्छति | ५।२।७५ | उ. | ५७ | उ. | ३१० |
| पाशादिभ्यो घः | ४।२।४६ | पु. | ३६३ | उ. | १३८ |
| पितरामातरा चच्छ० | ६।३।३३ | उ. | २६८ | उ. | ० |
| पिता मात्रा | १।२।७० | पु. | ५२ | पु. | २०६ |
| पितुर्यच्च | ४।३।७६ | पु. | ४३६ | उ. | १७६ |
| पितृव्यमातुलमाता० | ४।२।३६ | पु. | ३८६ | उ. | १३३ |
| पितृव्यसुश्रवण | ४।१।१३२ | पु. | ३६६ | उ. | ० |
| पिष्टाच्च | ४।३।१४६ | पु. | ४५६ | उ. | १६४ |
| पीलाया वा | ४।१।११८ | पु. | ३६६ | उ. | ० |
| पुंयोगादाख्यायाम् | ४।१।४८ | पु. | ३४३ | उ. | ४६ |
| पुंयस्कर्मधारयजातो० | ६।३।४२ | उ. | २७१ | उ. | ५६७ |
| पुंसि संज्ञायां घः० | ३।३।११८ | पु. | २८४ | पु. | ६६३ |
| पुंसोऽसुह | ७।१।८६ | उ. | ३६४ | उ. | ७३७ |
| पुगन्तलपूपधस्य च | ७।३।८६ | उ. | ४३३ | उ. | ८३२ |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|--------------------------|------------|---------|-------------------|-----|
| | अ. पा. सू. | पृ. | पृ. | पृ. |
| पुच्छभाण्डचीयरा० | ३।१।२० | पृ. १८८ | पृ. ५२५ | |
| पुत्रः पुंभ्यः | ६।२।१३२ | उ. २४२ | उ. ५६० | |
| पुत्राच्छ च | ५।१।४० | उ. १२ | उ. २४० | |
| पुत्रान्तादन्यत० | ४।१।१५६ | पृ. ३०५ | उ. ११४ | |
| पुत्रेन्यतरस्याम् | ६।३।२२ | उ. २६६ | उ. ० | |
| पुमः खण्ड्यरे | ८।३।६ | उ. ५२८ | उ. ६०५ | |
| पुमान् स्त्रिया | १।२।६० | पृ. ५१ | पृ. २०८ | |
| पुरा च परीक्षायाम् | ८।१।४२ | उ. ४०८ | उ. ६०५ | |
| पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्म० | ४।३।१०५ | पृ. ४४६ | उ. १८५ | |
| पुरि लुङ् चास्मै | ३।२।१२२ | पृ. २४४ | अ. ६६० पृ. ६४४ | |
| पुरुषप्रदान्वादिष्टः | ६।२।१६० | उ. २५८ | उ. ५०४ | |
| पुरुषस्तिभ्यामण् च | ५।२।३८ | उ. ४० | उ. २६५ | |
| पुरुषात्प्रमाणे ऽन्य० | ४।१।२४ | पृ. ३३६ | उ. ३५ | |
| पुरे प्राचाम् | ६।२।६६ | उ. २३४ | उ. ० | |
| पुरोऽधतोऽधेषु सतोः | ३।२।१८ | पृ. २२२ | पृ. ६१५ | |
| पुरो ऽव्ययम् | १।४।६० | पृ. ६५ | पृ. ३२३ | |
| पुषः संज्ञायाम् | ३।२।१८५ | पृ. २५८ | पृ. ६६१ | |
| पुषादिद्युताद्युदितः० | ३।१।५५ | पृ. १६० | पृ. ५६२ | |
| पुष्करादिभ्या देशे | ५।२।१३५ | उ. ७२ | उ. ३३० | |
| पुष्पसिद्धौ नक्षत्रे | ३।१।११६ | पृ. २१० | पृ. ५६८ | |
| पुःसर्वेषादीरिसट्टोः | ३।२।४१ | पृ. २२० | पृ. ६२० | |
| पुगाङ् ज्यो ऽ्या० | ४।३।११२ | उ. ६८ | उ. ३६० | |
| पुगोष्पन्यतरस्याम् | ६।२।२८ | उ. २१४ | उ. ० | |
| पुङ्ः त्वा च | १।२।२२ | पृ. ३६ | पृ. १६४ | |
| पुङ्श्च | ०।२।५१ | उ. २८८ | उ. ० | |
| पुङ्पञ्जोः शानन् | ३।२।१२६ | पृ. २४६ | अ. ६६५ पृ. ६४६ | |
| पुञ्जनात्पुञ्जितमनु० | ६।१।६० | उ. ४८५ | उ. ६१२ | |
| पुञ्जायां नानन्तरम् | ८।१।३० | उ. ४०० | उ. ६०४ | |
| पुञ्जकतोरै च | ४।१।३६ | पृ. ३३६ | उ. ४१ | |
| पूरणगुणसुहितार्थ० | २।२।११ | पृ. १२८ | पृ. ३६५ | |
| पूरणाद्वागे तीयादन् | ५।३।४८ | उ. ८४ | उ. ३४३ | |
| पूरणार्थादन् | ५।१।४८ | उ. १४ | उ. ३४८ | |
| पूर्यादिभाषा | ५।४।१४६ | उ. १३८ | उ. ० | |
| पूर्वकालिकसर्वजरत्पु० | २।१।४६ | पृ. ११८ | पृ. ३०१ | |
| पूर्वत्रासिद्धम् | ८।२।१ | उ. ४८६ | उ. ६२० | |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पट्टमञ्जरी |
|-----------------------------|-------------|---------|------------|
| | | पृ. | पृ. |
| पूर्वे तु भाषायाम् | ८ । २ । ६८ | उ. ५२२ | उ. ६६७ |
| पूर्वपत्रात् | ८ । ३ । १०६ | उ. ५५४ | उ. १०१२ |
| पूर्वपदात्मज्ञायाम्गः | ८ । ४ । ३ | उ. ५५८ | उ. १०१७ |
| पूर्वपरावरदक्षिणा० | ९ । १ । ३४ | पू. १५ | पू. ८७ |
| पूर्वधत्सन्: | ९ । ३ । ६२ | पू. ६८ | पू. २४२ |
| पूर्ववदप्रववड्वौ | २ । ४ । २७ | पू. १६६ | पू. ४७६ |
| पूर्वसदृशसमोनाद्य० | २ । १ । ३९ | पू. १९२ | पू. ३६४ |
| पूर्वादिनि: | ५ । २ । ८६ | उ. ५६ | उ. ३९३ |
| पूर्वादिभ्यो नद्यभ्यो वा | ७ । १ । १६ | उ. ३४४ | उ. ७०६ |
| पूर्वाधरावराणमसि० | ५ । ३ । ३६ | उ. ८२ | उ. ३४० |
| पूर्वापरप्रथमचरम० | २ । १ । ५८ | पू. १२० | पू. ३८० |
| पूर्वापराधरोत्तरमेक० | २ । २ । १ | पू. १२५ | पू. ३८७ |
| पूर्वाह्यापराह्यार्द्रासू० | ४ । ३ । ३८ | पू. ४२७ | उ. ० |
| पूर्वे कर्तरि | ३ । ३ । १६ | पू. २२२ | पू. ० |
| पूर्वे भूतपूर्वे | ६ । २ । २२ | उ. २१२ | उ. ५३३ |
| पूर्वेः कतमिनयो च | ४ । ४ । १३३ | पू. ४८७ | उ. २२५ |
| पूर्वाऽभ्यासः | ६ । १ । ४ | उ. १४२ | उ. ४२२ |
| पृथग्विनानानाभि० | २ । ३ । ३२ | पू. १४६ | पू. ४३६ |
| पृथ्वादिभ्य इमनि० | ५ । १ । १२२ | उ. ३२ | उ. २७६ |
| पृषोदरादीनि यथो० | ६ । ३ । १०६ | उ. २८७ | उ. ६१८ |
| पेवंशासवाहनधिपु | ६ । ३ । ५८ | उ. २७६ | उ. ६०५ |
| पैलादिभ्यश्च | २ । ४ । ५६ | पू. १७५ | पू. ४८६ |
| पोटायुवतिस्तोक० | २ । १ । ६५ | पू. १२२ | पू. ३८३ |
| पोरदुपधात् | ३ । १ । ६८ | पू. २०६ | पू. ५६२ |
| पोरोडागपुरोडाशा० | ४ । ३ । ७० | पू. ४३७ | उ. १७७ |
| प्याचः पी | ६ । १ । २८ | उ. १५१ | उ. ४३४ |
| प्रकारवचने जाती० | ५ । ३ । ६६ | उ. ८६ | उ. ३५७ |
| प्रकारवचने थाल् | ५ । ३ । २३ | उ. ७८ | उ. ३३७ |
| प्रश्नरे गुणवर्चनस्य | ८ । १ । १२ | उ. ४६७ | उ. ८६० |
| प्रकाशनस्थेयाख्य० | ९ । ३ । २३ | पू. ५८ | पू. २३२ |
| प्रकृत्यान्तःपादम० | ६ । १ । ११५ | उ. १७५ | उ. ४७१ |
| प्रकृत्याभगालम् | ६ । २ । १३७ | उ. २४३ | उ. ५६१ |
| प्रकृत्याग्राप्यगोवत्सहनेषु | ६ । ३ । ८३ | उ. २८२ | उ. ६१४ |
| प्रकृत्यैकाच्च | ६ । ४ । १६३ | उ. ३३६ | उ. ६६५ |
| प्रकृष्टे ठञ् | ५ । १ । १०८ | उ. २६ | उ. २६५ |
| प्रज्ञने धीयते: | ६ । १ । ५५ | उ. १५८ | उ. ४४३ |
| प्रज्ञने सते: | ३ । ३ । ७९ | पू. २७४ | पू. ६८९ |

| | श्र. या. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|---------------------------|--------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| प्रजोरितिः | ३।२।१५६ | पृ. २५२ | पृ. ६५६ |
| प्रजादिभ्यश्च | ५।४।३८ | उ. ११० | उ. ३८४ |
| प्रजाशब्दाच्चा० | ५।२।१०१ | उ. ६४ | उ. ३२२ |
| प्रगाद्यष्टः | ८।२।८६ | उ. ५१६ | उ. ६६४ |
| प्रगाद्यो संमत्तौ | ३।१।१२८ | पृ. २१३ | पृ. ६०२ |
| प्रतिः प्रतिनि० | १।४।६२ | पृ. ६६ | पृ. ३३१ |
| प्रतिकण्ठार्थललामं० | ४।४।४० | पृ. ४६६ | उ. २०० |
| प्रतिजनादिभ्यः० | ४।४।६६ | पृ. ४८० | उ. २१६ |
| प्रतिनिधिप्रतिदाने च | २।३।११ | पृ. १४० | पृ. ४२३ |
| प्रतिपथमेति ठञ्च | ४।४।४२ | पृ. ४६६ | उ. २०० |
| प्रतिबन्धिचिरकृ० | ६।२।६ | उ. २०० | उ. ५३० |
| प्रतियोगे घञ्चभ्याः | ५।४।४४ | उ. ११२ | उ. ३८६ |
| प्रतिश्रयणे च | ८।२।६६ | उ. ५२२ | उ. ६६० |
| प्रतिष्कशश्च कशेः | ६।१।१५२ | उ. १८५ | उ. ४६८ |
| प्रतिस्तब्धिनिस्त० | ८।३।११४ | उ. ५५६ | उ. १०१३ |
| प्रते रंश्वाद्यस्तत्पुमौ | ६।२।१६३ | उ. २५६ | उ. ५०५ |
| प्रतेरुरसः सप्तमी० | ५।४।८२ | उ. १२३ | उ. ४०० |
| प्रतेश्च | ६।१।२५ | उ. १५० | उ. ० |
| प्रत्पूर्वाविश्वेमात्या० | ५।३।१११ | उ. ६८ | उ. ३६० |
| प्रत्यपिभ्यां षष्टेः | ३।१।११८ | पृ. २१० | पृ. ० |
| प्रत्यभिवादेशूद्रे | ८।२।८३ | उ. ५१० | उ. ६६० |
| प्रत्ययः | ३।१।१ | पृ. १८३ | पृ. ४६८ |
| *प्रत्ययलोपे प्रत्यग्र० | १।१।६२ | पृ. २६ | पृ. १२६ |
| प्रत्ययस्यात्कात्पूर्व० | ७।३।४४ | उ. ४२१ | उ. ८१६ |
| प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः | १।१।६१ | पृ. २६ | पृ. १२४ |
| प्रत्ययोत्तरपदयोश्च | ७।२।६८ | उ. ४०१ | उ. ७६१ |
| प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः | १।३।५६ | पृ. ६८ | पृ. ३४२ |
| प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पू० | १।४।४० | पृ. ८६ | पृ. २६६ |
| प्रथने वावशब्दे | ३।३।३३ | पृ. २६० | पृ. ६०४ |
| प्रथमचरमन्त्याल्पा० | १।१।३३ | पृ. १५ | पृ. ८१ |
| प्रथमयोः पूर्वसवर्णाः | ६।१।१०२ | उ. १०३ | उ. ४०४ |
| प्रथमानिर्दिष्टं समा० | १।२।४३ | पृ. ४३ | पृ. १०८ |
| प्रथमायाश्च द्विवच० | ७।२।८८ | उ. ३६८ | उ. ७८० |
| प्रथमोचिरोपसंपत्तौ | ६।२।५६ | उ. २२४ | उ. ० |

* इदं सूत्रं १२६ पृ. श्रान्तिम् ३ पङ्क्ती रितोत्यस्यापि प्रत्ययलोपे इत्यस्य पूर्वमपेक्षितम् ।

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पटमञ्जरी | |
|----------------------------|------------|--------|-----|----------------------------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| प्रधानप्रत्ययार्थ० | १।२।५६ | पृ. | ४७ | पृ. | १६५ |
| प्रनिरन्तःशरैस्तु प्रज्ञा० | ८।४।५ | उ. | ५५६ | उ. | १०१६ |
| प्रभवति | ४।३।८३ | पृ. | ४४० | उ. | १८० |
| प्रभो परिशुद्धः | ७।२।२१ | उ. | ३०६ | उ. | ७६३ |
| प्रमदसम्भटा हर्षे | २।३।६८ | पृ. | २७४ | पृ. | ६८१ |
| प्रमायो च | ३।४।५१ | पृ. | ३१३ | पृ. | ७३३ |
| प्रमायो द्वयसङ्घट० | ५।२।३७ | उ. | ४६ | उ. | २६३ |
| प्रयच्छति गर्ह्यम् | ४।४।३० | पृ. | ४६७ | उ. | ८०५ |
| प्रयाजानुयाजौ य० | ७।३।६२ | उ. | ४२७ | उ. | ८२५ |
| प्रये रोहिष्ये श्रव्यथि० | ३।४।१० | पृ. | ३०५ | पृ. | ० |
| प्रयोजनम् | ५।१।१०६ | उ. | २६ | उ. | २६५ |
| प्रयोज्यनिर्णयौ० | ७।३।६८ | उ. | ४२८ | उ. | ८२६ |
| प्रवाहणस्य हे | ७।३।२८ | उ. | ४१६ | उ. | ८११ |
| प्रवृद्धादीनां च | ६।२।१४७ | उ. | २४७ | उ. | ५६५ |
| *प्रशंसायां रूपम् | ५।३।६६ | उ. | ८८ | उ. | ३५२ |
| प्रशंसायत्तनेषु च | २।१।६६ | पृ. | १२३ | पृ. | ३८३ |
| प्रशस्यस्य अः | ५।३।६० | उ. | ८६ | उ. | ३५० |
| प्रश्ने चासचकाले | ३।२।११७ | पृ. | २४३ | पृ. { अ.पृ. ६५६ पृ. ६४३ | |
| प्रष्टोऽप्रगामिनि | ८।३।६२ | उ. | ५५० | उ. | १००८ |
| प्रसमुयोदः पादपूरणे | ८।१।६ | उ. | ४६५ | उ. | ८८६ |
| प्रसंभ्यां जानुनोर्नुः | ५।४।१२६ | उ. | १३४ | उ. | ४०८ |
| प्रसितोत्सुकाभ्यां० | २।३।४४ | पृ. | १५० | उ. | ४४० |
| प्रस्कण्वहरिप्रचन्द्रा० | ६।१।१५३ | उ. | १८५ | उ. | ४६८ |
| प्रस्थो ज्यतरस्याम् | ८।२।५४ | उ. | ५०६ | उ. | ६५२ |
| प्रस्थपुरवहाताच्च | ४।२।१२२ | पृ. | ४१५ | उ. | १५६ |
| प्रस्थे ऽवृद्धमकर्षा० | ६।२।८७ | उ. | २३२ | उ. | ५५२ |
| प्रस्थेऽनुरपठपल० | ४।२।११० | पृ. | ४१२ | उ. | १५३ |
| प्रहरणम् | ४।४।५७ | पृ. | ४७२ | उ. | २०६ |
| प्रहासे च मन्योपप० | १।४।१०६ | पृ. | १०२ | पृ. | ३३६ |
| प्राक् कडारात्समासः | ३।१।३ | पृ. | १०५ | पृ. | ३५१ |
| प्राक् क्रीताच्छः | ५।१।१ | उ. | १ | उ. | २२७ |
| प्राक्लितादुच्यथा० | ८।३।६३ | उ. | ५४३ | उ. | १००० |
| प्राग्व्यात्कः | ५।३।७० | उ. | ८६ | उ. | ३५८ |

| | अ० पा० सू० | काशिका | पदमञ्जरी |
|-------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ० | पृ० |
| प्रागेकादशभ्यो ऽङ्क० | ५।३।४६ | उ. ८४ | उ. ३४३ |
| प्राग्घिताद्यत् | ४।४।७५ | पृ. ४७६ | उ. ० |
| प्राग्घिशो विभक्तिः | ५।३।९ | उ. ७४ | उ. ३३३ |
| प्राग्दीव्यतो ऽण् | ४।९।८३ | पृ. ३५३ | उ. ७५ |
| प्राग्यीश्वराचिपाताः | ९।४।५६ | पृ. ६९ | पृ. ३९५ |
| प्राग्यते ष्टञ् | ५।९।९८ | उ. ६ | उ. ३३७ |
| प्राग्वहतेष्टक् | ४।४।९ | पृ. ४६९ | उ. ९६६ |
| प्राचां ष्फ तद्धितः | ४।९।९७ | पृ. ३३४ | उ. ३९ |
| प्राचां कटादेः | ४।२।९३६ | पृ. ४२० | उ. ० |
| प्राचां क्रीडायाम् | ६।२।७४ | उ. २२६ | उ. ५४६ |
| प्राचां ग्रामनगराणाम् | ७।३।९४ | उ. ४९९ | उ. ८०७ |
| प्राचां नगरान्ते | ७।३।२४ | उ. ४९५ | उ. ८९० |
| प्राचामवृष्ट्रात्फिन० | ४।९।९६० | पृ. ३७६ | उ. ९९४ |
| प्राचामुपादेरह० | ५।३।८० | उ. ६९ | उ. ० |
| प्राणभञ्जजातिवयो० | ५।९।९२६ | उ. ३५ | उ. २७८ |
| प्राणिरजतादिभ्यो० | ४।३।९५४ | पृ. ४५७ | उ. ९६५ |
| प्राणिस्यादातो लञ्० | ५।२।६६ | उ. ६३ | पृ. ३९६ |
| प्रातिपदिकान्तनुम्० | ८।४।९९ | उ. ५६० | उ. ९०२९ |
| प्रातिपदिकार्थलिङ्गव० | २।३।४६ | पृ. ९५० | पृ. ४४० |
| प्राटयः | ९।४।५८ | पृ. ६२ | पृ. ३९८ |
| प्रादस्वाङ्गं संज्ञा० | ६।२।९८३ | उ. २५६ | उ. ५७३ |
| प्राद्वहः | ९।३।८९ | पृ. ७४ | पृ. ० |
| प्राध्वं वन्धने | ९।४।७८ | पृ. ६० | पृ. ३२४ |
| प्राज्ञापचे च द्वितीयया | २।२।४ | पृ. ९२६ | पृ. ३८६ |
| प्रायभवः | ४।३।३६ | पृ. ४३० | उ. ९७० |
| प्रावृद्दशरत्कालदि० | ६।३।९५ | उ. २६४ | उ. ५८४ |
| प्रावृष सययः | ४।३।९७ | पृ. ४२५ | उ. ९६५ |
| प्रावृषष्ठप् | ४।३।२६ | पृ. ४३० | उ. ० |
| प्रियवशे वटः खञ् | ३।२।३८ | पृ. २२६ | पृ. ६९६ |
| प्रियस्थिरस्फिरो० | ६।४।९५० | उ. ३३५ | उ. ६६५ |
| प्रीतो च | ६।२।९६ | उ. २९९ | उ. ५३२ |
| प्रीसुत्वः समभि० | ३।९।९४६ | पृ. २९८ | पृ. ६०८ |
| प्री वान्तः | ३।७।६ | पृ. २२० | पृ. ६९३ |
| प्री द्रुस्तुमुवः | ३।३।२७ | पृ. २६६ | पृ. ० |
| प्री वणिकाम् | ३।३।५२ | पृ. २७९ | पृ. ६७६ |
| प्री लपसुद्रुमथयदवसः | ३।२।९४५ | पृ. ४५० | पृ. ६५३ |
| प्री लिप्सायाम् | ३।३।४६ | पृ. २७० | पृ. ६७८ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|--------------------------|-------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| प्रेष्यसूत्रोपनिषोदो | २ । ३ । ६१ | पृ. १५४ | पृ. ४५२ |
| प्रे स्त्राऽयज्ञे | ३ । ३ । ३२ | पृ. २६७ | पृ. ६७४ |
| प्रेषातिमर्गप्राप्तका० | ३ । ३ । १६३ | पृ. २६८ | पृ. ७१० |
| प्रेक्ताल्लुक | ४ । २ । ६४ | पृ. ३६८ | पृ. १४३ |
| प्रेषाभ्यां युजेरयज्ञपा० | १ । ३ । ६४ | पृ. ६६ | पृ. २४५ |
| प्रेषाभ्यां समर्थाभ्याम् | १ । ३ । ४२ | पृ. ६४ | पृ. २३७ |
| सूक्तादिभ्योण | ४ । ३ । १६४ | पृ. ४५६ | पृ. १६८ |
| सुतप्रसह्या अचि० | ६ । १ । १२५ | पृ. १७८ | पृ. ४८६ |
| सुतावैच इदुतो | ८ । २ । १०६ | पृ. ५२४ | पृ. ६६६ |
| ष्वोदीनां ह्रस्वः | ७ । ३ । ८० | पृ. ४३१ | पृ. ८३० |
| फक्फिजेरन्यत० | ४ । १ । ६१ | पृ. ३५६ | पृ. ८६ |
| फणां च सप्तानाम् | ६ । ४ । १२५ | पृ. ३२६ | पृ. ६८४ |
| फलेयश्चिरप्रभंभरिश्च | ३ । २ । २६ | पृ. २२४ | पृ. ६१७ |
| फले लुक् | ४ । ३ । १६३ | पृ. ४५६ | पृ. १६७ |
| फल्गुनीप्रोष्ठपदा० | १ । २ । ६० | पृ. ४६ | पृ. १६७ |
| फाण्टावृत्तिभिमतता० | ४ । १ । १५० | पृ. ३७२ | पृ. १११ |
| फेनाटिलच्च | ५ । २ । ६६ | पृ. ६४ | पृ. ० |
| फेष्क च | ४ । १ । १४६ | पृ. ३७२ | पृ. ११० |
| बन्धने चर्षा | ४ । ४ । ६६ | पृ. ४८० | पृ. २१८ |
| बन्धुनि बहुव्रीहौ | ६ । १ । १४ | पृ. १४५ | पृ. ४२६ |
| बन्धे च विभाषा | ६ । ३ । १३ | पृ. २६४ | पृ. ५८३ |
| बभूयाततन्त्यजण० | ७ । २ । ६४ | पृ. ३६२ | पृ. ० |
| बर्हिषि वक्तम् | ४ । ४ । ११६ | पृ. ४८४ | पृ. २२१ |
| बलादिभ्यो मत्तुप० | ५ । २ । १३६ | पृ. ७३ | पृ. ३३१ |
| बहुगणवत्तुडिति संख्या | १ । १ । २३ | पृ. १२ | पृ. ७३ |
| बहुपुगागणसंघस्य० | ५ । २ । ५२ | पृ. ५२ | पृ. ३०४ |
| बहुप्रजाशकन्दसि | ५ । ४ । १२३ | पृ. १३२ | पृ. ० |
| बहुलं कन्दसि | २ । ४ । ३६ | पृ. १७० | पृ. ४८१ |
| बहुलं कन्दसि | २ । ४ । ७३ | पृ. १८० | पृ. ० |
| बहुलं कन्दसि | २ । ४ । ७६ | पृ. १८० | पृ. ० |
| बहुलं कन्दसि | ३ । २ । ८८ | पृ. २३८ | पृ. ० |
| बहुलं कन्दसि | ५ । २ । १२२ | पृ. ६६ | पृ. ३२७ |
| बहुलं कन्दसि | ६ । १ । ३४ | पृ. १५२ | पृ. ० |
| बहुलं कन्दसि | ७ । १ । ८ | पृ. ३४२ | पृ. ७०३ |
| बहुलं कन्दसि | ७ । १ । १० | पृ. ३४३ | पृ. ० |
| बहुलं कन्दसि | ७ । १ । १०३ | पृ. ३६८ | पृ. ७४६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|--------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| बहुलं कन्दसि | ७।३।६७ | उ. ४३६ | उ. ८३८ |
| बहुलं कन्दसि | ७।४।७८ | उ. ४५८ | उ. ० |
| बहुलं कन्दस्यमा० | ६।४।७५ | उ. ३९४ | उ. ६६६ |
| बहुलमाभीक्ष्ये | ३।२।८९ | पृ. २३६ | पृ. ६२६ |
| बहुवचनस्य वस्रसौ | ८।९।२९ | उ. ४०९ | उ. ० |
| बहुवचने भव्येत् | ७।३।१०३ | उ. ४३७ | उ. ८४० |
| बहुवीहाविदमेत० | ६।२।१६२ | उ. २५२ | उ. ५६६ |
| बहुवीहेरुधसो डीष् | ४।९।२५ | पृ. ३३७ | उ. ३६ |
| बहुवीहेश्चान्तोदात्तात् | ४।९।५२ | पृ. ३४५ | उ. ५३ |
| बहुवीहो प्रकृत्यापूर्व० | ६।२।९ | उ. २०४ | उ. ५२६ |
| बहुवीहो विश्वं सं० | ६।२।१०६ | उ. २३६ | उ. ५५५ |
| बहुवीहो सकथ्य० | ५।४।१९३ | उ. १२६ | उ. ४०४ |
| बहुवीहो संख्ये० | ५।४।७३ | उ. १९६ | उ. ३६६ |
| बहुषु बहुवचनम् | ९।४।२९ | पृ. ८३ | पृ. २७७ |
| बहोर्नञ्वटुत्तरपठ० | ६।२।१७५ | उ. २५५ | उ. ५७३ |
| बहोर्लोपो भू च बहोः | ६।४।१५८ | उ. ३३५ | उ. ६६५ |
| बहुच इजः प्राच्यभ० | २।४।६६ | पृ. १७७ | पृ. ४६० |
| बहुचः कृपेषु | ४।३।७३ | पृ. ४०९ | उ. ० |
| बहुचोन्तोदात्ताटु० | ४।५।६७ | पृ. ४३६ | उ. १७६ |
| बहुचोमनुष्यना० | ५।३।७८ | उ. ६९ | उ. ३६९ |
| बहुचपूर्वपदाटुच् | ४।४।६४ | पृ. ४७३ | उ. २९९ |
| बहुच्यतरस्याम् | ६।२।३० | उ. २९५ | उ. ५३४ |
| बहुच्यार्थाच्छका० | ५।४।४२ | उ. १९९ | उ. ३८५ |
| बहुधादिभ्यश्च | ४।९।४५ | पृ. ३४३ | उ. ४८ |
| बाष्पाष्मभ्यामुट्ट० | ३।९।१६ | पृ. १८७ | पृ. ० |
| बाहुन्तात्संज्ञायाम् | ४।९।६७ | पृ. ३४६ | उ. ० |
| बाहुधादिभ्यश्च | ४।९।६६ | पृ. ३५८ | उ. ६५ |
| बिभेतेहेतुभये | ६।९।५६ | उ. १५८ | उ. ४४३ |
| बिल्वकार्दिभ्यश्च० | ६।४।१५३ | उ. ३३३ | उ. ६६३ |
| बिल्वार्दिभ्यो ऽण् | ४।३।१३६ | पृ. ४५४ | उ. १६३ |
| विस्ताञ्च | ५।९।३९ | उ. १० | उ. २४५ |
| बृहत्या आच्छादने | ५।४।६ | उ. १०३ | उ. ३७३ |
| बुधपुष्यजनेङ् | ९।३।८६ | पृ. ७५ | पृ. २५७ |
| ब्रह्मणस्त्यः | ५।९।१३६ | उ. ३७ | उ. ८८९ |
| ब्रह्मणो ज्ञानपदा० | ५।४।१०४ | उ. १२७ | उ. ४०३ |
| ब्रह्मभूणवृत्रेषु क्विप् | ३।२।८७ | पृ. २३७ | पृ. ६३७ |
| ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः | ५।४।७८ | उ. १२२ | उ. ६६६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|----------------------------|--------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| ब्राह्मणयोपिाके संज्ञायाम् | ५ । २ । ७९ | उ. ५६ | उ. ३०८ |
| ब्राह्मणमागववाड्या० | ४ । २ । ४२ | पू. ३६९ | उ. ९३५ |
| ब्राह्मो ज्ञातो | ६ । ४ । १७९ | उ. ३३८ | उ. ६६७ |
| ब्रुव ईद | ७ । ३ । ६३ | उ. ४३५ | उ. ८३७ |
| ब्रुवः पञ्चानामा० | ३ । ४ । ८४ | पू. ३२२ | पू. ७४७ |
| ब्रुवो वृत्तिः | २ । ४ । ५३ | पू. ९७३ | पू. ४८३ |
| ब्रुवोप्यथोपध्वीप० | ८ । २ । ६९ | उ. ५२० | उ. ६६६ |
| भक्ताख्यास्तदर्थेषु | ६ । २ । ७९ | उ. २२८ | उ. ५४६ |
| भक्तागणाः | ४ । ४ । १०० | पू. ४८९ | उ. ० |
| भक्तादणान्यतरस्याम् | ४ । ४ । ६८ | पू. ४७४ | उ. २९२ |
| भक्तिः | ४ । ३ । ६५ | पू. ४४३ | उ. ० |
| भक्ष्येण मिथीकरणम् | २ । ९ । ३५ | पू. ९९४ | पू. ३६६ |
| भजो गिवः | ३ । २ । ६२ | पू. २३२ | पू. ० |
| भञ्जभासमिदो घु० | ३ । २ । ९६९ | पू. २५३ | पू. ६५७ |
| भञ्जोश्च चिगि | ६ । ४ । ३३ | उ. ३०४ | उ. ० |
| भयप्रवर्षे चच्छ० | ६ । ९ । ८३ | उ. ९६६ | उ. ४५६ |
| भर्गात्तैगर्ते | ४ । ९ । १९९ | पू. ३६३ | उ. ० |
| भवतष्टकृषो | ४ । २ । १९५ | पू. ४९३ | उ. ९५५ |
| भवतेरः | ७ । ४ । ७३ | उ. ४५७ | उ. ८६८ |
| भविष्यति गम्यादयः | ३ । ३ । ३ | पू. ३६० | पू. ६६४ |
| भविष्यति मर्यादा० | ३ । ३ । १३६ | पू. ३८६ | पू. ७०० |
| भवे ह्यन्दि | ४ । ४ । ११० | पू. ४८२ | उ. २३० |
| भव्यगोयप्रवचनीयो० | ३ । ४ । ६८ | पू. ३९८ | पू. ७४० |
| भस्त्रादिभ्यः ष्टन् | ४ । ४ । ९६ | पू. ४६४ | उ. २०२ |
| भस्त्रेपाजाज्ञाद्वास्यान० | ७ । ३ । ४७ | उ. ४३३ | उ. ८९६ |
| भस्य | ६ । ४ । १२६ | उ. ३२७ | उ. ० |
| भस्य टेलोपः | ७ । ९ । ८८ | उ. ३६४ | उ. ४३७ |
| भागाद्यच्च | ५ । ९ । ४६ | उ. ९४ | उ. २४८ |
| भाववर्त्मणोः | ९ । ३ । ९३ | पू. ५६ | पू. २२ |
| भावलक्षणे स्थगक० | ३ । ४ । ९६ | पू. ३०६ | पू. ७२२ |
| भाववचनाश्च | ३ । ३ । ९९ | पू. २६२ | पू. ६६७ |
| भावे | ३ । ३ । ९८ | पू. २६४ | पू. ६६६ |
| भावे च | ४ । ४ । १४४ | पू. ४८६ | उ. ० |
| भावे लुपसर्गस्य | ३ । ३ । ७५ | पू. २७५ | पू. ६८५ |
| भाषायां सद्व्यमथुवः | ३ । २ । १०८ | पू. २४९ | पू. ६५३ |
| भासनेपसंभाषा० | ९ । ३ । ४७ | पू. ६५ | पू. ६३७ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|------------|---------|----------|
| भिक्षादिभ्यो ऽण् | ४।२।३८ | पू. ३६० | उ. १३४ |
| भिक्षासेनादायेषु च | ३।२।१० | पू. २२२ | पू. ६१५ |
| भिक्षं शकलम् | ८।२।५६ | उ. ५११ | उ. ६५३ |
| भिक्षोद्धृतौ नदे | ३।१।११५ | पू. २१० | पू. ० |
| भियः क्रुक्कनी | ३।२।१०४ | पू. २५५ | पू. ० |
| भियो ऽन्यतरस्याम् | ६।४।११५ | उ. ३२३ | उ. ६८१ |
| भियो हेतुभये षुक् | ७।३।४० | उ. ४२० | उ. ८१६ |
| भीक्षार्थानां भयहेतुः | १।४।२५ | पू. ८३ | पू. २८५ |
| भीषादयो ऽपादाने | ३।४।७४ | पू. ३२० | पू. ७४३ |
| भीरीः स्थानम् | ८।३।८१ | उ. ५४८ | उ. १००५ |
| भीस्योहेतुभये | १।३।६८ | पू. ७१ | पू. ३५३ |
| भीहीभुहुमदजनधन० | ६।१।१६२ | उ. १६७ | उ. ५१६ |
| भीहीभुहुवां ष्लुवच्च | ३।१।३६ | पू. १६३ | पू. ५५१ |
| भुजान्युक्त्वा पाययुप० | ७।३।६१ | उ. ४२७ | उ. ८२५ |
| भुजां जनवने | १।३।६६ | पू. ७० | पू. २४१ |
| भुवः प्रभवः | १।४।३१ | पू. ८४ | पू. २८६ |
| भुवः संज्ञान्तरयोः | ३।२।१०६ | पू. २५६ | पू. ६६० |
| भुवश्च | ३।२।१३८ | पू. २४८ | पू. ६५२ |
| भुवश्च | ४।१।४७ | पू. ३४३ | उ. ४६ |
| भुवश्च महाव्याहृतेः | ८।२।७१ | उ. ५१४ | उ. ६५६ |
| भुवां भावे | ३।१।१०७ | पू. २०८ | पू. ५६५ |
| भुवां वृगलुङ्लिटोः | ६।४।८८ | उ. ३१७ | पू. ६७२ |
| भूतपूर्वं चरद् | ५।३।५३ | उ. ८५ | उ. ३४३ |
| भूते | ३।२।८४ | पू. २३७ | पू. ६३० |
| भूते च | ३।३।१४० | पू. २६१ | पू. ७०२ |
| भूते ऽपि वृष्यन्ते | ३।३।२ | पू. २६० | पू. ६६३ |
| भूवादयो धातवः | १।३।१ | पू. ५३ | पू. २१० |
| भूषणे ऽलम् | १।४।६४ | पू. ६४ | पू. ३२२ |
| भूसुवोस्तिङि | ७।३।८८ | उ. ४३४ | उ. ८२५ |
| भूजामित् | ७।४।७६ | उ. ४५८ | उ. ८६६ |
| भूजां संज्ञायाम् | ३।१।११२ | पू. २०६ | पू. ५६७ |
| भूषादिभ्यो भुव्यच्छे० | ३।१।१२ | पू. १८६ | पू. ५१६ |
| भोज्यं भव्ये | ७।३।६६ | उ. ४२८ | उ. ८२६ |
| भोभगोऽचोऽपूरुव० | ८।३।१७ | उ. ५३० | उ. ६७८ |
| भौरिक्याद्येषु कार्या० | ४।२।५४ | पू. ३६४ | उ. ० |
| भ्यसो भ्यम् | ७।१।३० | उ. ३४८ | उ. ७१२ |
| भस्जोरोपधयो० | ६।४।४७ | उ. ३०७ | उ. ६१६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|------------|--------|-----|----------|-----|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| भाजभासधुर्विद्यु० | ३।२।१७७ | पृ. | २५६ | पृ. | ६५६ |
| भाजभासभाषटीप० | ७।४।३ | उ. | ४४९ | उ. | ८४८ |
| भातरि च ज्यायसि | ४।१।१६४ | पृ. | ३७७ | उ. | १९८ |
| भातुर्व्यञ्च | ४।१।१४४ | पृ. | ३७९ | उ. | ० |
| भातुपुत्री स्वसदुहि० | १।२।६८ | पृ. | ५९ | पृ. | २०८ |
| भुवो लुक् च | ४।१।१२५ | पृ. | ३६७ | उ. | ० |
| मघवा बहलम् | ६।४।१२८ | उ. | ३२७ | उ. | ६८५ |
| मद्दुकभर्भरादन्यत० | ४।४।५६ | पृ. | ४७२ | उ. | २०६ |
| मतजनहलात्करण० | ४।४।६७ | पृ. | ४८० | उ. | २९८ |
| मतिबुद्धिपूजार्थभ्य० | ३।२।१८८ | पृ. | २५८ | पृ. | ६६२ |
| मतुवसो क संबुद्धी० | ८।३।१ | उ. | ५२५ | उ. | ६७२ |
| मताः पूर्वमात्संज्ञा० | ६।१।२१६ | उ. | २०३ | उ. | ५२४ |
| मतांश्च बह्वृजङ्गात् | ४।२।७२ | पृ. | ४०० | उ. | १४६ |
| मता च | ४।४।१३६ | पृ. | ४८८ | उ. | ० |
| मता कः सूक्तसामोः | ५।२।५६ | उ. | ५३ | उ. | ३०६ |
| मता बभ्रुचोऽनजि० | ६।३।१९६ | उ. | २६० | उ. | ६२२ |
| मत्वर्यं मासतन्वीः | ४।४।१२८ | पृ. | ४८६ | उ. | २२४ |
| मदोऽनुपसर्ग | ३।३।६७ | पृ. | २७४ | पृ. | ६८९ |
| मद्रृज्याः कन् | ४।२।१३९ | पृ. | ४९८ | उ. | १५६ |
| मद्रृत्परिवापणे | ५।४।६७ | उ. | १९८ | उ. | ३६५ |
| मद्रृभ्या ऽञ् | ४।२।१०८ | पृ. | ४९९ | उ. | १५३ |
| मधुबभ्रुवोऽन्नात्करण० | ४।१।१०६ | पृ. | ३६२ | उ. | १०९ |
| मधोः | ४।४।१३६ | पृ. | ४८८ | उ. | ० |
| मधोर्ञ च | ४।५।१२६ | पृ. | ४८६ | उ. | २२४ |
| मध्यादुरी | ६।३।१९ | उ. | २६३ | उ. | ० |
| मध्यान्मः | ४।३।८ | पृ. | ४२४ | उ. | ० |
| मध्येपदेनिवचने च | १।४।७६ | पृ. | ६६ | पृ. | ३२४ |
| मध्वादिभ्यश्च | ४।२।८६ | पृ. | ४०७ | उ. | ० |
| मनः | ३।२।८२ | पृ. | २३६ | पृ. | ६२६ |
| मनः | ४।१।१९ | पृ. | ३३२ | उ. | ३३ |
| मनसः संज्ञायाम् | ६।३।४ | उ. | २६२ | उ. | ० |
| मनुष्यतत्त्वयो० | ४।२।१३४ | पृ. | ४९६ | उ. | ० |
| मनोरी या | ४।१।३६ | पृ. | ३४० | उ. | ४२ |
| मनोज्ञातावश्य० | ४।१।१६९ | पृ. | ३७६ | उ. | १९५ |
| मन्तिन्व्याख्या० | ६।२।१५९ | उ. | २४८ | उ. | ५६७ |
| मन्त्रे घसहुरयाश० | ३।४।८० | पृ. | १८९ | पृ. | ४६४ |
| मन्त्रे वृषेपपञ्चमन० | ३।३।६६ | पृ. | २७६ | पृ. | ६८५ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पटमञ्जरी |
|---------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| *मन्त्रेष्वेतद्वहोक्थशब्द | ३।२।७९ | पृ. २३४ | पृ. ६२६ |
| मन्त्रेष्वोष्वाद्ये० | ६।४।१४९ | उ. ३३० | उ. ६८८ |
| मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रि० | ६।३।१३९ | उ. २६३ | उ. ० |
| मन्थीदनसक्तुवि० | ६।३।६० | उ. २७६ | उ. ६०५ |
| मन्यकर्मण्यनादरेवि० | २।३।१७ | पृ. १४२ | पृ. ४२७ |
| मपर्यन्तस्य | ७।२।६९ | उ. ३६६ | उ. ७८८ |
| मय उजो वो वा | ८।३।३३ | उ. ५३४ | उ. ६८३ |
| मयद् च | ४।३।८२ | पृ. ४४० | उ. १८० |
| मयञ्जितयोर्भाषा० | ४।३।१४३ | पृ. ४५५ | उ. १६३ |
| मयतेरिदन्यतर० | ६।४।७० | उ. ३१३ | उ. ६६७ |
| मयूरध्वंसकादयश्च | २।९।७२ | पृ. १२४ | पृ. ३८५ |
| मये च | ४।४।१३८ | पृ. ४८८ | उ. २२५ |
| मस्करमस्करिणी० | ६।९।१५४ | उ. १८५ | उ. ४६८ |
| मसृजिनशोर्भलि | ७।१।६० | उ. ३५६ | उ. ७२४ |
| महाकुनादश्वजो | ४।९।१४९ | पृ. ३७० | उ. ० |
| महान्त्रीत्यपराह्णाम्० | ६।२।३८ | उ. २५६ | उ. ५३७ |
| महाराजप्रोष्टपदा० | ४।२।३५ | पृ. ३८६ | उ. १३३ |
| महाराजाट्टञ्ज | ४।३।६७ | पृ. ४४३ | उ. ० |
| महेन्द्राक्षणी च | ४।२।२६ | पृ. ३८७ | उ. १३२ |
| माङ्गि लुङ् | ३।३।१७५ | पृ. ३०० | पृ. ० |
| माणवचरकाभ्यां खञ् | ४।९।१९ | उ. ४ | उ. २३३ |
| मातरपितरावुदीचाम् | ६।३।३२ | उ. २६८ | उ. ० |
| मातुःपितृभ्यामन्य० | ८।३।८५ | उ. ५४६ | उ. १००६ |
| मातृकुत्संख्यासम्भ० | ४।९।१९५ | पृ. ३६५ | उ. १०४ |
| मातृपितृभ्यां स्वसा० | ८।३।८४ | उ. ५४८ | उ. ० |
| मातृष्वसुश्च | ४।९।१३४ | पृ. ३६६ | उ. १०६ |
| मात्रोपज्ञोपक्रम० | ६।२।१४ | उ. २०६ | उ. ५३२ |
| माथेत्तरपद० | ४।४।३७ | पृ. ४६८ | उ. २०६ |
| मादुपधायाश्च म० | ८।२।६ | उ. ४२६ | उ. ६३५ |
| मानपश्वङ्गयोः क० | ५।३।५९ | उ. ८४ | उ. ३४३ |
| माने वयः | ४।३।१६२ | पृ. ४५६ | उ. १६७ |
| मान्त्रधदान्शान्० | ३।९।६ | पृ. १८४ | पृ. ५०८ |
| मायायामण् | ४।४।१२४ | पृ. ४८५ | उ. २३३ |
| मालादीनां च | ६।२।८८ | उ. २३७ | उ. ० |
| मासाट्टयसि य० | ५।९।८९ | उ. २२ | उ. २५६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|--------------------|--------------|---------------|-----------------|
| मितनखे च | ३।२।३४ | पृ. २२५ | पृ. ६९८ |
| मितां ह्रस्वः | ६।४।६२ | उ. ३९८ | उ. ६७३ |
| मित्रे वर्षा | ६।३।९३० | उ. २६२ | उ. ० |
| मिथ्योपपदात्क० | १।३।७९ | पृ. ७२ | पृ. २५४ |
| मितचोऽन्त्या० | १।१।४७ | पृ. २० | पृ. ६२ |
| मिदोर्गुणः | ७।३।८२ | उ. ४३९ | उ. ८३० |
| मिश्रं चानुपसर्ग० | ६।२।१५४ | उ. २४६ | उ. ५६७ |
| मीनातिमिनोतिदी० | ६।१।५० | उ. ९५६ | उ. ४४२ |
| मीनातेर्निगमे | ७।३।८९ | उ. ४३९ | उ. ० |
| मुखं स्वाङ्गम् | ६।२।१६७ | उ. २५३ | उ. ५७० |
| मुखनासिकावच० | १।१।८ | पृ. ८ | पृ. ५४ |
| मुचोर्कर्मकस्य० | ७।४।५७ | उ. ४५२ | उ. ८६२ |
| मुपडमिप्रप्रलक्षण० | ३।१।२९ | पृ. ९८८ | पृ. ५२६ |
| मुद्रादण् | ४।४।२५ | पृ. ४६६ | उ. ० |
| मूर्तो घनः | ३।३।७७ | पृ. २७५ | पृ. ६८३ |
| मूलमस्या बर्हि | ४।४।८८ | पृ. ४७८ | उ. २१५ |
| सूर्जोर्धिभाषा | ३।१।१९३ | पृ. २०६ | पृ. ५६८ |
| सूर्जोर्द्धिः | ७।२।१९४ | उ. ४०६ | उ. ७६८ |
| सुडसुटगुध० | १।२।७ | पृ. ३२ | पृ. १५४ |
| सुटन्तिकन् | ५।४।३६ | उ. १९९ | उ. ३८४ |
| सुपस्तिन्तियायाम् | १।२।२० | पृ. ३६ | पृ. १६३ |
| सुघर्तिभयेपु क्कजः | ३।२।४३ | पृ. २२७ | पृ. ६२० |
| सुर्निः | ३।४।८६ | पृ. ३२३ | पृ. ७४६ |
| सोऽनुस्वारः | ८।३।२३ | उ. ५३२ | उ. ६८० |
| सो नो धातोः | ८।२।६४ | उ. ५९२ | उ. ६५५ |
| सो राजि सम्भ क्रौः | ८।३।२५ | उ. ५३२ | उ. ६८० |
| स्रियतेर्लुङ्लि० | १।३।६९ | पृ. ६८ | पृ. २४२ |
| स्योश्च | ८।२।६५ | उ. ५९२ | उ. ० |
| यः झी | ७।२।११० | उ. ४०५ | उ. ७६८ |
| यङ्प्रचाप् | ४।१।७४ | पृ. ३५० | उ. ६३ |
| यङ् च | ७।४।३० | उ. ४४७ | उ. ८५६ |
| यङ्गोश्चि च | २।४।७४ | पृ. ९८० | पृ. ४६२ |
| यङ्गो वा | ७।३।६४ | उ. ४३५ | उ. ८३७ |
| यङ्चि भम् | १।४।१८ | पृ. ८९ | पृ. २७६ |
| यञ्प्रयत्रयोः | ३।३।१४८ | पृ. २६४ | पृ. ७०४ |
| यञ्जपदशां यङ् | ३।२।१६६ | पृ. २५४ | पृ. ६५७ |
| यञ्जध्वेनमिति च | ७।१।४३ | उ. ३५२ | उ. ७९६ |

काशिकापदमञ्जरीः

| अ. पा. मू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|------------|--------|-----|----------|------|
| | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| ३।३।१० | पृ. | २७८ | पृ. | ६८४ |
| ७।३।६६ | उ. | ४२८ | उ. | ८२६ |
| ६।१।१९७ | उ. | १७६ | उ. | ० |
| ८।३।१०४ | उ. | ५५३ | उ. | ० |
| २।३।६३ | पृ. | ११५ | पृ. | ० |
| १।२।३४ | पृ. | ४० | पृ. | १७२ |
| ५।१।७१ | उ. | २० | उ. | २५७ |
| ३।३।३१ | पृ. | २६६ | पृ. | ६७४ |
| ४।४।६५ | पृ. | १७७ | पृ. | ४१० |
| ४।१।१६ | पृ. | ३३४ | उ. | ३१ |
| ४।१।१०१ | पृ. | ३६० | उ. | १८ |
| ३।३।४१ | पृ. | १४१ | पृ. | ४३१ |
| ६।१।२१३ | उ. | २०१ | उ. | ५२४ |
| ५।२।३८ | उ. | ४७ | उ. | २१५ |
| ७।३।३१ | उ. | ४१७ | उ. | ८१२ |
| ३।४।६८ | पृ. | ३०१ | पृ. | ७२८ |
| ५।२।६ | उ. | ३१ | उ. | २८२ |
| ३।४।४ | पृ. | ३०३ | पृ. | ७१८ |
| १।३।१० | पृ. | ५५ | पृ. | २११ |
| २।१।७ | पृ. | १०७ | पृ. | ३५५ |
| ८।१।१४ | उ. | ४६१ | उ. | ६१४ |
| ८।१।५६ | उ. | ४८२ | उ. | ११० |
| ८।१।६६ | उ. | ४८५ | उ. | ११२ |
| ३।३।६३ | पृ. | २७३ | पृ. | ० |
| ७।३।७३ | उ. | ३१४ | उ. | ७८२ |
| १।३।१५ | पृ. | ३४ | पृ. | १६० |
| ६।३।१५६ | उ. | २५० | उ. | ५६८ |
| ८।४।४५ | उ. | ५७० | उ. | १०३२ |
| ५।३।३ | उ. | ३८ | उ. | २८२ |
| ३।३।१७६ | पृ. | २६६ | पृ. | ६५१ |
| ३।१।७१ | पृ. | २०० | पृ. | ५६७ |
| २।४।६३ | पृ. | १७६ | पृ. | ४८१ |
| १।४।१३ | पृ. | ८० | पृ. | २७० |
| ३।३।१ | पृ. | १४० | पृ. | ४३३ |
| ३।३।३७ | पृ. | १४८ | पृ. | ४३८ |
| ३।१।१६ | पृ. | १०१ | पृ. | ३५८ |
| ७।३।१५ | उ. | ३७६ | उ. | ७६० |

| | क्र. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-----------------------|--------------|--------|-----|----------|-----|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| यस्य हनः | ६।४।४६ | उ. | ३०८ | उ. | ६५८ |
| यस्येति च | ६।४।९४८ | उ. | ३३२ | उ. | ६६० |
| याज्ञिकादिभिश्च | २।२।६ | पु. | ९२७ | पु. | ३६४ |
| याज्ञयान्तः | ८।२।६० | उ. | ५२० | उ. | ६६५ |
| याज्ञापः | ७।३।९९३ | उ. | ४३६ | उ. | ८४२ |
| याप्ये षाशप् | ५।३।४० | उ. | ८३ | उ. | ३४२ |
| यावति विन्दजीषोः | ३।४।३० | पु. | ३०६ | पु. | ७२६ |
| यावत्पुरानिपात० | ३।३।४ | पु. | २६० | पु. | ६६४ |
| यावदवधारणे | २।९।८ | पु. | ९०७ | पु. | ३५५ |
| यावद्व्याभ्याम् | ८।९।३६ | उ. | ४७६ | उ. | ६०४ |
| यावादिभ्यः कन् | ५।४।२६ | उ. | ९०८ | उ. | ३८९ |
| यासुद् परस्मैपदे० | ३।४।९०३ | पु. | ३२५ | पु. | ७५० |
| यीवर्णयोर्दीधीये० | ७।४।५३ | उ. | ४५२ | उ. | ८६९ |
| मुक्तरोह्यादयश्च | ६।२।८९ | उ. | २३० | उ. | ५५० |
| मुक्ते च | ६।२।६६ | उ. | २२७ | उ. | ५४७ |
| मुःयं च यत्रे | ३।९।९२९ | पु. | २९९ | पु. | ५६६ |
| मुजेरसमासे | ७।९।७९ | उ. | ३५६ | उ. | ७२७ |
| मुमुवोर्दीर्घ० | ६।४।५८ | उ. | ३९० | उ. | ० |
| मुवाखलतिप० | २।९।६७ | पु. | ९२३ | पु. | ३८३ |
| मुत्राल्ययोः कनन्य० | ५।३।६४ | उ. | ८७ | उ. | ३५२ |
| मुवावा द्विव० | ७।२।६२ | उ. | ४०० | उ. | ७६० |
| मुघोरनाकौ | ७।९।९ | उ. | ३४० | उ. | ६६६ |
| मुष्मत्तत्तत्तु० | ८।३।९०३ | उ. | ५५३ | उ. | ९०९ |
| मुष्मदस्मदोः षष्ठी० | ८।९।२० | उ. | ४७९ | उ. | ८६६ |
| मुष्मदस्मदोरमादे० | ७।२।८६ | उ. | ३६८ | उ. | ७८७ |
| मुष्मदस्मदोरन्य० | ४।३।९ | पु. | ४३२ | उ. | ९६९ |
| मुष्मदस्मदोर्हति | ६।९।२९९ | उ. | ३०९ | उ. | ५२३ |
| मुष्मदस्मदोर्ह्यां ङ० | ७।९।२७ | उ. | ३४७ | उ. | ७९० |
| मुष्मदपपदे स० | ९।४।९०५ | पु. | ९०२ | पु. | ३३७ |
| मूनश्च कुत्सायाम् | ४।९।९६७ | पु. | ३७८ | उ. | ९२० |
| मूनस्तिः | ४।९।७७ | पु. | ३५९ | उ. | ६४ |
| मूनि लुक् | ४।९।६० | पु. | ३५६ | उ. | ८५ |
| मूयययो जसि | ७।२।६३ | उ. | ४०० | उ. | |
| मू स्याग्य्या न्दी | ९।४।३ | पु. | ७८ | पु. | |
| ये च | ६।४।९०६ | उ. | ३२२ | उ. | |
| ये च त्छिते | ६।९।६९ | उ. | ९५६ | उ. | |
| ये चाभावकर्म० | ६।४।९६८ | उ. | ३३७ | उ. | |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|----------------------|------------|---------------|-----------------|
| येन विधिस्तदन्तस्य | १।१।७२ | पृ. २६ | पृ. १४२ |
| येनाङ्गविकारः | २।३।३० | पृ. १४३ | पृ. ४३० |
| ये यज्ञकर्मणि | ८।२।८८ | उ. ५१८ | उ. ६६४ |
| ये विभाषा | ६।४।४३ | उ. ३०६ | उ. ६५५ |
| येषां च विरोधः शा० | २।४।६ | पृ. १६१ | पृ. ४६४ |
| योगप्रमाणे च० | १।२।५५ | पृ. ४७ | पृ. १८४ |
| योगाद्यच्च | ५।१।१०२ | उ. २८ | उ. ० |
| योचि | ७।२।८६ | उ. ३६८ | उ. ७८७ |
| योजनं गच्छति | ५।१।७४ | उ. २१ | उ. २५८ |
| योपधाद्गुपोत्त० | ५।१।१३२ | उ. ३६ | उ. ३८० |
| र ऋतो हलादेशधोः | ६।४।१६१ | उ. ३३६ | उ. ६६५ |
| रक्ते | ५।४।३२ | उ. १०६ | उ. ३८२ |
| रक्षति | ४।४।३३ | पृ. ४६७ | उ. ३०५ |
| रक्षोघातूनां ह० | ४।४।१२१ | पृ. ४०४ | उ. ३२१ |
| रक्षोरमनुष्ये० | ४।२।१०० | पृ. ४१० | उ. १५१ |
| रजःकव्यामु० | ५।२।११२ | उ. ६७ | उ. ३३४ |
| रज्जुश्च | ६।४।२६ | उ. ३०२ | उ. ६५१ |
| रथवटयोश्च | ६।३।१०२ | उ. ३२६ | उ. ० |
| रथाद्यत् | ४।३।१२१ | पृ. ४५० | उ. १८८ |
| रदाभ्यां निष्ठातो नः | ८।२।४२ | उ. ५०६ | उ. ८४८ |
| रधादिभ्यश्च | ७।२।४५ | उ. ३८६ | उ. ७७४ |
| रधिजभोरचि | ७।१।६१ | उ. ३५६ | उ. ७२४ |
| रभेरश्वलिटोः | ७।१।६३ | उ. ३५७ | उ. ७२५ |
| रलो व्युपधाद्ध० | १।२।२६ | पृ. ३७ | पृ. १६५ |
| रप्रसो च | ३।३।५३ | पृ. २७१ | पृ. ६७१ |
| रपाभ्यां नो णः स० | ८।४।१ | उ. ५५७ | उ. १०१४ |
| रसादिभ्यश्च | ६।२।६५ | उ. ६२ | उ. ३१८ |
| राजदन्तादिषु० | ३।३।३१ | पृ. १३४ | पृ. ४१३ |
| राजनि युधि० | ३।२।६५ | पृ. २३६ | पृ. ६३४ |
| राजन्यबहुवचन० | ६।२।३४ | उ. २१६ | उ. ५३५ |
| राजन्यादिभ्यो वृञ् | ४।२।५३ | पृ. ३८४ | उ. ० |
| राजन्यान्सोराज्ये | ८।२।१४ | उ. ४६८ | उ. ६३६ |
| राजश्वशुराद्यत् | ४।१।१३७ | पृ. ३७० | उ. १०० |
| राजसूयसूर्ये० | ३।१।११४ | पृ. ३०६ | पृ. ५६८ |
| राजा च | ६।२।५६ | उ. ३२५ | उ. ५४६ |
| राजा च प्रशंसायाम् | ६।२।६३ | उ. ३२५ | उ. ५४७ |
| राजाहःसखि० | ५।४।६१ | उ. १२४ | उ. ४०२ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|--------------|---------------|-----------------|
| राजः क च | ४ । २ । १४० | पृ. ४२९ | उ. ० |
| रात्राहाहाः पुं० | २ । ४ । २६ | पृ. १६६ | पृ. ४७७ |
| रात्रेः कृति चि० | ६ । ३ । ७२ | उ. २८० | उ. ६१० |
| रात्रेश्चाजसौ | ४ । १ । ३९ | पृ. ३३८ | उ. ३८ |
| रात्र्यहःसंवत्स० | ५ । १ । ८७ | उ. २४ | उ. २६० |
| रात्सस्य | ८ । २ । २४ | उ. ५०९ | उ. ६४९ |
| राधीद्यौर्यस्य० | १ । ४ । ३६ | पृ. ८६ | पृ. २८६ |
| राधो हिंसायाम् | ६ । ४ । १२३ | उ. ३२६ | उ. ६८४ |
| राधो हलि | ७ । २ । ८५ | उ. ३८८ | उ. ७८७ |
| राल्लोपः | ६ । ४ । २९ | उ. ३०० | उ. ६४० |
| राष्ट्रावारपारा० | ४ । २ । ६३ | पृ. ४०८ | उ. १५० |
| रिक्ते विभाषा | ६ । १ । २०८ | उ. २०९ | उ. ५२३ |
| रिङ् शर्वाग्ल० | ६ । ४ । २८ | उ. ४४६ | उ. ८५६ |
| रि च | ७ । ४ । ५९ | उ. ४५९ | उ. ८६९ |
| रीयदुपधस्य च | ७ । ४ । ६० | उ. ४६९ | उ. ८७२ |
| रीकृतः | ७ । ४ . २७ | उ. ४४६ | उ. ८५५ |
| रिपिको च लुकि | ७ । ४ । ६९ | उ. ४६९ | उ. ८७२ |
| रुच्यर्थानां प्रीयमाणाः | १ । ४ । ३३ | पृ. ८५ | पृ. २८२ |
| रुजार्थानां भावय० | २ । ३ । ५४ | पृ. १५२ | पृ. ४५० |
| रुदविदमुषपहि० | १ । २ । ८ | पृ. ३३ | पृ. १५४ |
| रुदश्च पञ्चभ्यः | ७ । ३ । ६८ | उ. ४३६ | उ. ८३६ |
| रुदादिभ्यः सार्व० | ७ । २ । ७६ | उ. ३८५ | उ. ७८३ |
| रुधादिभ्यः श्नम् | ३ । १ । ७८ | पृ. २०९ | पृ. ५६८ |
| रुष्यमत्वरसंघु० | ७ । २ । २८ | उ. ३८० | उ. ७६५ |
| रुहः पौन्यतरस्याम् | ७ । ३ । ४३ | उ. ४२० | उ. ८९६ |
| रुपादाहतप्र० | ५ । २ । १२० | उ. ६६ | उ. ३३७ |
| रुवतीजमती० | ४ । ४ । १२२ | पृ. ४८४ | उ. २२२ |
| रुवत्यादिभ्यष्ठक् | ४ । १ । १४६ | पृ. ३७९ | उ. ९०८ |
| रुवतिक्कादिभ्यश्छः | ४ । ३ । १३९ | पृ. ४५३ | उ. ९८२ |
| रोः सुपि | ८ । ३ । १६ | उ. ५३० | उ. ९७८ |
| रोमाख्यायां रघु० | ३ । ३ । १०८ | पृ. २८२ | पृ. ६३६ |
| रोमाच्छापनयने | ५ । ४ । ४६ | उ. १९३ | उ. ३८८ |
| रोक्षी | ४ । २ । ७८ | पृ. ४०२ | उ. १४६ |
| रोपधेतोः प्राचाम् | ४ । २ । १२३ | पृ. ४९५ | उ. १५६ |
| रो रि | ८ । ३ । १४ | उ. ५२६ | उ. ९७७ |
| रोः सुपि | ८ । २ । ६६ | उ. ५९३ | उ. ९५५ |
| रौरुपधाय० | ८ । २ । ७६ | उ. ५९५ | उ. ९५७ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|---------------------------|
| | | पृ. | पृ. |
| लः कर्मणि च भावे० | ३।४।६६ | पृ. ३९८ | पृ. ७४० |
| लः परस्मैपदम् | १।४।६६ | पृ. १०९ | पृ. ३३४ |
| लक्षणहेत्वोः० | ३।२।१२६ | पृ. २४५ | पृ. { अशु. ६६३ शु. ६४७ |
| लक्षणे जायापत्याष्ठक् | ३।२।५२ | पृ. २२६ | पृ. ६२९ |
| लक्षणेत्थंभूताख्यान० | १।४।६० | पृ. ६६ | पृ. ३३० |
| लक्षणेनाभिप्रती० | २।१।१४ | पृ. १०८ | पृ. ३५७ |
| लङः शाकटायन० | ३।४।११९ | पृ. ३२७ | पृ. ७५३ |
| लटः शतृशानच्चा० | ३।२।१२४ | पृ. २४५ | पृ. { अशु. ६६९ शु. ६४५ |
| लटस्मै | ३।२।११८ | पृ. २४४ | पृ. { अशु. ६५६ शु. ६४३ |
| लभेश्च | ७।१।६४ | उ. ३५७ | उ. ७२५ |
| लघयाट्टञ् | ४।४।५२ | पृ. ४७९ | उ. ० |
| लघयाल्लुक् | ४।४।२४ | पृ. ४८६ | उ. २०४ |
| लशक्वतद्धिते | १।३।८ | पृ. ५५ | पृ. २९८ |
| लघपतपदस्था० | ३।२।१५४ | पृ. २५२ | पृ. ६५५ |
| लस्य | ३।४।७७ | पृ. ३२९ | पृ. ७४४ |
| लाद्वारोचनाशकल० | ४।२।२ | पृ. ३८९ | उ. १२४ |
| लिङः स लोपोनन्त्य० | ७।२।७६ | उ. ३८६ | उ. ७८४ |
| लिङः सीयुट् | ३।४।१०२ | पृ. ३२५ | पृ. ७५० |
| लिङर्थे लेट् | ३।४।७ | पृ. ३०४ | पृ. ७२० |
| लिङाशिबि | ३।४।११६ | पृ. ३२८ | पृ. ० |
| लिङ् च | ३।३।१५६ | पृ. २८७ | पृ. ७०८ |
| लिङ् चोर्ध्वमीहू० | ३।३।६ | पृ. २६९ | पृ. ६६५ |
| लिङ् चोर्ध्वमीहू० | ३।३।१६४ | पृ. २८८ | पृ. ७१९ |
| लिङ्निमित्ते लृ० | ३।३।१३६ | पृ. २८९ | पृ. ७०२ |
| लिङ् यटि | ३।३।१६८ | पृ. २८८ | पृ. ७१२ |
| लिङ्याशिष्यङ् | ३।१।८६ | पृ. ३०२ | पृ. ५७७ |
| लिङ्सिच्चात्स० | १।२।११ | पृ. ३३ | पृ. १५८ |
| लिङ्सिचोरात्स० | ७।२।४२ | उ. ३८५ | उ. ७७३ |
| लिटः कानञ्वा | ३।२।१०६ | पृ. २४९ | पृ. { अशु. ६६६ शु. ६५२ |
| लिटस्सभूयोरेशि० | ३।४।८९ | पृ. ३२२ | पृ. ७४६ |
| लिटिधातेरनभ्या० | ६।१।८ | उ. १४३ | उ. ४२५ |
| लिटि वयो यः | ६।१।३८ | उ. १५४ | उ. ४३८ |
| लिट् च | ३।४।११५ | पृ. ३२८ | पृ. ७५५ |

| | अ. पा. नु. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-------------------|------------|--------|-----|--------------------|------------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| लिङ्गन्यतरस्याम् | २।४।४० | पृ. | १७० | पृ. | ४८९ |
| लिङ्गभ्यासस्यो० | ६।१।१७ | पृ. | १४७ | पृ. | ४३९ |
| लिङ्गहोश्च | ६।१।२६ | पृ. | १५९ | पृ. | ४३४ |
| लिति | ६।१।१६३ | पृ. | १६७ | पृ. | ५३० |
| लिपिसिचिद्वृश्च | ३।१।५३ | पृ. | १६६ | पृ. | ५६९ |
| लिप्प्यमानसि० | ३।३।७ | पृ. | २६९ | पृ. | ६६५ |
| लियः संमानन० | १।३।७० | पृ. | ७९ | पृ. | ३५४ |
| लीलोर्नुगुकाव० | ७।३।३६ | पृ. | ४२० | पृ. | ८१५ |
| लुक्छितलुकि | १।२।४६ | पृ. | ४५ | पृ. | ९८६ |
| लुक् स्त्रियाम् | ४।१।१०६ | पृ. | ३६३ | पृ. | ९०९ |
| लुगवा दुहृदिह० | ७।३।७३ | पृ. | ४२६ | पृ. | ८२८ |
| लुङ् | ३।३।११० | पृ. | २४२ | पृ. ६५५ पृ. ६३६ | ६५५ ६३६ |
| लुङ् च | ३।४।४३ | पृ. | १७९ | पृ. | ० |
| लुङ्लङ्लुङ्० | ६।४।७९ | पृ. | ३१३ | पृ. | ० |
| लुङ्सनोर्घस्लु | ३।४।३७ | पृ. | १७० | पृ. | ४८९ |
| लुटः प्रथमस्य० | ३।४।८५ | पृ. | १८२ | पृ. | ४८६ |
| लुटि च ऋपः | १।३।६३ | पृ. | ७७ | पृ. | ३६० |
| लुपसदचरजप० | ३।१।२४ | पृ. | १८६ | पृ. | ५३० |
| लुपि युक्तवद्भु० | १।३।५९ | पृ. | ४६ | पृ. | ९६० |
| लुप् च | ४।३।१६६ | पृ. | ४६० | पृ. | ९६८ |
| लुक्विशेषे | ४।३।४ | पृ. | ३८२ | पृ. | ९२६ |
| लुव्योगाप्रख्या० | १।३।५४ | पृ. | ४७ | पृ. | ९६४ |
| लुभोविमोहने | ७।३।५४ | पृ. | ३८६ | पृ. | ७७३ |
| लुम्भनुष्ये | ५।३।६८ | पृ. | ६६ | पृ. | ३६६ |
| लुटः सद्वा | ३।३।१४ | पृ. | २६३ | पृ. | ६६८ |
| लुट् शेषे च | ३।३।१३ | पृ. | २६२ | पृ. | ६६८ |
| लुटो हाटो | ३।४।६४ | पृ. | ३३४ | पृ. | ७४६ |
| लुक्लृत्वलोका० | ५।१।४४ | पृ. | ९३ | पृ. | ० |
| लुटो लङ्त्वत् | ३।४।८५ | पृ. | ३३२ | पृ. | ७४८ |
| लुट् च | ३।३।१६२ | पृ. | २६७ | पृ. | ७४० |
| लुट् च | ८।१।५२ | पृ. | ४८९ | पृ. | ९०८ |
| लुङ्छितलुक्चो च | ३।३।८ | पृ. | २६९ | पृ. | ६६५ |
| लुपः प्रिक्वतेरी० | ७।४।४ | पृ. | ४४३ | पृ. | ८४८ |
| लुपः शाकल्यस्य | ८।३।१६ | पृ. | ५३९ | पृ. | ६७६ |
| लुपश्चास्यान्यतर० | ६।४।१०७ | पृ. | ३३९ | पृ. | ६७८ |
| लुपश्चात्सामनेप० | ७।१।४९ | पृ. | ३५९ | पृ. | ७९६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-------------------------|--------------|--------|-----|----------|------|
| | | उ. | पृ. | उ. | पृ. |
| लोपे विभाषा | ८।१।४५ | उ. | ४७६ | उ. | ६०६ |
| लोपो वि | ६।४।११८ | उ. | ३२४ | उ. | ६८१ |
| लोपो व्योर्बलि | ६।१।६६ | उ. | १६२ | उ. | ४४८ |
| लोमादिपामादिपि० | ५।२।१०० | उ. | ६४ | उ. | ३२१ |
| लोहितादिडाडभ्यः | ३।१।१३ | पू. | १८६ | पू. | ५२२ |
| लोहितान्मयो | ५।४।३० | उ. | १०६ | उ. | ० |
| व्यपि च | ६।१।४१ | उ. | १५४ | उ. | ४३८ |
| व्यपि लघुपूर्वात् | ६।४।५६ | उ. | ३०६ | उ. | ६६१ |
| ल्युट् च | ३।३।११५ | पू. | २८४ | पू. | ६६३ |
| ल्लादिभ्यः | ८।२।४४ | उ. | ५०७ | उ. | ६४६ |
| वच उम् | ७।४।२० | उ. | ४४५ | उ. | ० |
| वचिस्वपियज्ञादी० | ६।१।१५ | उ. | १४६ | उ. | ४३० |
| वचोऽशब्दसंज्ञायाम् | ७।३।६७ | उ. | ४२८ | उ. | ० |
| वञ्चिलुञ्च्युतश्च | १।२।२४ | पू. | ३७ | पू. | ११५ |
| वञ्चेर्गती | ७।३।६३ | उ. | ४२७ | उ. | ८२५ |
| वतपडाच्च | ४।१।१०८ | पू. | ३६३ | उ. | १०१ |
| वतोऽरिश्वा | ५।१।२३ | उ. | ८ | उ. | ३४१ |
| वतोऽरिष्क | ५।२।५३ | उ. | ५२ | उ. | ३०४ |
| वत्सरान्ताच्छ० | ५।१।१६१ | उ. | २४ | उ. | २६१ |
| वत्सशालाभिजिद० | ४।३।३६ | पू. | ४२६ | उ. | १६६ |
| वत्सामाभ्यां कामवने | ५।२।६८ | उ. | ६३ | उ. | ३२० |
| वत्सोत्ताश्वर्षभेभ्यश्च | ५।३।६१ | उ. | ६४ | उ. | ३६४ |
| वटः सुपि व्यप् च | ३।१।१०६ | पू. | २०८ | पू. | ५६४ |
| वदवजहलन्तस्याचः | ७।२।३ | उ. | ३६८ | उ. | ७४६ |
| वनं समासे | ६।१।१७८ | उ. | २५६ | उ. | ० |
| वनगिर्याः संज्ञायाम् | ६।३।११७ | उ. | २६० | उ. | ६२२ |
| वनं पुरगामिशका० | ८।४।४ | उ. | ५५८ | उ. | १०१८ |
| वने र च | ४।१।७ | पू. | ३३१ | उ. | २१ |
| वन्दिते भातुः | ५।४।१५७ | उ. | १३६ | उ. | ४५२ |
| वभोर्वा | ८।४।२३ | उ. | ५६४ | उ. | १०३६ |
| वयसि च | ३।२।१० | पू. | २२१ | पू. | ६१४ |
| वयसि दन्तस्य दत् | ५।४।१४१ | उ. | १३६ | उ. | ४१० |
| वयसि पूरणात् | ५।२।१३० | उ. | ७१ | उ. | ३२६ |
| वयसि प्रथमे | ४।१।२० | पू. | ३३५ | उ. | ३३ |
| वयस्यासुमूर्ध्ना० | ४।४।१२७ | पू. | ४८६ | उ. | २२३ |
| वर्णादिभ्यश्च | ४।२।८२ | पू. | ४०६ | उ. | ० |
| वर्गान्ताच्च | ४।३।६३ | पू. | ४३५ | उ. | ० |

सूचीपत्रम् ।

८५

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पटमञ्जरी पृ. |
|------------------------|------------|---------------|--------------------|
| वर्षादयश्च | ६।२।१३१ | उ. २४१ | उ. ० |
| वर्षास्के (वस्करः) | ६।१।१४८ | उ. १८४ | उ. ४६० |
| वर्षादृकादिभ्यः व्यञ्ज | ५।१।१२३ | उ. ३३ | उ. २७६ |
| वर्षादनुदांसानोप० | ४।१।३६ | पू. ३४० | उ. ४२ |
| वर्षाद्वृहन्चारिणि | ५।२।१३४ | उ. ७२ | उ. ३३० |
| वर्षा चानित्ये | ५।४।३१ | उ. १०६ | उ. ३८२ |
| वर्षा वर्षान | २।१।६६ | पू. १२३ | पू. ३८४ |
| वर्षा वर्षाष्वनेते | ६।२।३ | उ. २०६ | उ. ५३० |
| वर्षा वृक् | ४।२।१०३ | पू. ४१० | उ. १५२ |
| वर्तमानसापोष्ये च० | ३।३।१३१ | पू. २८७ | पू. ६६६ |
| वर्तमाने लट् | ३।२।१२३ | पू. २४५ | पू. ६६० पू. ६४४ |
| वर्षप्रमाणाऊलोपश्चा० | ३।४।३२ | पू. ३१० | पू. ७२६ |
| वर्षस्याभिवर्षति | ७।३।१६ | उ. ४१२ | उ. ८०८ |
| वर्षाभ्यष्टक् | ४।३।१८ | पू. ४२५ | उ. १६५ |
| वर्षाभ्यश्च | ६।४।८४ | उ. ३१६ | उ. ६७१ |
| वर्षाल्लुक् च | ५।१।८८ | उ. २४ | उ. ० |
| वले | ६।३।११८ | उ. २६० | उ. ६२२ |
| वशंगतः | ४।४।८६ | पू. ४७८ | उ. २१५ |
| वश्चाम्यान्यतरस्यां० | ६।१।३६ | उ. १५४ | उ. ४३८ |
| वसतिक्षुधोरिट् | ७।२।५२ | उ. ३८८ | उ. ७७६ |
| वसन्ताच्च | ४।३।२० | पू. ४२६ | उ. ० |
| वसन्तादिभ्यष्टक् | ४।२।६३ | पू. ३६८ | उ. १४२ |
| वसुभ्रंसुध्वंस्यनहु० | ८।२।७२ | उ. ५१४ | उ. ६५६ |
| वसोः समूहे च | ४।४।१४० | पू. ४८८ | उ. ३२५ |
| वसोः संप्रसारणम् | ६।४।१३१ | उ. ३२८ | उ. ६८६ |
| वस्तेडञ् | ५।३।१०१ | उ. ६६ | उ. ० |
| वसुक्रयविक्रयाट्टञ् | ४।४।१३ | पू. ४६४ | उ. २०२ |
| वसुद्व्याभ्यां ठन्कनी | ५।१।५१ | उ. १५ | उ. २४६ |
| वस्त्रेकाजाद्धसाम् | ७।२।६७ | उ. ३६३ | उ. ७८१ |
| वहश्च | ३।२।६४ | पू. २३३ | पू. १ |
| बहाभेलिहः | ३।२।३२ | पू. २२५ | पू. ० |
| वर्षा करणम् | ३।१।१०२ | पू. २०७ | पू. ५६४ |
| वाकिनादीनां कुक् च | ४।१।१५८ | पू. ३७५ | उ. ११४ |
| वा क्यपः | १।३।६० | पू. ७६ | पू. २५८ |
| वाक्यस्य टैः सुत उ० | ८।२।८२ | उ. ५१७ | उ. ६५६ |
| वाक्यादेरामन्त्रित० | ८।१।८ | उ. ४६५ | उ. ८८७ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-----------------------|------------|---------------|-----------------|
| वाक्रोशदैन्ययोः | ६।४।६९ | उ. ३९० | उ. ६६२ |
| *वा गमः | ९।२।९३ | पृ. ३४ | पृ. ९५६ |
| वा घोषमिश्रशब्देषु | ६।३।५६ | उ. २७६ | उ. ६०४ |
| वाचंयमपूरंदरी च | ६।३।६६ | उ. २७६ | उ. ६९० |
| वा चित्तविरागे | ६।४।६९ | उ. ३९८ | उ. ६७३ |
| वाचियमोघते | ३।२।४० | पृ. २२७ | पृ. ६९६ |
| वाचो गिमनिः | ५।२।९२४ | उ. ७० | उ. ३२८ |
| वाचोव्याहृतार्थायाम् | ५।४।३५ | उ. ९०६ | उ. ३८३ |
| वा कन्दसि | ३।४।८८ | पृ. ३२३ | पृ. ७४६ |
| वा कन्दसि | ६।९।९०६ | उ. ९७३ | उ. ४७८ |
| वा जाते | ६।२।९७९ | उ. २५४ | उ. ५७० |
| वा जूभमुत्रसाम् | ६।४।९२४ | उ. ३२६ | उ. ० |
| वातातीसारभ्यां० | ५।२।९२६ | उ. ७९ | उ. ३२६ |
| वा दान्तशान्तपूर्णा० | ७।२।२७ | उ. ३८० | उ. ७२५ |
| वा द्रुहसुहृद्वाह्या० | ८।२।३३ | उ. ५०४ | उ. ६४५ |
| वा नपुंसकस्य | ७।९।७६ | उ. ३६२ | उ. ० |
| वा निंसनिन्ननिन्दास् | ८।४।३३ | उ. ५६६ | उ. ९०२६ |
| वान्तो वि प्रत्यये | ६।९।७६ | उ. ९६५ | उ. ४५७ |
| वान्यस्मिन्सपिण्डे० | ४।५।९६५ | पृ. ३७७ | उ. ९१८ |
| वान्यस्य संयोगादेः | ६।४।६८ | उ. ३९३ | उ. ६६६ |
| वा पदान्तस्य | ८।४।५६ | उ. ५७३ | उ. ९०३४ |
| वा बहूनां जातिपरि० | ५।३।६३ | उ. ६४ | उ. ३६५ |
| वा भावकः षयाः | ८।४।९० | उ. ५६० | उ. ९०२९ |
| वा भुवनम् | ६।२।२० | उ. २९९ | उ. ५३३ |
| वा भागम्नाशभसु० | ३।९।७० | पृ. २०० | पृ. ५६७ |
| वामदेवाद् इहृष्टी | ४।२।६ | पृ. ३८३ | उ. ९२७ |
| वामि | ९।४।५ | पृ. ७६ | पृ. २६७ |
| वाग्शसोः | ६।४।८० | उ. ३९५ | उ. ० |
| वामौ | २।४।५७ | पृ. ९७४ | पृ. ० |
| वाय्वतुपिचुयसो यत् | ४।२।३९ | पृ. ३८८ | उ. ९३२ |
| वारिणाथानामभिषतः | ९।४।२७ | पृ. ८४ | पृ. २८६ |
| वा लिटि | २।४।५५ | पृ. ९७३ | पृ. ० |
| वा ल्यपि | ६।४।३८ | उ. ३०५ | उ. ० |
| वावसाने | ८।४।५६ | उ. ५७२ | उ. ९०३३ |
| वा शरि | ८।३।३६ | उ. ५३५ | उ. ६८५ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | षट्मञ्जरी |
|--------------------------|--------------|---------|-----------|
| | | पृ. | पृ. |
| वा शोकष्यङ्गरोगेषु | ६ । ३ । ५९ | उ. २७४ | उ. ६०३ |
| वा शूर्पर्वस्य निगमे | ६ । ४ । ६ | उ. २६६ | उ. ६३० |
| वा संज्ञायाम् | ५ । ४ । ९३३ | उ. ९३४ | उ. ० |
| वासरूपोऽस्त्रियम् | ३ । ९ । ६४ | पु. २०५ | पु. ५६७ |
| वासुदेवाङ्गुनाभ्यां वुन् | ४ । ३ । ६८ | पु. ४४३ | उ. ९८२ |
| वा सुप्यापिशले | ६ । ९ । ६२ | उ. ९७० | उ. ४७० |
| वाह ऊट् | ६ । ४ । ९३२ | उ. ३२८ | उ. ६८६ |
| वाहः | ४ । ९ । ६९ | पु. ३४७ | उ. ५६ |
| वा ह चच्छन्दसि | ५ । ३ । ९३ | उ. ७६ | उ. ० |
| वाहनमाहितात् | ८ । ४ । ८ | उ. ५५६ | उ. ९०२९ |
| वाहिताग्न्यादिषु | २ । २ । ३७ | पु. ९३७ | पु. ० |
| वाहीकपामेभ्यश्च | ४ । २ । ९९७ | पु. ४९४ | उ. ९५५ |
| विंशतिकात्वः | ५ । ९ । ३२ | उ. ९० | उ. २४५ |
| विंशतित्रिंशत्भ्यां० | ३ । ९ । २४ | उ. ८ | उ. ३४२ |
| विंशत्यादिभ्यस्तमड० | ५ । २ । ५६ | उ. ५२ | उ. ३०५ |
| विकर्णकुशीतका० | ४ । ९ । ९२४ | पु. ३६७ | उ. ० |
| विकर्णशुद्धच्छग० | ४ । ९ । ९९७ | पु. ३६६ | उ. ९०४ |
| विकुर्णसिपरिभ्यः० | ८ । ३ । ६६ | उ. ५५९ | उ. ९००६ |
| विचार्यमाणानाम् | ८ । २ । ६७ | उ. ५२९ | उ. ६६७ |
| विज इट् | ९ । २ । २ | पु. ३९ | पु. ९५० |
| विजुपे छन्दसि | ३ । २ । ७३ | पु. २३४ | पु. ६२७ |
| विज्वनोरनुनासिक० | ६ । ४ । ४९ | उ. ३०६ | उ. ६५४ |
| वित्तौ भोगप्रत्यययोः | ८ । २ । ५८ | उ. ४९० | उ. ६५३ |
| विदाकुर्वन्वित्यन्य० | ३ । ९ । ४९ | पु. ९६३ | पु. ५५४ |
| विदिभिदिच्छिदेः | ३ । २ । ९६२ | पु. २५३ | पु. ६५७ |
| विदूराज्यः | ४ । ३ । ८४ | पु. ४४० | उ. ९८० |
| विदेः शतुर्वसुः | ७ । ९ । ३६ | उ. ३४६ | उ. ७९५ |
| विदो लटो वा | ३ । ४ । ८३ | पु. ३२२ | पु. ७४७ |
| विद्ययोनिसंखन्धे० | ४ । ३ । ७७ | पु. ४३८ | उ. ९७६ |
| विधिनिमन्त्रणा० | ३ । ३ । ९६९ | पु. २६७ | पु. ७०६ |
| विध्यत्यधनुषा | ४ । ४ । ८३ | पु. ४७७ | उ. २९४ |
| विध्यरूपोऽस्तुट् | ३ । २ । ३५ | पु. २२६ | पु. ६९८ |
| विनञ्भ्यां नानाञ्जो० | ५ । २ । २७ | उ. ४४ | उ. २८६ |
| विनबादिभ्यष्टक् | ५ । ४ । ३४ | उ. ९०६ | उ. ३८३ |
| विन्दुरिच्छुः | ३ । २ । ९६६ | पु. २५४ | पु. ६५८ |
| विन्मतालुक् | ५ । ३ । ६५ | उ. ८७ | उ. ३५३ |
| विपरिभ्यां जेः | ९ । ३ । ९६ | पु. ४७ | पु. ३२६ |

| | काशिका | पदमञ्जरी | |
|-------------------------|---------|----------|---------|
| श्र. पा. सू. | पृ. | पृ. | |
| विपूषविनीयजि० | ३।१।११७ | पृ. २१० | पृ. ५१८ |
| विप्रतिषिद्धं चानधि० | २।४।१३ | पृ. १६२ | पृ. ४८८ |
| विप्रतिषेधे परं कार्यम् | १।४।२ | पृ. ७८ | पृ. २६२ |
| विप्रसंभ्या उवसंज्ञा० | ३।२।१८० | पृ. २५७ | पृ. ६६० |
| विभक्तिप्रच | १।४।१०४ | पृ. १०२ | पृ. ३३६ |
| विभाषज्ञांशकन्दसि | ६।४।१६२ | उ. ३३६ | उ. ० |
| विभाषा | २।१।११ | पृ. १०८ | पृ. ० |
| विभाषा कथमि० | ३।३।१४३ | पृ. २१२ | पृ. ७०३ |
| विभाषा कटाकक्षाः | ३।३।५ | पृ. २६० | पृ. ६६५ |
| विभाषा कर्मकात् | १।३।८५ | पृ. ७५ | पृ. ० |
| विभाषा कार्याणस० | ३।१।२६ | उ. १ | उ. २४४ |
| विभाषा कुरुयुग० | ४।२।१३० | पृ. ४१८ | उ. १५८ |
| विभाषा कृजि | १।४।७२ | पृ. २६ | पृ. ३२३ |
| विभाषा कृजि | १।४।१८ | पृ. १०१ | पृ. ३३३ |
| विभाषा कृद्वेषेः | ३।१।१२० | पृ. २११ | पृ. ५११ |
| विभाषाख्यानपरि० | ३।३।११० | पृ. २८२ | पृ. ६११ |
| विभाषा गमहनयि० | ७।२।६८ | उ. ३१३ | उ. ७८२ |
| विभाषा गुणो ऽस्त्रि० | २।३।२५ | पृ. १४४ | पृ. ४३३ |
| विभाषा पद्यः | ३।१।१४३ | पृ. २१७ | पृ. ६०७ |
| विभाषाप्रेथमपूर्वेषु | ३।४।२४ | पृ. ३०८ | पृ. ७२४ |
| विभाषा घ्राधेट्या० | ३।४।७८ | पृ. १८१ | पृ. ४१४ |
| विभाषा ऽडि कृयुवोः | ३।३।५० | पृ. २७१ | पृ. ० |
| विभाषा द्विषयोः | ६।४।१३६ | उ. ३२१ | उ. ६८८ |
| विभाषा चत्वारिंश० | ६।३।४१ | उ. २७४ | उ. ६०३ |
| विभाषा द्विषणमुलोः | ७।१।६१ | उ. ३५८ | उ. ७२६ |
| विभाषा चैः | ७।३।५८ | उ. ४५६ | उ. ० |
| विभाषा कृन्दसि | १।२।३६ | पृ. ४० | पृ. १७४ |
| विभाषा कृन्दसि | ६।२।१६४ | उ. २५२ | उ. ५६१ |
| विभाषा कृन्दसि | ७।४।४४ | उ. ४४१ | उ. ६५१ |
| विभाषा जसि | १।१।३२ | पृ. १५ | पृ. ८१ |
| विभाषाञ्चैरदिकृन्दि० | ५।४।८ | उ. १०३ | उ. ३७४ |
| विभाषा तिलमाषो० | ५।२।४ | पृ. ३८ | उ. ३६३ |
| विभाषा तृतीया० | ७।१।१७० | उ. ३६६ | उ. ७४४ |
| विभाषा तृचचती० | ६।२।१६१ | उ. २५५ | उ. ० |
| विभाषा टिक्रमासे० | १।१।२८ | पृ. १४ | पृ. ७१ |
| विभाषा द्वितीयातृ० | ७।३।११५ | उ. ४३१ | उ. ८४३ |
| विभाषा धाता सं० | ३।३।१५५ | पृ. २१५ | पृ. ७०७ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पद्मञ्जरी | |
|-----------------------|------------|---------|---------|-----------|-----|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| विभाषा धेट्प्रथोः | ३।१।४६ | पृ. १६५ | पृ. ५६० | | |
| विभाषा ऽध्यक्षे० | ६।२।६७ | उ. २२७ | उ. ५४८ | | |
| विभाषा परावराभ्याम् | ५।३।२६ | उ. ७६ | उ. ० | | |
| विभाषा ऽऽपः | ६।४।५७ | उ. ३०६ | उ. ६६२ | | |
| विभाषा परिः | ६।१।४४ | उ. १५५ | उ. ० | | |
| विभाषा पुरुषे | ६।३।१०६ | उ. २८७ | उ. ६१८ | | |
| विभाषा पूर्वोच्चापरा० | ४।३।२४ | पृ. ४२७ | उ. १६७ | | |
| विभाषा पृष्टप्रतिवच० | ८।२।६३ | उ. ५२० | उ. ६६६ | | |
| विभाषा फाल्गुनीथ० | ४।२।२३ | पृ. ३८६ | उ. ० | | |
| विभाषा वहेर्धाविप्र० | ५।४।२० | उ. १०६ | उ. ३८० | | |
| विभाषा भावाटिक० | ७।२।१७ | उ. ३७७ | उ. ७६१ | | |
| विभाषा भाषायाम् | ६।१।१८१ | उ. १६४ | उ. ० | | |
| विभाषाभ्यत्रपूर्वस्य | ६।१।३६ | उ. १५० | उ. ४३३ | | |
| विभाषा मनुष्ये | ४।२।१४४ | पृ. ४२१ | उ. १६० | | |
| विभाषा रोगात्पयोः | ४।३।१३ | पृ. ४२५ | उ. ० | | |
| विभाषा लीयतेः | ६।१।५१ | उ. १५७ | उ. ४४२ | | |
| विभाषा लुङ्लडोः | २।४।५० | पृ. १७२ | पृ. ० | | |
| विभाषा वरस्य | ५।३।४१ | उ. ८२ | उ. ३४१ | | |
| विभाषा वर्षत्तरशरव० | ६।३।१६ | उ. २६४ | उ. ० | | |
| विभाषा विप्रलापे | १।३।५० | पृ. ६६ | पृ. ३४० | | |
| विभाषा विवधात् | ४।४।७७ | पृ. ४६४ | उ. २०२ | | |
| विभाषा वृत्तमगतु० | २।४।१२ | पृ. १६२ | पृ. ४६६ | | |
| विभाषा वे एवन्था० | ६।१।२१५ | उ. २०२ | उ. ५२४ | | |
| विभाषा वेष्टिचैष्टयोः | ७।४।६६ | उ. ४६३ | उ. ० | | |
| विभाषाप्रयावारो० | ५।४।१४४ | उ. १३७ | उ. ४१० | | |
| विभाषा ऋवेः | ६।१।३० | उ. १५१ | उ. ४३५ | | |
| विभाषां स पूर्वस्य | ४।१।३४ | पृ. ३३६ | उ. ४० | | |
| विभाषा सामीप्ये | २।४।१६ | पृ. १६३ | पृ. ४६६ | | |
| विभीषा साकाङ्क्षे | ३।२।११४ | पृ. २४३ | पृ. ६५७ | | |
| विभाषा सात्तिका० | ५।४।५२ | उ. ११४ | उ. ३६० | | |
| विभाषा सुपो बहुष्यु० | ५।३।६८ | उ. ८८ | उ. ३५६ | | |
| विभाषा सञ्जिदृशोः | ७।२।६५ | उ. ३६२ | उ. ७८१ | | |
| विभाषा संनासुरा० | २।४।२५ | पृ. १६५ | पृ. ४७३ | | |
| विभाषा स्वस्रपत्योः | ६।३।२४ | उ. २६६ | उ. ० | | |
| विभाषा ह्रिविरपूषादि० | ५।१।४ | उ. २ | उ. ३३० | | |
| विभाषितं विशेषव० | ८।१।७४ | उ. ४८८ | उ. ६१६ | | |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-------------------------|--------------|---------|----------|-----|
| | श्र. पा. सू. | पृ. | पृ. | पृ. |
| विभाषितं सोपसर्गं० | ८।१।५३ | उ. ४८९ | उ. ० | |
| विभाषेटः | ८।३।७६ | उ. ५४७ | उ. १००४ | |
| विभाषोत्सुच्छे | ६।२।१२६ | उ. २६० | उ. ५०६ | |
| विभाषोदरे | ६।३।८८ | उ. २८३ | उ. ६९५ | |
| विभाषोपपदेन प्रती० | ९।३।७७ | पृ. ७३ | पृ. २५६ | |
| विभाषोपयमने | ९।२।१६ | पृ. ३५ | पृ. ० | |
| विभाषोपसर्गं | २।३।५६ | पृ. १५४ | पृ. ४५९ | |
| विभाषोर्णाः | ९।२।३ | पृ. ३२ | पृ. १५० | |
| विभाषोशीनरेषु | ४।२।१९८ | पृ. ४९४ | उ. ० | |
| विभाषोषधिवनस्य० | ८।४।६ | उ. ५५६ | उ. १०९६ | |
| विमुक्तादिभ्योश्च | ५।२।६९ | उ. ५४ | उ. ० | |
| विरामोवसानम् | ९।४।१९० | पृ. १०३ | पृ. ३४२ | |
| विशास्त्रयोश्च | ९।२।६२ | पृ. ४६ | पृ. १२६ | |
| विशास्त्राणाढाद० | ५।१।१९० | उ. २६ | उ. २६५ | |
| विशिष्यतिर्षद्विस्क | ३।४।५६ | पृ. ३९४ | पृ. ७३४ | |
| विशिष्टलिङ्गो नदीदे० | २।४।७ | पृ. १६० | पृ. ४६३ | |
| विशेष्यां विशेष्ये० | २।१।५७ | पृ. १२० | पृ. ३७८ | |
| विशेष्यानां चाजातेः | ९।२।५२ | पृ. ४६ | पृ. १२२ | |
| विश्वस्य वसुराटोः | ६।३।१२८ | उ. २६२ | उ. ६२३ | |
| विषयो देशे | ४।२।५२ | पृ. ३६४ | उ. १३६ | |
| विक्रियः शकुनि० | ६।१।१५० | उ. १८४ | उ. ४६८ | |
| विष्णवेवयोश्च टेर० | ६।३।६२ | उ. २८४ | उ. ६९६ | |
| विसर्जनीयस्य सः | ८।३।३४ | उ. ५३४ | उ. ६८३ | |
| विसारिणो मत्स्ये | ५।४।१६ | उ. १०५ | उ. ३७७ | |
| विस्पष्टादीनि मुण्यव० | ६।२।२४ | उ. २९३ | उ. ५३३ | |
| वीरवीर्यां च | ६।२।१२० | उ. २३६ | उ. ५५८ | |
| वृज्जयकठजिलसे० | ४।२।८० | पृ. ४०२ | उ. १४७ | |
| वृकज्येष्ठाभ्यां ति० | ५।४।४९ | उ. ११९ | उ. ० | |
| वृकाट्टेययण् | ५।३।११५ | उ. ६६ | उ. ० | |
| वृक्षासनयोर्द्विष्टरः | ८।३।६३ | उ. ५५० | उ. १००८ | |
| वृक्षोत्तेराच्छादने | ३।३।५४ | पृ. २७९ | पृ. ६७६ | |
| वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः | ९।३।३८ | पृ. ६३ | पृ. २३७ | |
| वृद्धस्य च | ५।३।६० | उ. ८७ | उ. ३५९ | |
| वृद्धस्य च पू० | ४।१।१६६ | पृ. ३७७ | उ. ११६ | |
| वृद्धाच्छः | ४।२।११४ | पृ. ४९३ | उ. १५४ | |
| वृद्धाट्टकौ वीरेषु | ४।१।१४८ | पृ. ३७९ | उ. ११० | |
| वृद्धात्प्राचाम् | ४।२।१२० | पृ. ४९५ | उ. १५६ | |

सूचीपत्रम् ।

८९

| | अ. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-------------------------|------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| युद्धादभेकान्तस्यो० | ४।२।१४९ | पृ. | ४२९ | उ. | १६० |
| युद्धनिमित्तस्य च० | ६।३।३६ | उ. | २७० | उ. | ५६६ |
| युद्धरात्रि | ९।९।१ | पृ. | ६ | पृ. | ३६ |
| युद्धरश्मि | ६।९।८८ | उ. | ९६८ | उ. | ० |
| युद्धस्यैवाद्यामादि० | ९।९।७३ | पृ. | ३० | पृ. | ९४३ |
| युद्धेत्कासनाजाटा० | ४।९।१७९ | पृ. | ३७८ | उ. | १२९ |
| युद्धो यूना तल्लक्षणा० | ९।२।६५ | पृ. | ५० | पृ. | २०६ |
| युध्यः स्यसनाः | ९।३।६२ | पृ. | ७७ | पृ. | २५६ |
| युन्दारकनागकुञ्ज० | २।९।६२ | पृ. | ९२२ | पृ. | ३८२ |
| युपाकष्यग्निकुम्भि० | ४।९।३७ | पृ. | ३४० | उ. | ४२ |
| युषादीनां च | ६।९।२०३ | उ. | ९६६ | उ. | ५२२ |
| युतो वा | ७।२।३८ | उ. | ३८४ | उ. | ७७३ |
| यैः पादविहरणो | ९।३।४९ | पृ. | ६४ | पृ. | २३७ |
| यैः शब्दकर्मणः | ९।३।३४ | पृ. | ६२ | पृ. | २३५ |
| यैः शालच्छ्रुत्तौ | ५।३।२८ | उ. | ४४ | उ. | २६० |
| यैः स्कन्देरनिष्टायाम् | ८।३।७३ | उ. | ५४६ | उ. | ० |
| यैः स्कन्धातोर्नित्यम् | ८।३।७७ | उ. | ५४७ | उ. | १००३ |
| यैः | ६।९।४० | उ. | ९५४ | उ. | ० |
| यैः ययिः | २।४।४९ | पृ. | ९७० | पृ. | ० |
| यैतनादिभ्यो लीयति | ४।४।१२ | पृ. | ४६३ | उ. | २०२ |
| यैतेर्विभाषा | ७।९।७ | उ. | ३४२ | उ. | ७०३ |
| यैरपत्तस्य | ६।९।६७ | उ. | ९६२ | उ. | ४४६ |
| यैशन्तश्चिमवत्थ्या० | ४।४।१९२ | पृ. | ४८३ | उ. | २२० |
| यैशोयशश्रादेर्भगा० | ४।४।१३९ | पृ. | ४८७ | उ. | ० |
| यैश्च स्यनो भोजते | ८।३।६६ | उ. | ५४५ | उ. | १००२ |
| यैतो न्यत्र | ३।४।६६ | पृ. | ३२४ | पृ. | ७४६ |
| यैपाकरणाख्यायां च | ६।३।७ | उ. | २६२ | उ. | ५८२ |
| यैषायेति च च्छन्दसि | ८।९।६४ | उ. | ४८४ | उ. | ६९२ |
| यैतापोः | ३।३।१४९ | पृ. | २६९ | पृ. | ७०३ |
| यैतो गुणवचनात् | ४।९।४४ | पृ. | ३४२ | उ. | ४६ |
| यैपमर्जनस्य | ६।३।८२ | उ. | २८२ | उ. | ६४४ |
| यै यिभूने जुक् | ७।३।३८ | उ. | ४९६ | उ. | ८९५ |
| यैकपलसकत्य० | ३।३।१४३ | पृ. | २४६ | पृ. | ० |
| यै क्षुभयः | ३।३।२५ | पृ. | २६५ | पृ. | ० |
| यैत्तद्याधां समुच्चारणे | ९।३।४८ | पृ. | ६५ | पृ. | २३६ |
| यैज्जनैरुपसिते | ४।४।२६ | पृ. | ४६६ | उ. | २०४ |
| यैत्ययो बहुलम् | ३।९।८५ | पृ. | २०२ | पृ. | ५७० |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | | |
|------------------------|------------|-----|----------|-----|-----|
| | अ. पा. सू. | पृ. | पृ. | पृ. | |
| व्ययो लिटि | ७।४।६८ | उ. | ४५६ | उ. | ८६७ |
| व्यधजघोरनुपसर्गे | ३।३।६९ | पृ. | २७३ | पृ. | ६८० |
| व्यन्सपद्ये | ४।९।९४५ | पृ. | ३७९ | उ. | ९०८ |
| व्यवहित्ताश्च | ९।४।८२ | पृ. | ६७ | पृ. | ३२७ |
| व्यवहृपणोः समर्थयोः | २।३।५७ | पृ. | ९५३ | पृ. | ४५९ |
| व्यवापिनोऽन्तरम् | ६।२।९६६ | उ. | २५३ | उ. | ५७७ |
| व्यश्च | ६।९।४३ | उ. | ९५५ | उ. | ० |
| व्याङ् परिभ्योरसः | ९।३।८३ | पृ. | ७४ | पृ. | ० |
| व्याहृरति सगः | ४।३।५९ | पृ. | ४३२ | उ. | ९७२ |
| व्युपयोः शोतेः पर्याये | ३।३।३६ | पृ. | २६८ | पृ. | ६७५ |
| व्युष्टादिभ्यो ऽण् | ५।९।६७ | उ. | २६ | उ. | २६३ |
| व्योर्लघूप्रयत्नतरः० | ८।३।९८ | उ. | ५३९ | उ. | ६७६ |
| वज्रयज्ञोर्भावे क्वप् | ३।३।६८ | पृ. | २७६ | पृ. | ६८६ |
| वते | ३।२।८० | पृ. | २३६ | पृ. | ६८८ |
| वश्चभश्चसङ्गमञ्ज० | ८।२।३६ | उ. | ५०४ | उ. | ६४६ |
| वातञ्फञोरस्त्रियाम् | ५।३।९९३ | उ. | ६६ | उ. | ३६८ |
| वातेन जीवति | ५।२।२९ | उ. | ४२ | उ. | २६८ |
| व्रीहिशाल्योर्दिक् | ५।२।२ | उ. | ३८ | उ. | २६३ |
| वीहेः पुरोडाशे | ४।३।४८ | पृ. | ४५६ | उ. | ० |
| वीत्यादिभ्यश्च | ५।८।९९६ | उ. | ६८ | उ. | ३२६ |
| शकटादण् | ४।४।८० | पृ. | ४७७ | उ. | २५४ |
| शकध्रुपज्ञाग्लाघट० | ३।४।६५ | पृ. | ३९७ | पृ. | ७३८ |
| शकिगमुल्कसूना | ३।४।९२ | पृ. | ३०५ | पृ. | ० |
| शकि लिङ् च | ३।३।५७२ | पृ. | ३०० | पृ. | ७१३ |
| शक्तिमहोश्च | ३।९।६६ | पृ. | २०६ | पृ. | ५६७ |
| शक्तियद्योरीकक् | ४।४।५६ | पृ. | ४७२ | उ. | २०६ |
| शक्ता, हस्तिकपाटयोः | ३।२।५४ | पृ. | २२६ | पृ. | ६३९ |
| शण्डिकादिभ्यो ङ्यः | ४।३।६२ | पृ. | ४४२ | उ. | ९८३ |
| शतमानविंशतिकस० | ५।९।२७ | उ. | ६ | उ. | २४२ |
| शतसहस्रान्तञ्चि० | ५।२।९९६ | उ. | ६६ | उ. | ३३७ |
| शताञ्च ठन्यताद्यशते | ५।९।२९ | उ. | ७ | उ. | २६६ |
| शतुरनुमो नद्यजादी | ६।९।९७३ | उ. | ९६२ | उ. | ५९२ |
| शटन्तविंशतेश्च | ५।२।४६ | उ. | ५७ | उ. | ३०० |
| शदेः शितः | ९।३।६० | पृ. | ६८ | पृ. | २६७ |
| शदेरमतौ तः | ७।३।४२ | उ. | ४२० | उ. | ० |
| शप्प्रयनेर्नित्यम् | ७।९।८९ | उ. | ३६३ | उ. | ७३५ |
| शब्दददुर्ं करोति | ४।४।३४ | पृ. | ४६७ | उ. | २०६ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| शब्दचरकलहाभ० | ३।१।१७ | पृ. १८७ | पृ. ० |
| शमामष्टानां दीर्घः | ७।३।७४ | उ. ४३० | उ. ८२८ |
| शमिता यज्ञे | ६।४।५४ | उ. ३०६ | उ. ६६९ |
| शमित्यष्टाभ्यो घिनुष् | ३।२।१४९ | पृ. २४६ | पृ. ६५२ |
| शमिधातोः संज्ञायाम् | ३।२।१४ | पृ. २२२ | पृ. ६९४ |
| शम्याष्टलज् | ४।३।१४२ | पृ. ४५५ | उ. १६३ |
| शयवासवासिष्यका० | ६।३।१८ | उ. २६५ | उ. ५८५ |
| शरद्वच्छुनकदर्भा० | ४।१।१०२ | पृ. ३६० | उ. ६८ |
| शरादीनां च | ६।३।१२० | उ. २६९ | उ. ० |
| शरीरावयवाच्च | ४।३।५५ | पृ. ४३३ | उ. १७३ |
| शरीरावयवाद्यत् | ५।१।६ | उ. २ | उ. २३० |
| शरो ऽचि | ८।४।४६ | उ. ५७९ | उ. १०३२ |
| शर्करादिभ्यो ऽष् | ५।३।१०७ | उ. ६८ | उ. ० |
| शर्कराया वा | ४।२।८३ | पृ. ४०६ | उ. १४७ |
| शर्परे विसर्जनीयः | ८।३।३५ | उ. ५३४ | उ. ६८५ |
| शर्पूर्वाः खयः | ७।४।६९ | उ. ४५४ | उ. ८६४ |
| शल ह्रस्वधाटनिटः० | ३।१।६५ | पृ. १६५ | पृ. ५५८ |
| शलालुनो ऽन्यतर० | ४।४।५४ | पृ. ४७९ | उ. २०६ |
| शशक्को ऽटि | ८।४।६३ | उ. ५७३ | उ. १०३४ |
| शसो न | ७।१।२६ | उ. ३४८ | उ. ७९२ |
| शकलाद्वा | ४।३।१२८ | पृ. ४५२ | उ. १८६ |
| शाखादिभ्यो यत् | ५।३।१०३ | उ. ६७ | उ. ० |
| शाच्छासाद्वाव्यावे० | ७।३।३५ | उ. ४१६ | उ. ८९५ |
| शाच्छोरन्यतरस्याम् | ७।४।४९ | उ. ४४६ | उ. ८५८ |
| शाशाद्वा | ५।१।३५ | उ. ९९ | उ. २४५ |
| शात् | ८।४।४४ | उ. ५७० | उ. १०३९ |
| शाशदे ऽनार्तवे | ६।२।६ | उ. २०८ | उ. ५३९ |
| शाङ्गवाट्यो ङीन् | ४।१।७३ | पृ. ३५० | उ. ६९ |
| शालीङ्गीपीने अ० | ५।२।२० | उ. ४२ | उ. २८८ |
| शास इटङ्गलोः | ६।४।३४ | उ. ३०४ | उ. ६५९ |
| शामिथसिंघसीनां० | ८।३।६० | उ. ५४२ | उ. ६६८ |
| शा ही | ६।४।३५ | उ. ३०४ | उ. ६५२ |
| शाखाया वलच् | ४।२।८६ | पृ. ४०७ | उ. १४८ |
| शितुक् | ८।३।३९ | उ. ५३३ | उ. ६८२ |
| शितेर्नित्याबहुञ्च० | ६।२।१३८ | उ. २४३ | उ. ५६९ |
| शिलाया ङः | ५।३।१०२ | उ. ६७ | उ. ० |
| शिल्पम् | ४।४।५५ | पृ. ४७२ | उ. २०६ |

| | क्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|--------------------------|--------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| शिल्पिन चाकजः | ६।२।७६ | उ. २२६ | उ. ५५० |
| शिल्पिन ध्युन् | ३।१।१४५ | पृ. २१७ | पृ. ६०७ |
| शिवशमरिष्टस्य करे | ४।४।१४३ | पृ. ४८६ | उ. २२६ |
| शिवोद्विभ्यो ऽथ | ४।१।११२ | पृ. ३६४ | उ. १०१ |
| शिशुकन्दपमसभ० | ४।३।८८ | पृ. ४४१ | उ. १८१ |
| शि सर्वनामस्थानम् | १।१।४२ | पृ. १८ | पृ. ८८ |
| शिल्पः सार्वधातुके० | ७।४।२१ | उ. ४४५ | उ. ८५४ |
| शोका रुट् | ७।१।६ | उ. ३४२ | उ. ७०२ |
| शोतोष्णाभ्यां कारिणि | ५।२।७२ | उ. ५६ | उ. ३०६ |
| शोर्विप्रकृन्दिनि | ६।१।६० | उ. १५६ | उ. ४४४ |
| शोर्विच्छेदाद्यच्च | ५।१।६५ | उ. १६ | उ. २५६ |
| शोलम् | ४।४।६१ | पृ. ४७३ | उ. २१० |
| शुकाद्धन् | ४।२।२६ | पृ. ३८७ | उ. ० |
| शुगिडकादिभ्यो ऽण् | ४।३।७६ | पृ. ४३८ | उ. १७६ |
| शुभादिभ्यश्च | ४।१।१२३ | पृ. ३६७ | उ. १०५ |
| शुषः कः | ८।२।५१ | उ. ५०६ | उ. ० |
| शुष्कचूर्णरूपेषु पिपः | ३।४।३५ | पृ. ३१० | पृ. ० |
| शुष्कधृष्टो० | ६।१।२०६ | उ. २०० | उ. ० |
| शुद्धाणामनिरवसि० | २।४।१० | पृ. १६१ | पृ. ४६५ |
| शुषोदजन्यतरस्याम् | ५।१।२६ | उ. ८ | उ. २४२ |
| शुलात्याके | ५।४।६५ | उ. ११८ | उ. ३६४ |
| शुलोखाद्यात् | ४।२।१७ | पृ. ३८५ | उ. १३० |
| शुद्धत्वमस्य वन्दनं करभे | ५।२।७६ | उ. ५८ | उ. ३११ |
| शुद्धमवस्थायां च | ६।२।११५ | उ. २३८ | उ. ० |
| शुतं पाके | ६।१।२७ | उ. १५० | उ. ४३३ |
| शुद्ध्यां ह्रस्वा वा | ७।४।१२ | उ. ४४३ | उ. ८५२ |
| शुवन्धोरारुः | ३।२।१७३ | पृ. २५५ | पृ. ० |
| शु | १।१।१३ | पृ. ६ | पृ. ६५ |
| शु मुचादीनाम् | ७।१।५६ | उ. ३३६ | उ. ७३३ |
| शुषलमुपरिविशाल० | ५।३।८४ | उ. ६२ | उ. ३६४ |
| शुष्कन्दिनि बहुनम् | ६।१।७० | उ. १६३ | उ. ४५३ |
| शुषोत्कर्तारि परस्मै० | १।३।७८ | पृ. ७३ | पृ. २५७ |
| शुषोद्विभाया | ५।४।१५५ | उ. १३६ | उ. ४११ |
| शुषे | ४।२।६२ | पृ. ४०८ | उ. १४८ |
| शुषे प्रथमः | १।४।१०८ | पृ. १०३ | पृ. ३४० |
| शुषे लुङ्पदा | ३।३।१५१ | पृ. २६४ | पृ. ० |
| शुषे लोपः | ७।२।६० | उ. ३६६ | उ. ७८७ |

सूचीपत्रम् ।

६५

| | अ. पा. मू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|-----------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| ऋषे विभाषा | ८।१।४१ | उ. ४७७ | उ. ६०५ |
| शुषे विभाषा | ८।१।५० | उ. ४८० | उ. ६०७ |
| शुषे विभाषाकृष्णा० | ८।४।१८ | उ. ५६२ | उ. १०२४ |
| शुषे च्यमस्य | ९।४।७ | पु. ७६ | पु. २६८ |
| शुषे बभ्रुव्रीहिः | २।२।२३ | पु. १३२ | पु. ४०४ |
| श्रीशात्पावाम् | ४।१।४३ | पु. ३४२ | उ. ४५ |
| श्रीनकारिभ्यश्च० | ४।३।१०६ | पु. ४५७ | उ. ० |
| श्रनसौरल्लोपः | ६।४।१११ | उ. ३२२ | उ. ६७६ |
| श्रनाचलोपः | ६।४।२३ | उ. ३०१ | उ. ६४६ |
| श्रनाभ्यस्तयोरातः | ६।४।११२ | उ. ३२२ | उ. ६७६ |
| श्रपाद्मधासुहं० | ३।१।१४१ | पु. २१७ | पु. ६०६ |
| श्रयेनतिलस्य पात्ते० | ६।३।७१ | उ. २८० | उ. ६१० |
| श्रयोस्यर्षे | ८।२।४७ | उ. ५०८ | उ. ६५१ |
| श्रज्यायमकन्याय० | ६।३।२५ | उ. २१३ | उ. ५३४ |
| श्रविष्ठाफलाभ्यन० | ४।३।३४ | पु. ४२८ | उ. १६८ |
| श्रारामांसीटनाट्टिठन् | ४।४।६७ | पु. ४७४ | उ. २११ |
| श्राद्धमनेन भु० | ५।२।८५ | उ. ५६ | उ. ३१३ |
| श्राद्धे शरदः | ४।३।१२ | पु. ४२४ | उ. १६४ |
| श्रिणीभुवनु० | ३।३।२४ | पु. २६५ | पु. ० |
| श्रीधामगयोश्च० | ७।१।५६ | उ. ३५५ | उ. ७२२ |
| श्रुयः श्र च | ३।१।७४ | पु. २०० | पु. ० |
| श्रुश्रुएकृ० | ६।४।१०२ | उ. ३२० | उ. ६७६ |
| श्रुयादयः कता० | २।१।५६ | पु. १२१ | पु. ३८० |
| श्रुत्रियंश्चन्दो० | ५।२।८४ | उ. ५६ | उ. ३१२ |
| श्रुयकः किति | ७।२।११ | उ. ३७५ | उ. ७५५ |
| श्रुलाघहृङ्स्याश० | १।४।३४ | पु. ८५ | पु. २६३ |
| श्रुसव आलिङ्गने | ३।१।४६ | पु. १६५ | पु. ५५६ |
| श्रुला | ६।१।१० | उ. १४४ | उ. ४२६ |
| श्रुगर्गादृञ्च | ४।४।११ | पु. ४६३ | उ. २०२ |
| श्रुवयतेरः | ७।४।१८ | उ. ४४५ | उ. ८५३ |
| श्रुयुधमयोनामत० | ६।४।१३३ | उ. ३२८ | उ. ६६७ |
| श्रुयगुरः श्रुयवा | १।२।७१ | पु. ५२ | पु. २०६ |
| श्रुयसस्तुद् च | ४।३।१५ | पु. ४२५ | उ. १६४ |
| श्रुयसोवसायः श्रु० | ५।४।८० | उ. १२२ | उ. ३६६ |
| श्रुवादेरिञि | ७।३।८ | उ. ४०६ | उ. ८०५ |
| श्रुवादिनो निष्ठायाम् | ७।२।१४ | उ. ३७६ | उ. ७६० |
| श्रुः प्रत्ययस्य | १।३।६ | पु. ५४ | पु. २१७ |

| | काशिका | | पट्टमञ्जरी | |
|-------------------------|------------|---------|------------|-----|
| | अ. पा. सू. | पृ. | अ. पा. सू. | पृ. |
| षट्कतिरुतिप० | ५।२।५१ | उ. ५१ | उ. ३०३ | |
| षट् च काशिकादीनि | ६।२।१३५ | उ. २४३ | उ. ० | |
| षट्कतुर्भ्यश्च | ७।१।५५ | उ. ३५४ | उ. ७२१ | |
| षट्त्रिचतुर्भ्यो० | ६।१।१७६ | उ. १६४ | उ. ५५४ | |
| षड्भ्यो लुक् | ७।१।२२ | उ. ३४६ | उ. ७०६ | |
| षटोः कः सि० | ८।२।४९ | उ. ५०६ | उ. ० | |
| षणमासापषच्च | ५।१।८३ | उ. २३ | उ. २६० | |
| षत्वतुकोरसि० | ६।१।८६ | उ. १६७ | उ. ४६५ | |
| षपूर्वहनश्चत० | ६।४।१३५ | उ. ३२६ | उ. ६८७ | |
| षष्टिकाः षष्टिरा० | ५।१।६० | उ. २४ | उ. २६१ | |
| षष्ट्यादिषचासंख्याद्विः | ५।२।५८ | उ. ५३ | उ. ३०६ | |
| षष्टाष्टमाभ्यां ज च | ५।३।५० | उ. ८४ | उ. ३४३ | |
| षष्ठी | २।३।८ | पृ. १२७ | पृ. ३६३ | |
| षष्ठी चानादरे | २।३।३८ | पृ. १४८ | पृ. ४३६ | |
| षष्ठी प्रत्येनसी | ६।२।६० | उ. २२५ | उ. ५४६ | |
| षष्ठीयुक्तप्रश्नसि वा | १।४।६ | पृ. ८० | पृ. २७० | |
| षष्ठी शेषे | २।३।५० | पृ. १५१ | पृ. ४४६ | |
| षष्ठी स्थानेयोगा | १।१।४६ | पृ. २० | पृ. ६४ | |
| षष्ठीहेतुप्रयोगे | २।३।२६ | पृ. १४४ | पृ. ४३३ | |
| षष्टःसर्गप्रत्य० | २।३।३० | पृ. १४८ | पृ. ४३५ | |
| षष्ट्याः पतिपुत्रप० | ८।३।५३ | उ. ५४० | उ. ६६४ | |
| षष्ट्या रूप्य च | ५।३।५४ | उ. ८५ | उ. ३४४ | |
| षष्ट्या व्याश्रये | ५।४।४८ | उ. ११३ | उ. ३८७ | |
| षात्पदान्तात् | ८।४।३५ | उ. ५६७ | उ. १०२६ | |
| षिद्धीरादिभ्यश्च | ४।१।४१ | पृ. ३४१ | उ. ४३ | |
| षिद्धिदादिभ्योङ् | ३।३।१०४ | पृ. २८१ | पृ. ६८८ | |
| ष्टुना ष्टुः | ८।४।४१ | उ. ५६६ | उ. १०३१ | |
| ष्टिवुक्तमुचमां शि० | ७।३।७५ | उ. ४३० | उ. ८२८ | |
| ष्यान्ता षट् | १।१।२४ | पृ. १२ | पृ. ७४ | |
| ष्यङः संपसारणो | ६।१।१३ | उ. १४५ | उ. ४३८ | |
| ष उतमस्य | ३।४।६८ | पृ. ३८५ | पृ. ७५० | |
| स षषां यामशीः | ५।२।७८ | उ. ५७ | उ. ३११ | |
| सः स्थाद्धधातुके | ७।४।४६ | उ. ४५१ | उ. ८६१ | |
| सः स्विद्विस्वद्विस० | ८।३।६२ | उ. ५४३ | उ. १००० | |
| संयसश्च | ३।१।७२ | पृ. २०० | पृ. ५६७ | |
| संयोगादिपञ्च | ६।४।१६६ | उ. ३३७ | उ. ६६६ | |
| संयोगादेरातः धा० | ८।२।४३ | उ. ५०७ | उ. ६४६ | |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पटमञ्जरी पृ. |
|-----------------------|------------|------------|--------------|
| संयोगान्तर्य लो० | ८।२।२३ | ल. ५०२ | ल. ८७० |
| संयोगे गुरु | ९।४।९९ | सू. ८० | सू. ० |
| संवत्सराग्रहा० | ४।३।५० | पृ. ४३२ | ल. ९७२ |
| संशयभाष्यः | ५।९।७३ | ल. २९ | ल. ३५८ |
| संसृष्टे | ४।४।२२ | सू. ४६५ | ल. ३०३ |
| संस्कृतम् | ४।४।३ | सू. ४६२ | ल. ३०९ |
| संस्कृतं भक्षाः | ४।२।९६ | पृ. ३८५ | ल. ९३८ |
| संहितशफल० | ४।९।७० | पृ. ३४८ | ल. ६९ |
| संहिनायाम् | ६।९।७२ | ल. ९६४ | ल. ४५३ |
| संहितायाम् | ६।३।९९४ | ल. ३८८ | ल. ६३९ |
| सक्यं चाक्रा० | ६।२।९८८ | ल. ३६० | ल. ५७६ |
| सख्यशिश्वीति० | ४।९।६२ | पृ. ३४७ | ल. ५७ |
| सख्युरसंबुद्धौ | ७।९।८२ | ल. ३६५ | ल. ७३८ |
| सख्युयः | ५।९।९२६ | ल. ३४ | ल. ० |
| सगतिरपि तिङ् | ८।९।६८ | ल. ७८६ | ल. ८९४ |
| सगर्भसपूषस० | ४।४।९९४ | पृ. ४८३ | ल. ३३० |
| संकलादिभ्यश्च | ४।३।७५ | पृ. ४०९ | ल. ० |
| संख्याव्ययासञ्ज्ञा० | २।२।२५ | पृ. ९३३ | सू. ४०८ |
| संख्या | ६।२।३५ | ल. २९७ | ल. ६३६ |
| संख्यापूर्वा द्विगुः | २।९।५२ | सू. ९२८ | सू. ३७५ |
| संख्याया अति० | ५।९।२२ | ल. ८ | ल. ३४९ |
| संख्याया अवयवे० | ५।२।४२ | ल. ४८ | ल. ३८७ |
| संख्यायाः क्रियाभ्या० | ५।४।९७ | ल. ९०५ | ल. ३७७ |
| संख्यायाः संवत्सर० | ७।३।९५ | ल. ४९९ | ल. ८०८ |
| संख्यायाः संज्ञासंघ० | ५।९।५८ | ल. ९७ | ल. ३५० |
| संख्यायाः स्तनः | ६।२।९६३ | ल. ३५२ | ल. ० |
| संख्याया गुणस्य० | ५।२।४७ | ल. ५० | ल. ३०० |
| संख्याया विधाय० | ५।३।४२ | ल. ८२ | ल. ३४९ |
| संख्याभाष्य गुणान्ता० | ५।४।५६ | ल. ९९६ | ल. ३८३ |
| संख्या संग्रहेन | २।९।९६ | पृ. ९९० | सू. ३६० |
| संख्याविसायपूर्व० | ६।३।९९० | ल. २८८ | ल. ६९६ |
| संख्याव्ययादेशीप् | ४।९।२६ | पृ. ३३७ | ल. ३३ |
| संख्यासुपूर्वस्य | ५।४।९४० | ल. ९३६ | ल. ० |
| संख्याकवचना० | ५।४।४३ | ल. ९९९ | ल. ३८५ |
| संघामिप्रयोजन० | ४।२।५६ | पृ. ३८५ | ल. ९४० |
| संघाङ्कनदशा० | ४।३।९२० | पृ. ४५२ | ल. ९८८ |
| संघे चानौत्तरा० | ३।३।४२ | पृ. २६८ | सू. ६७६ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|--------------------------|--------------|--------|-----|----------|------|
| | | पृ. | पृ. | पृ. | पृ. |
| संघोष्ठी गणप० | ३।३।८६ | पृ. | २७७ | पृ. | ६८३ |
| संज्ञापूर्वयोश्च | ६।३।३८ | उ. | २७१ | उ. | ५६६ |
| संज्ञायाम् | २।१।४४ | पृ. | ११६ | पृ. | ० |
| संज्ञायाम् | ३।३।१०६ | पृ. | २८२ | पृ. | ६६१ |
| संज्ञायाम् | ३।४।४२ | पृ. | ३११ | पृ. | ७३२ |
| संज्ञायाम् | ४।२।७२ | पृ. | ३५० | उ. | ० |
| संज्ञायाम् | ४।३।११७ | पृ. | ४४६ | उ. | १८७ |
| संज्ञायाम् | ६।२।१५६ | उ. | २५१ | उ. | ५६८ |
| संज्ञायाम् | ८।२।११ | उ. | ४६७ | उ. | ६३५ |
| संज्ञायां लला० | ४।४।४६ | पृ. | ४७० | उ. | २०७ |
| संज्ञायां शरदो० | ४।३।२७ | पृ. | ४२७ | उ. | १६८ |
| संज्ञायां श्रवणा० | ४।२।५ | पृ. | ३८२ | उ. | १२६ |
| संज्ञायां समजनि० | ३।३।६६ | पृ. | २८० | पृ. | ६८६ |
| संज्ञायां कन् | ४।३।१४७ | पृ. | ४५६ | उ. | ० |
| संज्ञायां कन् | ५।३।७५ | उ. | ६० | उ. | ० |
| संज्ञायां कन् | ५।३।८७ | उ. | ६३ | उ. | ० |
| संज्ञायां कन्याशीनरेषु | २।४।२० | पृ. | १६४ | पृ. | ४७२ |
| संज्ञायां गिरिनि० | ६।२।६४ | उ. | २३३ | उ. | ५५३ |
| संज्ञायां च | ५।३।६७ | उ. | ६५ | उ. | ० |
| संज्ञायां च | ६।२।७७ | उ. | २२६ | उ. | ० |
| संज्ञायां जन्वा | ४।४।८२ | पृ. | ४७७ | उ. | २१४ |
| संज्ञायां धेनुष्या | ४।४।८६ | पृ. | ४७८ | उ. | २१६ |
| संज्ञायामनाचिता० | ६।२।१४६ | उ. | २४६ | उ. | ५६५ |
| संज्ञायामुपमानम् | ६।१।२०४ | उ. | २०० | उ. | ५२२ |
| संज्ञायां भृशृजिधा० | ३।२।४६ | पृ. | २२८ | पृ. | ६२० |
| संज्ञायां मन्वाभ्याम् | ५।२।१३७ | उ. | ७३ | उ. | ३३१ |
| संज्ञायां मित्राजिनयोः | ६।२।१६५ | उ. | २५२ | उ. | ५६६ |
| संज्ञोऽन्यतरस्यां० | २।३।२२ | पृ. | १४४ | पृ. | ४३३ |
| संज्ञोपस्ययोश्च | ६।२।११३ | उ. | २३७ | उ. | ० |
| सत्यं प्रश्ने | ८।१।३२ | उ. | ४७६ | उ. | ० |
| सत्यादशपथे | ५।४।६६ | उ. | ११८ | उ. | ३६४ |
| सत्यापपाशरूपयोः | ३।१।२५ | पृ. | १८६ | पृ. | ५३१ |
| सत्सूद्विषद्वुह० | ३।२।६१ | पृ. | २३३ | पृ. | ६३५ |
| सठिरप्रतिः | ८।३।६६ | उ. | ५४४ | उ. | १००३ |
| सदृशप्रतिरूपयोः० | ६।२।११ | उ. | २०६ | उ. | ५३१ |
| सद्विष्वज्जोः परस्य लिटि | ८।३।११८ | उ. | ५५६ | उ. | १०१४ |
| सद्यःपरुपरयोश्चमः० | ५।३।३२ | उ. | ७८ | उ. | ३३६ |

सूचीपत्रम् ।

९९

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पटमञ्जरी पृ. |
|-------------------------|------------|---------------|-----------------|
| सधमादस्योऽङ्क० | ६।३।६६ | उ. २८५ | उ. ६९६ |
| सनः क्तिचि लो० | ६।४।४५ | उ. ३०७ | उ. ६५५ |
| स नपुंसकम् | २।४।९७ | पु. ९६३ | पु. ४७० |
| सनाद्यन्ता धातवः | ३।९।३२ | पु. ९६२ | पु. ५४४ |
| सनाशंसभिल उः | ३।३।९६८ | पु. २५४ | पु. ६५८ |
| सन्निस्सनिशांसम् | ७।३।६६ | उ. ३६४ | उ. ७८२ |
| सनि यद्गुहोश्च | ७।२।९२ | उ. ३७५ | उ. ७५८ |
| सनि च | २।४।४७ | पु. ९७२ | पु. ० |
| सनि श्रीमापुरभल० | ७।४।५४ | उ. ४५२ | उ. ८६९ |
| सनीवन्तधभस्जद० | ७।२।४६ | उ. ३८७ | उ. ७७५ |
| सनोत्तरनः | ८।३।९०८ | उ. ५५४ | उ. ९०९२ |
| संधिवेलाद्युतुनक्षत्रे० | ४।३।९६ | पु. ४२५ | उ. ९६५ |
| सन्महत्परमोत्तमे० | २।९।६९ | पु. ९२९ | पु. ३८२ |
| सन्यहोः | ६।९।६ | उ. ९४३ | उ. ४२६ |
| सन्यतः | ७।४।७६ | उ. ४५८ | उ. ८६६ |
| सन्विटोर्जः | ७।३।५७ | उ. ४२६ | उ. ८२४ |
| सन्वल्लघुनि चङ्पर० | ७।४।६३ | उ. ४६२ | उ. ८७२ |
| सपत्रनिष्पत्रादति० | ५।४।६९ | उ. ९९७ | उ. ३६४ |
| सपूर्वाच्च | ५।२।८७ | उ. ६० | उ. ३९३ |
| सपूर्वायाः प्रथमाया० | ८।९।२६ | उ. ४७३ | उ. ६०० |
| सप्तमोऽङ्कन्दसि | ५।९।६९ | उ. ९८ | उ. ० |
| सप्तमीपञ्चम्या कार० | २।३।७ | पु. ९३६ | पु. ४७२ |
| सप्तमी विशेषणे बहू० | २।२।३५ | पु. ९३६ | पु. ४९६ |
| सप्तमी शीषडैः | २।९।४० | पु. ९९५ | पु. ३६६ |
| सप्तमी सिद्धशुष्कप० | ६।२।३२ | उ. २९५ | उ. ५३४ |
| सप्तमी हारिणी धर्म्य० | ६।२।६५ | उ. २२६ | उ. ५४७ |
| सप्तम्यधिकरणे च | २।३।३६ | पु. ९४७ | पु. ४३७ |
| सप्तम्याः पुण्यम् | ६।२।९५२ | उ. २४६ | उ. ५६७ |
| सप्तम्यां चौपयीह० | ३।४।४६ | पु. ३९३ | पु. ७३२ |
| सप्तम्यां जनेर्हः | ३।३।६७ | पु. २३६ | पु. ६३४ |
| सप्तम्यास्त्रल् | ५।३।९० | उ. ७६ | उ. ० |
| सभायां नपुंसके | ६।२।६८ | उ. २३४ | उ. ५५४ |
| सभाया यः | ४।४।९०५ | पु. ४८२ | उ. ० |
| सभाराजामनुष्यपूर्वा | २।४।२३ | पु. ९६५ | पु. ४७३ |
| समः द्वावः | ९।३।६५ | पु. ७० | पु. २४६ |
| समः प्रतिज्ञाने | ९।३।५२ | पु. ६६ | पु. २४० |
| समः समि | ६।३।६३ | उ. २८४ | उ. ० |

| | काशिका | | पदमञ्जरी | |
|-------------------------|--------------|---------|--------------|---------|
| | श्र. पा. सू. | पृ. | श्र. पा. सू. | पृ. |
| समः सुटि | ८१३१५ | ब. ५२७ | उ. २७४ | उ. २७४ |
| समस्तदस्य० | ५१९१२०४ | उ. २८ | उ. २६४ | उ. २६४ |
| समस्त्युच्चवाचना० | ५१४१६० | उ. २९७ | उ. २६३ | उ. २६३ |
| समर्थः पदविधिः | २१९१९ | पृ. २०३ | पृ. २४३ | पृ. २४३ |
| समर्थानां प्रथ० | ४१९१८२ | पृ. ३५२ | उ. ७० | उ. ७० |
| समवप्रविध्यः स्थः | ९१३१८२ | पृ. ५८ | पृ. २३९ | पृ. २३९ |
| समवादान्तरमवति | ४१४१४३ | पृ. ४६६ | उ. २०७ | उ. २०७ |
| समवाये च | ६१९१२३८ | उ. ९८२ | उ. ४६४ | उ. ४६४ |
| समस्त्युत्तीयायुक्तात् | ९१३१५४ | पृ. ६७ | पृ. २४० | पृ. २४० |
| समांसमां विजायते | ५१२१२२ | उ. ४० | उ. २८५ | उ. २८५ |
| समानकर्तृकयोः पूर्व० | ३१४१२९ | पृ. ३०७ | पृ. ७२३ | पृ. ७२३ |
| समानकर्तृकेषु तुमुन् | ३१३१२५८ | पृ. २६६ | पृ. ७०८ | पृ. ७०८ |
| समानतीर्थं वासी | ४१४१२०७ | पृ. ४८२ | उ. २९६ | उ. २९६ |
| समानस्य छन्द० | ६१३१८४ | उ. २८२ | उ. ६९४ | उ. ६९४ |
| समानोदरे श्र० | ४१४१२०८ | पृ. ४८२ | उ. २२७ | उ. २२७ |
| समापनात्सपूर्व० | ५१९१२२२ | उ. ३० | उ. ० | उ. ० |
| समायाः खः | ५१९१८५ | उ. २३ | उ. २६० | उ. २६० |
| समासता | ३१४१५० | पृ. ३९३ | पृ. ७३३ | पृ. ७३३ |
| समासस्य | ६१९१२२३ | उ. २०४ | उ. ५२५ | उ. ५२५ |
| समासाच्च तद्वि० | ५१३१२०६ | उ. १७ | उ. ३६७ | उ. ३६७ |
| समासान्ताः | ५१४१६८ | उ. २९८ | उ. ३६५ | उ. ३६५ |
| समासे ङुलेः सङ्गः | ८१३१६० | उ. ५४८ | उ. ९०५ | उ. ९०५ |
| समासे ङजपूर्व० | ७१९१३७ | उ. ३४६ | उ. ७५५ | उ. ७५५ |
| समाहारः स्वरितः | ९१२१३९ | पृ. ३६ | पृ. ९७० | पृ. ९७० |
| समि ख्यः | ३१३१७ | पृ. २२० | पृ. ० | पृ. ० |
| समि सुटी | ३१३१३६ | पृ. २६७ | पृ. ६७५ | पृ. ६७५ |
| समि युदुवः | ३१३१२३ | पृ. २६५ | पृ. ६७३ | पृ. ६७३ |
| समुच्चये ऽन्यतरस्याम् | ३१४१३ | पृ. ३०२ | पृ. ७९८ | पृ. ७९८ |
| समुच्चये सामान्य० | ३१४१५ | पृ. ३०३ | पृ. ७९६ | पृ. ७९६ |
| समुदाङ्गभ्या० | ९१३१७५ | पृ. ७२ | पृ. २५६ | पृ. २५६ |
| समुदो रजः पशुपु | ३१३१६६ | पृ. २७४ | पृ. ० | पृ. ० |
| समुद्राभाद् घः | ४१४१२५८ | पृ. ४८४ | उ. २२९ | उ. २२९ |
| समूलाकतकीये० | ३१४१३६ | पृ. ३९० | पृ. ७३९ | पृ. ७३९ |
| समूहवच्च बहुषु | ५१४१२२ | उ. २०७ | उ. ३८० | उ. ३८० |
| समी गम्पृच्छिप्रच्छि० | ९१३१२६ | पृ. ६० | पृ. २३३ | पृ. २३३ |
| संपरिपूर्वात्स च | ५१९१६२ | उ. २५ | उ. ० | उ. ० |
| संपर्युपेभ्यः करोती भू० | ६१९१२३७ | उ. २८९ | उ. ४६४ | उ. ४६४ |

| | अ. पा. सू. | काशिका पृ. | पदमञ्जरी पृ. |
|-----------------------|------------|---------------|--------------------|
| संपादिनि | ५।१।६६ | उ. २७ | उ. २६४ |
| संपृष्ठानुरूधा० | ३।२।१४२ | पृ. ३४६ | पृ. ६५३ |
| संप्रतिभ्यामना० | १।३।४६ | पृ. ६५ | पृ. २३८ |
| संप्रसारणम् | ६।३।१३६ | उ. ३६४ | उ. ६२४ |
| संप्रसारणाच्च | ६।१।१०८ | उ. १७४ | उ. ४७६ |
| संप्रोदश्च कटश्च | ५।२।२६ | उ. ४४ | उ. ३६० |
| संलुद्धा च | ७।३।१०६ | उ. ४३७ | उ. ० |
| संलुद्धा शाक० | १।१।१६ | पृ. १० | पृ. ६७ |
| संज्ञाधने च | २।३।४७ | पृ. १५१ | पृ. ४४५ |
| संज्ञाधने च | ३।२।१२५ | पृ. ३४५ | पृ. ६६३ पृ. ६४७ |
| संभवत्यवहर० | ५।१।५२ | उ. १५ | उ. २४६ |
| संभावनेलामिति० | ३।३।१५४ | पृ. ३६५ | पृ. ७०६ |
| संभूते | ४।३।४१ | पृ. ४३० | उ. १७१ |
| संमाननेत्संज्ञना० | १।३।३६ | पृ. ६२ | पृ. ३३५ |
| संयसश्च | ३।१।७२ | पृ. २०० | पृ. ५६७ |
| संयोगादिश्च | ६।४।१६६ | उ. ३३७ | उ. ६६६ |
| सरूपाशाभेकशे० | १।२।६४ | पृ. ५० | पृ. २०० |
| सर्तिशास्त्रार्तिभ्य० | ३।१।५६ | पृ. १६७ | पृ. ५६२ |
| सर्वकुलाभकरीपेपु० | ३।२।४२ | पृ. २२७ | पृ. ० |
| सर्वगुणकात्स्ये | ६।२।६३ | उ. २३३ | उ. ५५३ |
| सर्वचर्मणः कृतः० | ५।२।५ | उ. ३८ | उ. २८२ |
| सर्वत्र लोहितादि० | ४।१।१८ | पृ. ३३४ | उ. ३१ |
| सर्वत्र विभाषा गोः | ६।१।१२२ | उ. १७७ | उ. ४८४ |
| सर्वत्र शाकत्यस्य | ८।४।५१ | उ. ५७१ | उ. १०३३ |
| सर्वत्राणु च त० | ४।३।२२ | पृ. ४२६ | उ. १६५ |
| सर्वदेवात्तात्तिल् | ४।४।१४३ | पृ. ४८६ | उ. ० |
| सर्वनामस्थाने चासं० | ६।४।८ | उ. २६६ | उ. ६३० |
| सर्वन्मूत्रः स्मि | ७।१।१४ | उ. ३४४ | उ. ७०६ |
| सर्वनामः स्याद्० | ७।३।११४ | उ. ४३६ | उ. ६४२ |
| सर्वनामस्त्रतीया० | २।३।२७ | पृ. १४५ | पृ. ४३३ |
| सर्वपुरुषाभ्यां णठ० | ५।१।१० | उ. ४ | उ. ३३३ |
| सर्वभूमिपृथि० | ५।१।४१ | उ. १२ | उ. ३४७ |
| सर्वस्य द्वे | ८।१।१ | उ. ४६३ | उ. ६७५ |
| सर्वस्य सुपि | ६।१।१६१ | उ. १६७ | उ. ५१६ |
| सर्वस्य सौम्यत० | ५।३।६ | उ. ७५ | उ. ३३४ |
| सर्वादीनि सर्वना० | १।१।२७ | पृ. १३ | पृ. ७५ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------------|--------------|--------|----------|
| | | ए. | ए. |
| सर्वेकान्यकिंयत्तदः० | ५।३।१५ | उ. | ७६ |
| सद्याभ्यां वामा० | ३।४।६९ | पू. | ३३३ |
| सविधसनीढसमर्थाद० | ६।२।२३ | उ. | २९२ |
| ससजुषोरुः | ८।२।६६ | उ. | ५९३ |
| ससूवेति निगमे | ७।४।७४ | उ. | ४५० |
| ससौ प्रशंसायाम् | ५।४।४० | उ. | १९९ |
| सः स्याद्वधातुके | ७।४।४६ | उ. | ४५९ |
| सस्येन परिजातः | ५।२।६८ | उ. | ५५ |
| सहनञ्चिद्यमानपू० | ४।९।५७ | पू. | ३४६ |
| सहयुक्तेःप्रधाने | २।३।९६ | पू. | ९४३ |
| सह सुपा | २।९।४ | पू. | ९०५ |
| सहस्य सः संज्ञायां | ६।३।७८ | उ. | २८९ |
| सहस्य सधिः | ६।३।६५ | उ. | २८५ |
| सहस्रेण संमिता घः | ४।४।९३५ | पू. | ४८७ |
| सहिवहेरादवर्णस्य | ६।३।९९२ | उ. | २८८ |
| सहेः एतनताभ्यां च | ८।३।९०६ | उ. | ५५४ |
| सहेः साडः सः | ८।३।५६ | उ. | ५४९ |
| सहे च० | ३।२।६६ | पू. | २३६ |
| साक्षात्प्रभतीनि च० | ९।४।७४ | पू. | ६६ |
| साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् | ५।२।६९ | उ. | ६९ |
| साक्षी साख्या साडे० | ६।३।९९३ | उ. | २८६ |
| सात्पदाद्योः | ८।३।९९९ | उ. | ५५५ |
| साधकतमं करणम् | ९।४।४३ | पू. | ८७ |
| साधुनिपुणाभ्याम० | २।३।४३ | पू. | ९४६ |
| सान्तमहतः संयोगस्य | ६।४।९० | उ. | २८६ |
| साप्तपदीनं सख्यम् | ५।२।२३ | उ. | ४३ |
| साम आकम्० | ७।९।३३ | उ. | ३४८ |
| सा ऽऽमन्त्रितम् | २।३।४८ | पू. | ९५९ |
| सामि० | २।९।२७ | पू. | ९९९ |
| सायंश्चिरंप्राज्ञोपमे | ४।३।२३ | पू. | ४३६ |
| सायंधातुकर्मिपत् | ९।२।४ | पू. | ३३ |
| सायंधातुकाद्वधातु० | ७।३।८४ | उ. | ४३२ |
| सायंधातुके यक् | ३।९।६७ | पू. | ९६६ |
| सात्त्वावयवप्रत्यय० | ४।९।९७३ | पू. | ३७६ |
| सात्येयगान्धारि० | ४।९।९६६ | पू. | ३७८ |
| सावनहुहः * | ७।९।८२ | उ. | ३६३ |
| सावेकाचस्तीया० | ६।९।९६८ | उ. | ९६० |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पटमञ्जरी |
|--------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| सास्मिन्पौर्णमासीति० | ४।२।२१ | पृ. ३८६ | उ. १३० |
| सास्य देवता | ४।२।२४ | पृ. ३८६ | उ. १३१ |
| सिकताशर्कराभ्यां च | ५।२।१०४ | उ. ६५ | उ. ३२३ |
| सिचि च परस्मैपदेषु | ७।२।४० | उ. ३८५ | उ. ७७३ |
| सिचि वृद्धिः परस्मै० | ७।२।१ | उ. ३६८ | उ. ७४६ |
| सिचो षड् | ८।३।११२ | उ. ५५५ | उ. १०१३ |
| सिजभ्यस्तविदि० | ३।४।१०६ | पृ. ३२६ | पृ. ७५२ |
| सिति च | १।४।१६ | पृ. ८१ | पृ. २७४ |
| सिद्धशुक्लपञ्चदश्याश्च | २।१।४१ | पृ. ११५ | पृ. ३७० |
| सिध्मादिभ्यश्च | ५।२।६७ | उ. ६३ | उ. ३१६ |
| सिध्यतेरपारलौकिके | ६।१।४६ | उ. १५६ | उ. ४४१ |
| सिन्युतक्षत्रिलादि० | ४।३।६३ | पृ. ४४२ | उ. १८२ |
| सिन्ध्वपकराभ्यां कन् | ४।३।३२ | पृ. ४२८ | उ. ० |
| सिपि धातोर्ध्वा | ८।२।७४ | उ. ५१५ | उ. ६५७ |
| सिष्यशुलं लेटि | ३।१।३४ | पृ. १६२ | पृ. ५४७ |
| सिवादीनां वाङ्मय० | ८।३।७१ | उ. ५४६ | उ. १००३ |
| सुः पूजायाम् | १।४।६४ | पृ. १०० | पृ. ३३२ |
| सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु० | ३।२।८६ | पृ. ३३८ | पृ. ६३७ |
| सुखप्रिययोर्हिते | ६।३।१५ | उ. २१० | उ. ५३२ |
| सुखप्रियादानुलोभ्ये | ५।४।६३ | उ. ११७ | उ. ३६४ |
| सुखादिभ्यः कर्तुषे० | ३।१।१८ | पृ. १८७ | पृ. ५३४ |
| सुखादिभ्यश्च | ५।२।१३१ | उ. ७२ | उ. ३२६ |
| सुभ्रः | ८।३।१०७ | उ. ५५४ | उ. १०१२ |
| सुभ्रियज्ञसंघोषे | ३।२।१३२ | पृ. ३४६ | पृ. ६५० |
| सुदकात्पूर्वः | ६।१।१३५ | उ. १८१ | उ. ४६० |
| सुद तिथोः | ३।४।१०७ | पृ. ३२६ | पृ. ७५२ |
| सुहनपुंसकस्य | १।१।४३ | पृ. १६ | पृ. ८६ |
| सुधातुरकङ् च | ४।१।६७ | पृ. ३५६ | उ. ६६ |
| सुधितवसुधितनेम्र० | ७।४।४५ | उ. ४४६ | उ. ८५६ |
| सुनोतेः स्यसनेः | ८।३।११७ | उ. ५५६ | उ. १०१४ |
| सुप आत्मनः क्यच् | ३।१।८ | पृ. १८४ | पृ. ५१३ |
| सुपः | १।४।१०३ | पृ. १०२ | पृ. ३३६ |
| सुपां सुलुकपूर्वस्य० | ७।१।३६ | उ. ३५० | उ. ७१७ |
| सुपि च | ७।३।१०२ | उ. ४३७ | उ. ८४० |
| सुपि स्यः | ३।२।४ | पृ. २१६ | पृ. ६१३ |
| सुपो धातुपातिय० | ३।४।७१ | पृ. १७६ | पृ. ४६१ |
| सुप्तिहन्तं पदम् | १।४।१४ | पृ. ८१ | पृ. २७३ |

| | श्र. पा. सू. | काशिका | पटमञ्जरी |
|------------------------|--------------|--------|----------|
| | | प. | प. |
| सुपतिना मात्रार्थं | २।१।१ | प. १०७ | प. ३५५ |
| सुषजाता ललिस्ता० | ३।२।७८ | प. २३६ | प. ६२८ |
| सुप्रातसुप्रमुदिवशा० | ५।४।१२० | उ. १३१ | उ. ४०६ |
| सुखामन्त्रितं पराङ्गव० | २।१।२ | प. १०४ | प. ३४० |
| सुयजोर्ह्वनिपु | ३।२।१०३ | प. २४० | प. ६३५ |
| सुवान्वादिभ्याम् | ४।२।७७ | प. ४०१ | उ. १४६ |
| सुविनिर्दुर्भ्यः सुपि० | ८।३।८८ | उ. ५४६ | उ. १००० |
| सुवामादपु च | ८।३।६८ | उ. ५५२ | उ. १०१० |
| सुसर्वाधाञ्जनपटम् | ७।३।१२ | उ. ४१० | उ. ८०६ |
| सुसुद्दुर्दुदी मित्रा० | ५।४।१५० | उ. १३८ | उ. ० |
| सुस्रं प्रतिप्रातम् | ८।३।६० | उ. ५५० | उ. १००८ |
| सुस्राञ्च कोपधात् | ४।२।६५ | प. ३६८ | उ. १४३ |
| सुसुदटीपदाक्षप्रच | ३।२।१५३ | प. २५१ | प. ६५५ |
| सुपमानात्कः | ८।३।१४५ | उ. २४६ | उ. ५६५ |
| सुर्यतिप्रागल्भ्यम्० | ६।४।१४६ | उ. ३३२ | उ. ६६१ |
| सुस्यदः कश्च | ३।२।१६० | प. २५३ | प. ६५७ |
| सुजिदुशोर्भल्यमकिति | ८।१।५८ | उ. १५८ | उ. ४४३ |
| सुपितुदोः कसुन् | ३।४।१० | प. ३०६ | प. ० |
| सु स्थिरे | ३।२।१० | प. २६३ | प. ६६६ |
| सुधतेर्गता | ८।३।१५३ | उ. ५५५ | उ. १०१३ |
| सुनान्तनतशका० | ४।१।१५२ | प. ३७३ | उ. ११२ |
| सुनाया वा | ४।४।४५ | प. ४६६ | उ. ० |
| सुस्यपिच्य | ३।४।८० | प. ३२३ | प. ७४८ |
| सुसिचि कतचुतच्छृ० | ७।२।५७ | उ. ३८६ | उ. ७७६ |
| सुसिचि लोपे चेत्या० | ८।१।१३४ | उ. १८० | उ. ४६० |
| सुसिठः | ८।३।११५ | उ. ५५६ | उ. १०१३ |
| सुसिदराद्यः | ४।४।१०६ | प. ४८२ | उ. २३० |
| सुसिपदादौ | ८।३।३८ | उ. ५३५ | उ. ६६६ |
| सुसिमर्हति यः | ४।४।१३७ | प. ४८८ | उ. २३५ |
| सुसिमाट् ट्यञ् | ४।३।३० | प. ३८८ | उ. १३३ |
| सुसिमे सुजः | ३।३।६० | प. ३३८ | प. ६३३ |
| सुसिमे हुरितः | ७।३।३३ | उ. ३८० | उ. ७६६ |
| सुसिरेवत्तपशे | ८।३।१६५ | उ. ५५६ | उ. ५७५ |
| सुसिर्मनसो श्रलोमो० | ८।३।११० | उ. ५३८ | उ. ५५० |
| सुसिख निवासः | ४।३।८६ | प. ४४१ | उ. १८१ |
| सुसिख्याण्यस्रभृतयः | ५।१।५६ | उ. १६ | उ. ३५० |
| सुसिख्यादिरिति छ० | ४।३।५५ | प. ३६५ | उ. १३६ |

| | श्र. पा. म्. | काशिका पृ. | पटमञ्जरी पृ. |
|--------------------------|--------------|---------------|-----------------|
| सौ च | ६।४।१३ | उ. ३६८ | उ. ० |
| स्कोः संयोगाद्योरन्ते० | ८।३।२६ | उ. ५०३ | उ. ६४३ |
| स्तम्भेः | ८।३।६७ | उ. ५४५ | उ. १००२ |
| स्तम्भस्तुम्भस्वम्भु० | ३।१।८२ | पू. २०९ | पू. ५७० |
| स्तम्भकर्णयोरमिजपोः | ३।२।१३ | पू. २२९ | पू. ६१४ |
| स्तम्भशक्तोरिन् | ३।२।२४ | पू. २२४ | पू. ६१७ |
| स्तम्भे क च | ३।३।८३ | पू. २७७ | पू. ६८३ |
| स्तम्भसिधुसहा० | ८।३।११६ | उ. ५५६ | उ. १०१३ |
| स्तुतस्तोमयोश्चन्द्रसि | ८।३।१०५ | उ. ५५३ | उ. १०१९ |
| स्तुसुधुञ्ज्यः परस्ते० | ७।२।७२ | उ. ३६५* | उ. ० |
| स्तोनाद्याचलोपश्च | ५।१।१२५ | उ. ३४ | उ. २७८ |
| स्तोश्चुना श्चुः | ८।४।४० | उ. ५६८ | उ. १०३० |
| स्तोकार्न्तिकदूरार्थ० | २।१।३६ | पू. ११५ | पू. ० |
| स्तीतिशयोरेव प्रथम० | ८।३।६९ | उ. ५४२ | उ. ६६८ |
| स्त्यः प्रपूर्वस्य | ६।१।२३ | उ. १४६ | उ. ४३२ |
| स्त्रियाः | ६।४।७६ | उ. ३१५ | उ. ६७० |
| स्त्रियाः पुंयद्वापित० | ६।३।३४ | उ. २६८ | उ. ५८८ |
| स्त्रियाम् | ४।१।३ | पू. ३३० | उ. १२ |
| स्त्रियां संज्ञायाम् | ५।४।१४३* | उ. १३६ | उ. ४१० |
| स्त्रियां त्किन् | ३।३।६४ | पू. २७८ | पू. ६८४ |
| स्त्रियां च | ७।१।६६ | उ. ३६६ | उ. ७४२ |
| स्त्रियामवन्तिकु० | ४।१।१०६ | पू. ३८० | उ. १२२ |
| स्त्रीपुंश्च | १।२।६६ | पू. ५९ | पू. २७७ |
| स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्ज्ञ० | ४।१।८७ | पू. ३५४ | उ. ७८ |
| स्त्रीभ्यां ढक् | ४।१।१२० | पू. ३६६ | उ. १०५ |
| स्त्रीषु सौवीरसाल्य० | ४।२।७६ | पू. ४०९ | उ. ० |
| स्त्यः क च | ३।२।७७ | पू. ३३५ | पू. ६३८ |
| स्त्यगिडलाच्छ्रिय० | ४।२।१५ | पू. ३८५ | उ. १२६ |
| स्त्यागपापचौ भावे | ३।३।६५ | पू. २७६ | पू. ६८५ |
| स्त्याच्चौरिञ्च | १।२।१७ | पू. ३५ | पू. १६० |
| स्त्यादिष्वभ्यासेन० | ८।३।६४ | उ. ५४३ | उ. १००० |
| स्त्यानान्तगोशाल० | ४।३।३५ | पू. ४२६ | उ. १६६ |
| स्त्यानान्तादिभाषा | ५।४।१० | उ. २०४ | उ. ३७४ |
| स्त्यानियदादेशान० | १।१।५६ | पू. २२ | पू. १०३ |
| स्त्यानेन्तरतमः | १।१।५० | पू. २० | पू. ६६ |
| स्त्यालीदिलात् | ५।१।७० | उ. २० | उ. २५७ |
| स्त्यात्तदूरयुक्तम्भु० | ६।४।१५६ | उ. ३३४ | उ. ६६४ |

| | श. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|------------|---------|----------|
| | | प. | प. |
| सुनाटिभ्यः प्रकार० | ५।४।३ | उ. १०२ | उ. ३०० |
| स्य न भाषायाम् | ६।३।२० | उ. २६१ | उ. ५२६ |
| स्येप्रभासपितक० | ३।२।१७५ | पू. २५१ | पू. ६५६ |
| सःत्प्याटयश्च | ७।१।४६ | उ. ३५३ | उ. ० |
| सुकमोरनात्मनेपद० | ७।२।३६ | उ. ३२३ | उ. ७१० |
| सेहने विषः | ३।४।३८ | पू. ३२१ | पू. ७३१ |
| स्यर्थायःमाडः | १।३।३१ | पू. ६१ | पू. २३४ |
| स्यशोनुक्के क्विन् | ३।२।१५८ | पू. २३१ | पू. ६२३ |
| स्यहियहियपित० | ३।२।५२ | पू. २५२ | पू. ६५६ |
| स्यहेरीपितः * | १।४।३६ | पू. ८५ | पू. २६५ |
| स्कायः स्की निष्ठायाम् | ६।१।२२ | उ. १४६ | उ. ० |
| स्कायो वः | ७।३।४१ | उ. ४२० | उ. ० |
| स्मिपूतधीगाञ्जो० | ६।३।१८० | उ. २५० | उ. ५७४ |
| स्फुरतिस्फुलत्यार्धञि | ६।१।४० | उ. १५६ | उ. ० |
| स्फुरतिस्फुलत्यार्नि० | ८।३।७८ | उ. ५४० | उ. ० |
| स्मिपूतुरञ्ज्यशां० | ७।२।७४ | उ. ३२५ | उ. ७८३ |
| स्मे लोट् | ३।३।१६५ | पू. २६८ | पू. ७११ |
| स्मोन्नरं लङ् च | ३।३।१७६ | पू. ३०१ | पू. ७५३ |
| स्यतासी लुटोः | ३।१।३३ | पू. १६२ | पू. ५४१ |
| स्यटो जवे | ६।४।२८ | उ. ३०३ | उ. ६५१ |
| स्यप्रकृन्टनि बहुलम् | ६।१।१३३ | उ. १८० | उ. ४६० |
| स्यसिचसीपुट्तासिपु० | ६।४।६२ | उ. ३१० | उ. ६६२ |
| स्यवतिश्रयोतिद्रवति० | ७।४।८१ | उ. ४५६ | उ. ८०० |
| सोतसो विभाषा० | ४।४।११३ | पू. ४८३ | उ. २२० |
| स्यं रूपं शब्दस्याश० | ०।१।६८ | पू. २८ | पू. १३६ |
| स्यं स्वामिनि | ६।२।१० | उ. २११ | उ. ० |
| स्वतन्त्रः कर्ता | ०।४।५४ | पू. ६० | पू. ३१३ |
| स्वतवान्यायी | ८।३।११ | उ. ५२६ | उ. ६७६ |
| स्वनहसेर्था | ३।३।६२ | पू. २७३ | पू. ० |
| स्वपादिहिंमामच्च० | ६।१।१८८ | उ. १६६ | उ. ५१६ |
| स्वपितृघोर्निजिङ् | ३।२।१७७ | पू. २५५ | पू. ० |
| स्वपिस्वाम्येजां० | ६।१।१६ | उ. १४८ | उ. ४३२ |
| स्वयो नन् | ३।३।६१ | पू. २७० | पू. ० |
| स्वमजातिधनाख्या० | १।१।३५ | पू. १६ | पू. ८० |
| स्वमोर्नपुंसकात् | ७।१।२३ | उ. ३४६ | उ. ७०६ |
| स्वयं त्तन | २।१।२५ | पू. १११ | पू. ३६२ |

| | अ. | पा. | सू. | काशिका | पदमञ्जरी | | |
|---------------------------|----|-----|-----|--------|----------|-----|------|
| | | | | पृ. | पृ. | | |
| स्वरतिमृतिमूयति० | ७ | १२ | ४४ | उ. | ३८६ | उ. | ७७३ |
| स्वराटिनिपातमध्ययन् | २ | ११ | ३७ | सू. | १६ | सू. | ८३ |
| स्वरितञितः कर्त्र० | २ | ३ | ७२ | सू. | ७२ | सू. | ३५४ |
| स्वरितमाहदिते० | ८ | २ | १०३ | उ. | ५२३ | उ. | ६६६ |
| स्वरितात्संहितायाम्० | २ | २ | ३६ | १. | ४२ | सू. | १७६ |
| स्वरितेनाधिकारः | २ | ३ | १९ | सू. | ५५ | सू. | ३३९ |
| स्वरितो वानुदाने० | ८ | २ | ६ | उ. | ४६५ | उ. | ६३२ |
| स्वसुश्रुः | ४ | १ | १४३ | सू. | ३७० | उ. | ० |
| स्वागतादानां च | ७ | ३ | ७ | उ. | ४०६ | उ. | ८०५ |
| स्वाहाञ्छेतो ऽमानिनि | ६ | ३ | ४० | उ. | ३७९ | उ. | ५६७ |
| स्वाहाञ्छोपसर्जनाटसं० | ४ | १ | ५४ | सू. | ३४५ | उ. | ५४ |
| स्वाङ्गे तस्यत्यये ऋभ्योः | ३ | ४ | ६९ | सू. | ३९६ | सू. | ७३६ |
| स्वाङ्गे ध्रुवे | ३ | ४ | ५४ | सू. | ३९४ | सू. | ७३३ |
| स्वाङ्गभ्यः प्रसिते | ५ | ३ | ६६ | उ. | ५५ | उ. | ३०८ |
| स्वादिभ्यः ऋनुः | ३ | १ | ७३ | सू. | २०० | सू. | ५१७ |
| स्वादिभ्यसर्वनाम० | १ | ४ | १७ | सू. | ८९ | सू. | ३७५ |
| स्वादुमि गामुल् | ३ | ४ | २६ | सू. | ३०८ | सू. | ७२६ |
| स्वापेप्रचङि० | ६ | १ | १८ | उ. | १४८ | उ. | ४३९ |
| स्वामिन्नेश्वर्ये | ५ | २ | १२६ | उ. | ७० | उ. | ३३८ |
| स्वामीश्वराधिपति० | २ | ३ | ३६ | सू. | १४६ | सू. | ४३६ |
| स्वे पुषः | ३ | ४ | ४० | सू. | ३९९ | सू. | ७३९ |
| स्वैजसमौदङ्कटाभ्यां० | ४ | १ | २ | सू. | ३२६ | उ. | ९९ |
| ह एति | ७ | ४ | ५२ | उ. | ४५९ | उ. | ८६९ |
| हनः सिच् | १ | २ | १४ | सू. | ३४ | सू. | १५६ |
| हनंप्रच वधः | ३ | ३ | ७६ | सू. | २७५ | सू. | ६८२ |
| हनस्त च | ३ | १ | १०८ | सू. | २०८ | सू. | ५६५ |
| हनस्तो ऽचिपणालोः | ७ | ३ | ३२ | उ. | ४१७ | उ. | ८९३ |
| हनो वध लिङि | ३ | ४ | ४२ | सू. | १७९ | सू. | ४८२ |
| हन्त ष | ८ | १ | ५४ | उ. | ४८९ | उ. | ६०६ |
| हन्तेरत्पूर्वस्य | ८ | ४ | २२ | उ. | ५६४ | उ. | १०२६ |
| हन्तेर्जः | ६ | ४ | ३६ | उ. | ३०४ | उ. | ६५३ |
| हरतेरनुद्यमने ऽच् | ३ | २ | ६ | सू. | २२९ | सू. | ६९३ |
| हरतेर्दृतिनाशयोः० | ३ | २ | २५ | सू. | २२४ | सू. | ६९७ |
| हरत्युत्सङ्गादिभ्यः | ४ | ४ | १५ | सू. | ४३४ | उ. | २०२ |
| हरितादिभ्यो जः | ४ | १ | १०० | सू. | ३६० | उ. | ६८ |
| हरीतक्यादिभ्यप्रच | ४ | ३ | १६७ | सू. | ४६० | उ. | १६६ |
| हलः | ६ | ४ | २ | उ. | २६५ | उ. | ६२७ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| हलः प्रमः शान्तभौ | ३।४।८३ | पृ. २०२ | पृ. ५१० |
| हलदन्तात्सप्रभ्याः सं० | ६।३।६ | उ. २६३ | उ. ५८२ |
| हलन्ताच्च | १।२।१० | पृ. ३३ | पृ. १५० |
| हलन्यम् | १।३।३ | पृ. ५३ | पृ. २५४ |
| हलश्च | ३।३।१२९ | पृ. २८५ | पृ. ६६४ |
| हलश्चेजुपधात् | ८।४।३९ | उ. ५६६ | उ. १०२८ |
| हलसीराट्टक् | ४।३।१२४ | पृ. ४५९ | उ. २५४ |
| हलसीराट्टक् | ४।४।८९ | पृ. ४७७ | उ. २९४ |
| हलसूकरयोः पुषः | ३।२।१८३ | पृ. २५८ | पृ. ६३९ |
| हलस्तद्धितस्य | ६।४।१५० | उ. ३३३ | उ. ६६२ |
| हलादिः शेषः | ७।४।६० | उ. ४५३ | उ. ८६३ |
| हलि च | ८।२।७७ | उ. ५१५ | उ. ० |
| हलि लोपः | ७।२।१९३ | उ. ४०६ | उ. ७६८ |
| हलि सर्वेषाम् | ८।३।२२ | उ. ५३२ | उ. ६८० |
| हलोऽनन्तराः संयोगः | १।५।७ | पृ. ७ | पृ. ५३ |
| हलो यमां यमि लोपः | ८।४।६४ | उ. ५७४ | उ. १०३४ |
| हल्ङ्याद्यभ्यो ङोर्घा० | ६।५।६८ | उ. १६२ | उ. ४४६ |
| हल्यऽनन्तः पादम् | ३।२।६६ | पृ. ३३३ | पृ. ० |
| ह्रश्चतोलङ् च | ३।२।११६ | पृ. २४३ | पृ. ० |
| ह्रश्च च | ६।५।१५४ | उ. १७५ | उ. ४८९ |
| ह्रश्च वीहिकालयोः | ४।५।१४८ | पृ. २१८ | पृ. ६०८ |
| ह्रस्ताज्जाति | ५।२।१३३ | उ. ७२ | उ. ३३० |
| ह्रस्तादाने चरस्तेये | ३।३।४० | पृ. २६८ | पृ. ६७६ |
| ह्रस्ते वर्तिपहाः | ३।४।३६ | पृ. ३१९ | पृ. ७३९ |
| ह्रायनान्तपुवा० | ५।१।१३० | उ. ३५ | उ. २७६ |
| ह्रिसार्थां प्रतेश्च | ६।५।१४९ | उ. १८२ | उ. ४६५ |
| ह्रिसार्थानां च समा० | ३।४।४८ | पृ. ३५३ | पृ. ७३२ |
| ह्रि च | ८।५।३४ | उ. ४७६ | उ. ६०४ |
| ह्रितं भवाः | ४।४।६५ | पृ. ४७४ | उ. २५९ |
| ह्रिनुमीना | ८।४।१५ | उ. ५६५ | उ. १०३३ |
| ह्रिमकाश्रितेषु च | ६।३।५४ | उ. २७५ | उ. ६०४ |
| ह्रिरयपरिमाणा धने | ६।२।४५ | उ. २३४ | उ. ५४६ |
| ह्रीने | १।४।८६ | पृ. ६८ | पृ. ३३६ |
| ह्रीयमानपापयोगाञ्च | ५।४।४७ | उ. १९३ | उ. ३८७ |
| हुक्लभ्यो हीर्द्धः | ६।४।१०१ | उ. ३३० | उ. ६७६ |
| हुश्नुवोः सार्वधातुके | ६।४।८७ | उ. ३१७ | उ. ६७९ |
| हुक्कारन्यतरस्याम् | १।४।५३ | पृ. ६० | उ. ३९२ |

| | अ. पा. सू. | काशिका | पदमञ्जरी |
|--------------------------|------------|---------|----------|
| | | पृ. | पृ. |
| हृदयस्य प्रियः | ४।४।६५ | पृ. ४८० | उ. २१८ |
| हृदयस्य हृल्लेख्ययट० | ६।३।५० | उ. २०४ | उ. ६०३ |
| हृद्गतिस्त्वन्ते पूर्वप० | ७।३।१६ | उ. ४१३ | उ. ८०६ |
| हृषलामसु | ७।२।२६ | उ. ३८९ | उ. ७६६ |
| हेति त्रियायाम् | ८।१।६० | उ. ४८३ | उ. ६९९ |
| हेतुमति च | ३।१।२६ | पृ. ९६० | पृ. ५३२ |
| हेतुमनुष्यभ्यां ऽन्यत० | ४।३।८९ | पृ. ४३६ | उ. ९८० |
| हेतुहेतुमतौलिङ् | ३।३।१५६ | पृ. २६६ | पृ. ७०७ |
| हेतौ | ३।३।२३ | पृ. १४४ | पृ. ४३२ |
| हेमन्तशिशिराव० | ३।४।२८ | पृ. १६६ | पृ. ४७६ |
| हेमन्ताच्च | ४।३।२९ | पृ. ४२६ | उ. ० |
| हे मपरे वा | ८।३।२६ | उ. ५३२ | उ. ६८९ |
| हेरचङि | ७।३।५६ | उ. ४२६ | उ. ८२४ |
| हेयङ्गवीनं मञ्जायाम् | ५।२।२३ | उ. ४३ | उ. २८६ |
| हेहेप्रयोगे हेहयोः | ८।२।८५ | उ. ५९६ | उ. ६६३ |
| हो ङः | ८।२।३५ | उ. ५०३ | उ. ६४५ |
| होत्राभ्यश्कः | ५।१।१३५ | उ. ३७ | उ. २८९ |
| हो हन्तेर्शिर्षात्पु | ७।३।५४ | उ. ४२५ | उ. ८२३ |
| ह्यन्तत्तणप्रवसजा० | ७।२।५ | उ. ३६६ | उ. ७५० |
| ह्रस्वः | ७।४।५६ | उ. ४५३ | उ. ८६३ |
| ह्रस्वं लघु | १।४।१० | पृ. ८० | पृ. २७० |
| ह्रस्वनद्यापो नुद | ७।१।५४ | उ. ३५४ | उ. ७२९ |
| ह्रस्वनुदभ्यां मतुप् | ६।१।१७६ | उ. ९६३ | उ. ५९३ |
| ह्रस्वस्य गुणः | ७।३।१०८ | उ. ४३८ | उ. ८४९ |
| ह्रस्वस्य िपति कति० | ६।१।७९ | उ. १६४ | उ. ४५४ |
| ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तर० | ६।१।१५९ | उ. १८५ | उ. ४६८ |
| ह्रस्वात्तादा तद्धिते | ८।३।१०९ | उ. ५५२ | उ. १०९९ |
| ह्रस्वादङ्गात् | ८।२।३७ | उ. ५०२ | उ. ६४३ |
| ह्रस्वान्तन्यात्पूर्वम् | ६।२।१७४ | उ. २५५ | उ. ५७९ |
| ह्रस्वे | ५।३।८६ | उ. ६३ | उ. ३६४ |
| ह्रस्वो नपुंसके० | १।२।४७ | पृ. ४४ | पृ. ९८७ |
| ह्रस्वरेषकन्दसि | ७।२।३९ | उ. ३८२ | उ. ७६६ |
| ह्र्वादा निष्ठायाम् | ६।४।६५ | उ. ३९६ | उ. ६७५ |
| ह्र्यः संप्रसारणम् | ६।१।३२ | उ. १५२ | उ. ४३६ |
| ह्रुः संप्रसारणं चन्य० | ३।३।७२ | पृ. २७५ | पृ. ६८२ |
| ह्रुवामश्च | ३।२।३ | पृ. २९६ | पृ. ६९९ |

समग्रं चेदं काशिकापदमञ्जर्याः सूचीपत्रम् ॥ शुभं भवतु ॥

श्रीगणपतयेनमः ॥

काशिकाव्याख्या पदमञ्जरी ।

“व्याप्प्रातिपदिकात्” ॥ ‘अधिकारोयमिति’ । विधेयपरिभाष्य-
योरनिर्देशाद्बहुवचनानां च स्वादीनां प्रकृत्यपेक्षत्वात्स्वरितत्वाच्च ‘आ
पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेरिति’ । अधिकारस्यावधिं दर्शयति । अधिकारोने-
कप्रकारः संज्ञाधिकारो विशेषणाधिकारः प्रकृत्यधिकारश्चेति, तत्र ऋद्धि-
शोयमधिकार इत्यत्र आह । ‘स्वादिषु कर्पर्यन्तेशु प्रकृतिरधिक्रियतइति’ ।
‘टाब्डापचापां चाबितीति’ । सामान्यग्रहणमित्यनुषङ्गः । ‘समा-
हारनिर्देश इति’ । समाहारद्वन्द्वेन तेषां व्यादीनामयं निर्देश इत्यर्थः ।
ततश्च समाहारस्यैकत्वादेकवचनमेव युक्तं न बहुवचनमिति भावः ।
किमर्थमिदमुच्यते व्याप्प्रातिपदिकात्परं स्वादयो यथा स्युरिति केवलानां
प्रयोगो मा भूत्, परश्चेति वचनात्केवलानां प्रयोगो न भविष्यति, इदं
तर्हि प्रयोजनं व्याप्प्रातिपदिकादेव यथा स्युरिति प्रकृत्यन्तरान्मा भूवन्,
असति ह्यस्मिन्नधिकारे धातुस्तिङन्तं वाक्यं सुबन्तं चेति व्याप्प्रातिपदि-
कव्यतिरिक्तापि चतुर्विधा प्रकृतिरस्ति, वक्ष्यमाणाश्च प्रत्ययाश्चतुर्विधाः
स्वादयष्टाबादयो ऽणादयः स्वार्थिकाश्चेति, तदिह चतुर्विधाभ्यः प्रकृति-
भ्यश्चतुर्विधाः प्रत्यया मा भूवन्निति कर्तव्य एवायमधिकारः, न कर्तव्यः ।
ननु चासत्यस्मिन् धात्वधिकाराद्घातोरेव स्युः कृदुपपदसंज्ञे च स्यातां वास-
रूपविधिश्च स्यात् । न, निवृत्तत्वाद्घातुग्रहणस्य, यदि परं धातोरपि स्युः,
तदपि न, कर्मादीनामभावात् । कर्मादिषु च कारकेष्वेकत्वात्क्रियायां च
संख्यायां स्वादयो विधीयन्ते, न च धात्वर्थस्य कर्मादिभिर्योगः सम्भ-
वति, कथं तर्हि कर्मणि तव्यदादयो भवन्ति, नैव धात्वर्थस्य कर्मत्वे
तव्यदादयो भवन्ति किं तर्हि धात्वर्थं प्रति यत्कर्म तस्मिन्वाच्ये कर्तव्यः
कठं इति, स्वादयस्तु प्रकृत्यर्थस्य कर्मत्वे चरितार्था नान्यस्य कर्मत्वे भवि-
तुमर्हन्ति, तव्यदादिभिश्च बाधितत्वाद्घातोः स्वादीनामभावः । ननु च

धात्वर्थस्यैव कर्मत्वं दृष्टं, मन्प्रकृतौ चिकीर्षतीत्यादौ, एवमपि संख्याभावः सिद्ध एव, अव्ययेभ्यस्त्वययादाप्सुप इति जापकात्स्वादयो भवन्ति, यत्पुनर्बहुषु बहुवचनमित्यत्रोक्तं यत्र च संख्या सम्भवतीति तदस्यां दशायां तथा नाश्रीयते, टाबादयस्तर्हि धातोर्मा भूवचिति, स्त्रियां टाबादयो विधीयन्ते, न च धात्वर्थस्य स्त्रीत्वेन योगोस्ति, कथं तर्हि स्त्रियां क्तिच्चादयो विधीयन्ते, नैवात्र धात्वर्थस्य स्त्रीत्वे क्तिच्चादयः स्मर्यन्ते, कस्य तर्हि, यस्तस्य सिद्धत्वं नाम धर्मस्तस्य, क्तिच्चादिभिश्च बाधितत्वाट्टाबादीनामभावः । अणादयस्तर्हि धातोर्मा भूवचिति । अपत्यादिष्वर्थेष्वणादयो विधीयन्ते न च धात्वर्थस्यापत्यादिभिर्योगोस्ति, समर्थविभक्त्यभावाच्चाणादीनामनुत्पत्तिः, तस्यापत्यं, तेन रक्तं, तत्र भव, इत्येवमादिभिः षष्ठादि-विभक्त्यन्तादणादयो विधीयन्ते, न च धातोर्विभक्तिः सम्भवति, स्वार्थिका अपि स्वार्थिकैस्तुमुत्रादिभिर्बाधितत्वादेव धातोर्न भविष्यन्ति, तिङन्ता-स्तर्हि स्वादयो मा भूवचिति, तिङन्तेषु क्रिया प्रधानभूता साधनं गुणभूतं, तत्र प्रधानभूतायाः क्रियायाः कर्मादीनामभावात्स्वादयो न भविष्यन्ति । पचति भवति, भवति वै किञ्चिदाचार्याः क्रियमाणमपि चोदयन्तीत्यादौ कर्तृत्वं दृष्टमिति चेत्, एवमपि संख्याया अभावः सिद्ध एव, यस्तु गुणभूतः कर्त्ताभिधीयते तत्राभिहितत्वादेव विभक्त्यभावः सिद्धः, न च गुणभूतस्य कर्तुः क्रियान्तरावेशः सम्भवति, यतः पाचकं पश्येत्यादिवद् द्वितीयादयो भवेयुः । ननु पुत्रीयवदेतत्स्यात्, तद्वया, पुत्रीयशब्दादन्तर्भूत-क्रियाकर्मवाचिनः कर्त्तरि लकार उत्पद्यते पुत्रोयतीति, तथेहापि पचतिशब्दात्कर्तृविशिष्टक्रियावाचिनः कर्मादिषु द्वितीयादयः स्युरेव, नैष दोषः । उक्तमेतत्, प्रकृत्यर्थस्य कर्मत्वे चरितार्थाः स्वादयो नान्यस्य कर्मत्वे भवितुमर्हन्तीति, न चैकक्रियापेतयोर्भिन्नयोः साधनयोरेकस्मिन्यदे युगपदभिधानं सम्भवति, पुत्रीयशब्दस्तु जीवत्यादिधातुर्वादिशिष्टक्रिया-वचन इति ततः कर्त्तरि लकारोत्पत्तिरविरुद्धा, अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्, अर्थभावादेव तिङन्ताद्वितीयादयो न भवन्तीति । यो हि मन्यते इमाप्रा-तिपदिकाधिकाराच्च भवन्तीति रूपवाद्यन्तात्तस्य द्वितीयादयः स्युरेव पच-

तिरूपं पश्य पचतिरूपेण कृतमित्यादि, भवति ह्येतत्प्रातिपदिकं, कथं तर्हि रूपबाधन्तात्प्रथमैकवचनमपि भवति उक्तत्वात्सङ्ख्यायाः, न हि तत्कर्तुः सङ्ख्यायामेकवचनं यदि तथा स्यात् पचतेरूपं पचन्तिरूपमिति द्विवचन- बहुवचने स्यातां, प्रातिपदिकार्थेन्यत्र तु प्रातिपदिकग्रहणात्प्रातिपदिक- मात्रानुबन्धिनी प्रथमा भवति तत्राप्येकवचनमेव, एकवचनमुत्सर्गः करिष्यतइति वचनात् । न चैवं तिङन्ते ऽपि प्रसङ्गः, तस्याप्रातिपदिक- त्वात् । टाबादयस्तर्हि तिङन्तान्माभूवन्निति, स्त्रियां टाबादयो विधी- यन्ते, न च तिङन्ते प्रधानस्यार्थस्य स्त्रीत्वेन योगोस्ति, यदि परं साध- नस्य स्त्रीत्वे टाबादयः स्युः पचेद्वाह्नयो पचेरन् ब्राह्मण्य इति, तदपि न, स्वभावतो हि तिङन्तानि साधनाश्रयां सङ्ख्यामेवोपाददते न लिङ्गम् । उक्तं च ॥

एकत्वेपि क्रियाख्याते साधनाश्रयसंख्यया ।

भिद्यते न तु लिङ्गाख्यो भेदस्तत्र तदाश्रयः ॥

इति । शोभनं पचतीत्यादौ क्रियाविशेषणस्यैव लिङ्गेन योगो न क्रियायास्तत्रापि नपुंसकेन । पचतिरूपमित्यादावपि रूपबाधन्तवाच्यायाः क्रियायाः स्वभावतो लिङ्गेन योगस्तत्रापि नपुंसकेन, विचित्रा हि शब्दानां शक्तयो यथादर्शनमभ्युपगन्तव्याः, न सामान्यतो दृष्टेनानुमानेन व्यव- स्यापयितुं शक्यन्ते । अश्रयं चैतदेवं विज्ञेयं स्त्रीत्वाभावात्तिङन्ताट्टाबा- दयो न भवन्तीति, अन्यथा पचतिरूपं ब्राह्मणीत्यादौ रूपबाधन्ताट्टा- प्यादेव, अणादयस्तर्हि तिङन्तान्माभूवन्निति, अपत्यादिष्वर्थेष्वणादयो विधीयन्ते, न च तिङन्ते प्रधानस्यापत्यादिभिर्योगोस्ति । अप्रधानस्य त्व- प्रधानत्वादेवापत्यादिभिर्योगाभावः, समर्थविभक्त्यभावाच्चाणादभावः सिद्धः, अश्रयं चैतदेवं विज्ञेयम्, अन्यथा यः पचतिरूपं तस्यापत्यमिति रूपबाधन्तादणादयः स्युरेव, स्वार्थिका अपि ज्ञापकात्तिङन्तात्र भवि- ष्यन्ति यदयं क्व चित्तद्वितविधौ तिङ्यहणं करोति अतिशयने तमबि- ष्टनौ तिङश्चेति, वाक्यादपि नैव स्वादयो भवितुमर्हन्ति कर्मादीना- मभावात् । न खलु क्रियारूपस्य संसर्गरूपस्य भेदरूपस्य वा वाक्यार्थस्य कर्मादिभिः स्त्रीत्वेनापत्यादिभिर्वा योगः सम्भवति । पश्य मृगो धावती-

त्यादौ दृष्टमिति चेदेवमपि संख्यायोगाभावः सिद्धः, स्वार्थिका अप्यभिधानाभावाच्च वाक्याद्भविष्यन्ति । तथाहि । देवदत्तारोहाश्वमित्यस्पा-
 द्वाक्यात्प्राग्वीयेष्वर्थेषु के सुब्रुकि च कृते वाक्यार्थस्यासत्त्वभूतत्वाच्छ-
 क्तिलिङ्गसङ्ख्यायोगाभावात्स्वाद्व्युत्पत्तेरभावाद्देवदत्तारोहाश्वकेति भवित-
 व्यम्, न चैवंभूतेन वाक्यार्थगताः कुत्सादयो गम्यन्तइति, सुबन्तादपि नैव
 स्वादयो भवितुमर्हन्ति नहि स्वादिषु विधीयमानेषु तदन्ता प्रकृतिः सम्भ-
 वति, यथोक्तं, सनन्तान्निष्यतइति, किं च सुबन्तमपि सङ्ख्याप्रधानं कार-
 कशक्तिप्रधानं वा, न चास्यापरैः कर्मादिभिर्योगः सम्भवति, टाबादयोरपि
 स्त्रीत्वाभावाच्च भविष्यन्ति । अणादिषु पुनर्नास्ति विशेषः सुबन्ताद्वोत्पत्तौ
 सत्यां प्रातिपदिकाद्वा, यथा चैतत्तथा समर्थानां प्रथमाद्वेत्यत्र प्रतिपायि-
 ष्यामः, सर्वथा रूपबाधन्तात्प्रातिपदिकादप्यनिष्ठः प्रत्ययो यद्वत् तद्वद्वा-
 त्वादिकादपीति नार्थ एतेनेत्याक्षेप्ता शङ्कते तावत् । 'यद्वपीति' । 'प्रत्य-
 यपरत्वेन' प्रकृतिर्लभ्यते,' पारिशेष्याच्चैयमेव प्रकृतिर्लभ्यतइत्यर्थः । परिह-
 रति । 'तथापीति' । वृद्धादयो लक्षणं निमित्तं यस्य प्रत्ययविधेस्तत्र ड्या-
 प्प्रातिपदिकस्य विशेष्यत्वेन सम्प्रत्ययो यथा स्यादित्येवमर्थमित्यर्थः । 'इत-
 रथा हीति' । यदि ड्याप्प्रातिपदिकग्रहणं न क्रियेतेत्यर्थः । 'समर्थविशेष-
 णमेतत्स्यार्थिति' । समर्थानां प्रथमाद्वेत्यधिकारात् । किं च समर्थं सुब-
 न्तं, समर्थविशेषणे सति को दोषः, उदीचां वृद्धादगोत्रादिति फिन् इह
 च प्रसज्येत ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यमिति एतद्वि समर्थं वृद्धम्, इह च न
 स्यात् ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यमिति नक्षेत्समर्थं वृद्धम् । अथ वृद्धु । प्राचाम-
 वृद्धात्फिन् बहुलमिह च प्रसज्येत ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यमिति, एतद्वि सम-
 र्थमवृद्धम् । इह च न स्यात् ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यमिति, नक्षेत्स-
 मर्थमवृद्धं, यत्र ह्यादेशादिवशेन सङ्ख्याविशेषाभिव्यक्तिर्भवति न भवति
 तत्र द्विवचनबहुवचनान्तानामपि वृत्तिस्तावको मामक इति, यथा इह
 च फिञ्जुत्यद्वयमानो बहुत्वमन्तरेण वृद्धत्वानुपपत्तेर्बहुत्वं गमयेत्, एवं
 फिञ्चि द्वित्वमिति स्यादेवायं प्रसङ्गः, अथवा । अत इञ्, इहैव स्यात्

दक्षस्यापत्यमिति, दक्षयोर्दक्षणामित्यत्र तु न स्यात् । स्वर । अनुदात्तादेश्च,
इह च प्रत्यज्येत वाचो विकारः त्वचो विकारः, एतद्वि समर्थमनुदात्तादि
सावेकाचइति विभक्तेरुदात्तत्वात्, नन्वत्रैकाचो नित्यं मयटमिच्छन्तीति
मयटा भाव्यम्, इदं तर्हि पञ्चानां विकार इति षड्त्रिचतुर्भ्यां हलादिरिति
विभक्तेरुदात्तत्वे सति समर्थमनुदात्तादि, प्रातिपदिकं तु चः सङ्ख्याया इत्या-
द्युदात्तम्, इह च न स्यात् सर्वेषां विकार इति, सर्वस्य सुपीत्याद्युदात्तं पदं
प्रातिपदिकं त्वन्तोदात्तं निपातितम् । द्वच् । नौद्युचष्टन् इह च प्रसज्येत
वाचा तरति त्ववा तरति, एतद्वि समर्थं द्वच्, नौद्युचष्टन् तु नियमार्थं स्यात्
त्रैकारान्ताद्यदि भवति नौशब्दादेवेति, इह च न स्यात् घटेन तरतीति,
साम्ना तरतीत्यादौ पुङ्गवभयथापि सिद्धं ड्याप्रप्रातिपदिकग्रहणे तु सति
तस्मात्प्रत्याप्तस्यैव विशेषणं वृद्धादि भवति समर्थाधिकाराच्च समर्थप्र-
त्ययः, तत्रैवमभिसम्बन्धः, वृद्धादि यन्ड्याप्रप्रातिपदिकं तस्मात्समर्थात्प्र-
त्यय इति, यस्मात्प्रत्ययविधिरिति प्रत्ययविधौ पञ्चमीनिर्दिष्टेषु विधीय-
माना अङ्गभपदसंज्ञा ड्याप्रप्रातिपदिकस्य यथा स्युरित्येतत् प्रयोजनं न
भवति, कथं दैवेन हि जानता यत्ः प्रत्ययो विहितस्तस्यैताः संज्ञाः
पञ्चम्याः निर्दिश्यतां मा वा निर्दिशि, इह च कंसीयपरशब्दयोर्ग्रजौ
लुक्त्वेति प्रातिपदिकात्परयोश्च्यतेर्लुग्यथा स्यादौणादिकयोश्कारपशब्द-
योर्मा भूदित्येतदपि न प्रयोजनं, कथम्, उणादयो ऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदि-
कानि, उणादिषु नावश्यं व्युत्पत्तिकार्यं भवतीत्यर्थः । एतच्चातः कृकमिकं-
सेत्यत्र कमियहणेनैव सिद्धे पुनः कंसयहणाद्विज्ञायते, तस्माद् वृद्धाद्वेव प्र-
योजनमधिकारस्य । ड्याग्रहणं क्रियते प्रत्ययान्तत्वेनाप्रातिपदिकत्वात्,
यूनस्तिः युवतिरित्यस्य तु तद्वितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वम्, ऊङुत इत्यव-
गोन्तादूङ् विधीयते तत्रैकादेशस्यान्तवद्वावात्प्रातिपदिकत्वं, श्वशुरयो-
काराकारलोपश्चेति श्वशुरित्यत्र श्वशुरः श्वश्वेश्चेति निपातनाद्विभक्त्या-
दिसिद्धिः, एवं स्थिते चोद्यम् । 'अथेति' 'न प्रातिपदिकग्रहणइति' ।
नञः काक्का प्रयोगात्सिद्धमेवेत्यर्थः । अनेकार्थत्वाद्वा निपातानाम् । ननु
शब्दस्यार्थे नशब्दो द्रष्टव्यः । 'लिङ्गविशिष्टस्येति' । लिङ्गनिमित्तप्रत्ययेना-

धिकस्येत्यर्थः । अस्याश्च परिभाषायाः प्रयोजनं सर्वनामस्वरसमासोपचारे-
 ष्टवद्वावाः । सर्वनाम । भवच्छब्दस्य विधीयमाना सर्वनामसंज्ञा भवतीशब्द-
 स्यापि भवति, सर्वनाम्स्तृतीया च, भवता हेतुना भवतो हेतोर्भवत्या हेतुना
 भवत्या हेतोरिति । स्वर । कुशूलकूपकुम्भशालं बिले, कुशूलबिलं कुशूली-
 विलम् । समास । पूर्वसदृश । मातृसदृशः मातृसदृशी । सदृशप्रतिरूप-
 योरिति स्वरोप्यत्र भवति, तथा कुमारः श्रमणादिभिः कुमारी श्रमणा,
 कुमारश्रमणा, एवं युवतिर्वलिना युवबलिना । उपचार । अतः कृकमिकं-
 सकुम्भ । अयस्कम्भः अयस्कम्भी । इष्टवद्वाव । गाविष्टवत्प्रातिपदिकस्य,
 कुमारीमाचष्टे कुमारयति, इह त्वचित्तहस्तिधेनोष्ठक् हस्तिनीनां समूहो
 हास्तिकमिति, भस्याङ् तद्विते इति पुंवद्भावेन ङीप् निवृत्ते हस्तिशब्द
 एवायमिति ठक्सिद्धिः, तद्वितइत्येषा हि विषयसप्तमी, अवश्यं च पुंव-
 द्वाव एवाश्रयणीयः, अन्यथा हस्तिनीशब्दाट्टकि प्रस्यतिलोपस्य स्यानिव-
 द्वावाचस्तद्वितइति टिनोपो न स्यात्, इह च नेन्मिद्वभातिपु च स्याण्ड-
 लशायिनीति गतिकारकोपपदानां कृद्विः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्प-
 त्तेरिति वचनादनृत्यचएव ङीप्, समासे सतीचन्तमेवोत्तरपदमित्यलुक्-
 प्रतिषेधः सिद्धः, एवं शयवासवासिष्वकालात् यामेवासिनीत्यलुक्, तथा
 क्यङ्मानिनोश्च स्वाङ्गाञ्चेतोमानिनि दर्शनीयमानिनी दीर्घमुखमानिनी
 मानिन्शब्द एवोत्तरपदमिति पुंवद्वावः सिद्धः । इह च वृजकाभ्यां कर्त्तरि
 कर्त्तरि चेति कर्त्तरि यौ वृजकौ ताभ्यां योगे या षष्ठी तस्या येनयेन
 सह समासः प्राप्तः स सर्वा न भवतीति विज्ञानादपां सृष्टीत्यत्रापि
 समासनिषेधः सिद्धः । यद्वि प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं
 भवति अतिप्रसङ्गो भवति द्विषत्परयोस्तापेः द्विषतीताप इत्यत्रापि
 स्यात् । उक्तमत्र द्विषत्परयोरिति द्वितकारकोयं निवृत्तः तकारान्तो
 द्विषच्छब्दइति, इह च गार्ग्यो अपत्यं दाह्या अपत्यमिति यत्रिज्ञाश्चेति
 फकं परत्वात्स्त्रीभ्यो ङवाधते, इह च ज्नित्यादिर्नैत्यं दासिः ग्लुचुका-
 यनिरित्यस्यामवस्थायामाद्युदात्तत्वे कृते पश्चादितो मनुष्यजातेरिति ङीप्
 सति शिष्टः प्रत्ययस्वर एव भवति दातो ग्लुचुकायनी, न चास्यामव-

स्यायामाद्युदात्तत्वं पुनः प्रवर्त्तते पूर्वमेव प्रवृत्तत्वात्, तथा बहवो गोम-
न्तोस्यां बहुगोमतीति प्रागेव बहुस्वरे प्रवृत्ते पश्चान्डीप् पित्वादनुदात्तो
भवति, न च पुनरपि बहोर्नञ्चदित्यस्य प्रवृत्तिः पूर्वमेव प्रवृत्तत्वात्समा-
साच्चात्र डीबुत्यत्र इत्युत्तरपदं न लिङ्गविशिष्टम्, इह तर्हि राजाहः-
सखिभ्यश्च मद्राणां राज्ञीति टच् स्यात् ततश्च भस्याठेतद्वितइति
पुंवद्भावेन ईकारे निवृत्ते टिलोपे च टित्त्वान्डीपि मद्रराज्ञीति स्यान्म-
द्रराज्ञीति चेष्यते, तथा महती प्रिया यस्य महतीप्रिय इति पुंवद्भाव-
प्रतिषेधविषये आन्महत इत्यात्वं स्यात् तथाऽऽर्यो ब्राह्मणकुमारयोः,
राजा च राजब्राह्मणीत्यत्रापि स्यात्, तथा विभक्त्याश्रयं यत्कार्यं
विभक्तौ परतो विभक्तेर्वा तत्रापि दोषो यथा न गोश्वन्साववर्णति, शुना
शुन इत्यत्र सावेकाच इति प्राप्तं विभक्तेरुदात्तत्वं न भवति, तथा
गौरादिडीषन्तात् शुन्या शुन्यै इत्यादावप्युदात्तयणो हलपूर्वादित्यस्यापि
निषेधः स्यात्, उगिदत्रामिति नुम् गोमतीत्यादावपि स्यात्, चतुरनडु-
होराम् अनडुहीत्यत्रेकारात्परः स्याद्, पथिमथ्रुभुत्तामात् शोभनः पन्था
अस्यामिति न पूजनादिति समासान्ते निषिद्धे च्चेभ्यो डीपि भस्य टेलीपे
सुपथीत्यत्रापि स्यात्, अङ्गाधिकारे तदन्तस्यापि ग्रहणात्सुपन्थादितिव,स्युं-
सोसुङ् सुपुंसीत्यत्रापि स्यात्, शोभनाः पुमांसोस्यामिति, उरःप्रभृतिषु पुमा-
निति विभक्त्यन्तस्य पाठादेकवचनान्तादेव नित्यं कप् भवति बहुवचना-
न्तस्य तु शेषाद्विभाषेति विकल्पित एवेति कबभावपत्ते पूङ्गे ह्रस्वः मसुश्च
प्रत्ययः, अकार उच्चारणार्थः, तत्र प्रत्ययस्योगित्वाद्गितश्चेति डीप्, सख्यु-
रसम्बुद्धौ अनङ्साविति णित्त्वान्डी सखी सख्यावित्यादावपि स्यातां
सख्यशिश्वीति भाषायामिति डीष्विधानं तु सखीभ्यामित्याद्यर्थं स्यात्,
विभाषा भवद्गुणदधवतामित्यत्र त्ववशब्दः सम्बुद्धाविति विशेष्यते तत्र
येन नाञ्चवधानमित्येकेन वर्णेन व्यवाये औत्वं प्रवर्त्तमानमिह न भवति
हे भगवति हे अघवतीति तदभावात्तत्सन्धियोगशिष्टस्य इत्वस्याप्यभावः,
श्वयुवमघोनामतद्वितइत्यत्राप्यल्लोपोन इत्यन्तेन इत्यपकर्षाद्युवतीः
पश्येति सम्प्रसारणाभावात्, तदेवं लिङ्गविशिष्टपरिभाषायाः सन्ति प्रयोज-

नानि सन्ति च दोषाः, यानि प्रयोजनानि तदर्थमेवा कर्तव्या प्रतिविधेयं दोषेषु, प्रतिविधानं च शक्तिलाङ्गुल्यत्र घटयहणेनैव सिद्धे घटोयहण-
मस्याः परिभाषाया अनित्यत्वज्ञापनार्थमिति, तत्रैवं स्थितमेतत् ड्याब्-
हणमनर्थकं प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणादिति । परिह-
रति । 'नैतदस्तीति' । 'स्वरूपविधिविषय इति' । स्वरूपाश्रयो विधिः
स्वरूपविधिः, स चासौ विषयश्च तत्रेत्यर्थः । किमुक्तं भवतीत्याह ।
'प्रातिपदिकस्वरूपग्रहणे सतीति' । कुत एतदित्यत आह । 'तथा चेति' ।
यथा च युवञ्छब्दस्य जरतीशब्देन समासवचनमत्रार्थं ज्ञापकं तथा तत्रैव
प्रतिपादितम् । 'तादृशमेवेति । प्रातिपदिकस्वरूपग्रहणे लिङ्गविशिष्ट-
स्यापि ग्रहणं भवतीति यदुक्तं तदनुगुणमेवेत्यर्थः । यदि स्वरूपविधिवि-
षये परिभाषेयं, कथमिष्टवद्भावः कुमारीमाचष्टे कुमारयतीति, बाहुलका-
त्सिद्धिं मन्यते, चुरादौ हीदं पठ्यते प्रातिपदिकाद्वात्वर्थं बहुलमिष्टव-
च्चेति । भाष्ये तु यथाकथं चित्प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रह-
णमिति स्थितं, तथा च सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येकइति क्विप् इत्यन्तादपि
भवति यामिनयन्त्यहानीति । किं चेत्यादिना प्रयोजनान्तरं समुच्चि-
नोति । 'कालितरेति' । कालशब्दाज्ज्ञानषट्पादिसूत्रेणङीष् तरेपि
घरूपकल्पेत्यादिना इत्यर्थः, किं पुनः कर्मणं तदन्तात्तद्विधित्वविधिर्न सिद्ध-
तीत्याह । 'विप्रतिषेधाद्धीति' । स्त्रीप्रत्ययस्यावकाशः प्रकर्षविद्यतायां
कालीति, प्रकर्षप्रत्ययस्यावकाशः स्त्रीत्वाविवक्षायां कालतर इति, उभय-
विवक्षायामुभयप्रसङ्गे परत्वात्तद्विधितः स्यात्, ड्याब्ग्रहणे तु सति तरविविधौ
प्रकृतित्रयाधिकारसामर्थ्यात्पूर्वं ड्यापौ भवतः पश्चात्तरविति सिद्धमि-
ष्टम् । ननु च स्त्रीत्वान्तरङ्गत्वात्तच्चिमित्तः प्रत्ययान्तरङ्गः प्रकर्षस्तु
बाह्यप्रतियोग्यपेक्षत्वाद्बहिर्ङ्गः, ततस्तच्चिमित्तस्य प्रत्ययस्यापि बहिर्-
ङ्गत्वं, योष्यज्ञातादिष्वर्थेषु प्रागिज्ञात्को विधीयते सोऽयज्ज्ञाताद्ययोपेक्ष-
त्वाद्बहिर्ङ्ग एव, विभक्त्यन्तस्य हि सतः पश्चादज्ञातादियोगो भवति,
विभक्त्यश्च संख्याकर्माद्यपेक्षाः प्रागेव संख्याकर्मादियोगाल्लङ्गेन प्राति-
पदिकं युज्यते । उक्तं च । स्वार्थमभिधाय शब्दे निरपेक्षा द्रव्यमाह

समवेतं, समवेतस्य तु वचने लिङ्गं संख्यां विभक्तिं चाभिधाय तान्विशेषानवेक्षमाणश्च पूर्णमात्मानमप्रियकुत्सनादिषु ततः प्रवर्त्तते ऽसौ विभक्त्यन्त इति, युक्तं चैतत् । तथाहि । नागृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिरिति पूर्वं विशेषणभूतः स्वार्थाभिधातव्यः पश्चात्तद्विशिष्टं द्रव्यं तस्य धर्मित्वेन प्रधानत्वात्, ततो लिङ्गमन्तरङ्गत्वात्संख्या हि भेदापेक्षत्वाद्बुद्धिरङ्गा सापि तु सजातीयापेक्षा विजातीयकर्मादिकारकशक्त्यपेक्षेभ्यः कारकेभ्योन्तरङ्गेति, ततस्तस्या अभिधानं, ततः कारकाणामेवं परिपूर्णार्थस्य पश्चात्कुत्सनादिभिर्योगः, स्वार्थादयो हि कुत्सनादिहेतवो द्रव्यस्य पण्डितक इत्यादौ तथावसायात्, तदेवमन्तरङ्गः स्त्रीप्रत्ययः बहिरङ्गास्तद्विताः, अन्तरङ्गबहिरङ्गयोश्चायुक्तो विप्रतिषेधः । इह तर्हि वर्णे चानित्ये, रक्ते, कालाच्चेत्यस्यावकाशः स्त्रीत्वाविवक्षायां कालक इति, स्त्रीप्रत्ययस्य कालीत्यवकाशः, कालिकेत्यत्रोभयप्रसङ्गे परत्वात्कन् स्यात् तस्य चात्यन्तस्वार्थकत्वात् तदपेक्षं स्त्रीप्रत्ययस्यान्तरङ्गत्वमस्ति, नास्त्यत्र विशेषः, कालशब्दादप्युत्पत्तौ प्रत्ययस्याद्वितीत्वे कालिकेति सिद्धं, यदा तर्हि हरितशब्दात् सामिषचनइति प्रतिषेधेन ज्ञापितोत्यन्तस्वार्थकः कन् क्रियते तदा वर्णादनुदात्तादिति ङीर्कारौ बाधित्वा परत्वात्कन् स्यात्ततश्च हरिकेति न स्यात्, हरितशब्देन सामानार्था हरिशब्दास्ति ततः कनीत्वे च भविष्यति, हरितशब्दात् हरिकेति, अयं तर्हि लोहितान्मणावित्यत्यन्तस्वार्थकः कन् वर्णादनुदात्तादिति ङीर्कारौ परत्वाद्बाधेत ततश्च लोहितिकेत्येव स्यात् लोहितिकेति, उभयमपीष्यते तदर्थं व्याख्यहणम् । ननु च लोहिताल्लिङ्गबाधनं वेत्यनेनैवैतत्सिद्धं, तत्र वक्तव्यं भवति, कथं, वर्णादनुदात्तादित्यत्र वेति वत्तते तत्र व्याबन्ताभ्यां लोहिनीलोहिताशब्दाभ्यां कनि विहिते यथायोगं ह्रस्वत्वत्वयोः कृतयोर्लोहितिका लोहितिकेति सिद्धमिह, तदेवं सति व्याख्यहणे लिङ्गनिमित्तेन प्रत्ययेन विकल्पेन बाधा यथा स्यान्नित्यं माभूदित्येवमर्थं तावत्र वक्तव्यं लोहिताल्लिङ्गबाधनं वेति, नापि प्रतिपदविहितत्वेन कना लिङ्गनिमित्तस्य प्रत्ययस्य नित्ये बाधे प्राप्ते विकल्पेन बाधा यथा स्यादित्येवमर्थ-

मपि वक्तव्यं, इयाव्यहणस्यानन्यार्थत्वात् । यदि स्येतश्चेतशब्दाभ्यामत्यन्त-
स्वार्थकः कनिष्यते तदा तत्र इयाव्यहणस्य चरितार्थत्वान्नोहितशब्दा-
त्प्रतिपदविहितेन कना डीपो नित्ये बाधे प्राप्ते तद्वक्तव्यं, तदापि वा न
वक्तव्यं, लोहितान्मणावित्यस्यापि पुत्रपुंसकयोश्चरितार्थत्वात् । तदेव
मत्यन्तस्वार्थकोपि कन् इयन्ताद्यथा स्यादिति डीव्यहणं तावत्कर्त्त-
व्यम्, आब्यहणं तु विस्पष्टार्थं, तत्र समासान्तेषु दोषः, बहवो गोमन्तो
ऽस्यां नगर्यामिति बहुव्रीहौ कृते स्त्रिया अन्यपदार्थत्वान्डीप् च प्राप्नोति
कप् च इयाव्यहणान् डीपि कृते कप् स्यात् ततश्च बहुगोमतीकेति रूपं
स्यात् बहुगोमत्केति चेष्यते, नैष दोषः। समासार्थादुत्तरपदादकृत एव समासे
समासान्ता भवन्ति पश्चात्तदन्तेन समासः, एवं हि समासं प्रत्यन्तावय-
वत्वमुपपद्यते समासान्तानां, तथा च न कपीत्यत्र वक्ष्यति । तत्र चोत्त-
रपदे समासार्थाया विभक्तेः पुरस्तात्समासान्ता इति के चित् । परस्ता-
त्समासान्तेषु सुब्रुकि तद्विधान्तत्वेन ततः सुपि सुबन्तस्य समास इत्यन्ये ।
सर्वथा बहुचर्मिकेतीत्वं न प्राप्नोति, असुप इति प्रतिषेधात्, यथा बहुप-
रिव्राजका मधुरेति, कर्त्तव्या ऽत्र-यत्नः । नञस्त्युरुषादित्यादौ तु यन्य-
विरोधं तत्रतत्र परिहरिष्यामः । तदेवं स्थितमेतत् तदन्तात्तद्वितविधा-
नार्थं इयाव्यहणं विप्रतिषेधाद्वि तद्वितबलीयस्त्वमिति । यद्वेवं यूनस्तिः
ऊहुत इति त्यूडोरपि ग्रहणं कर्त्तव्यन्तदन्तात्तद्वितविधानार्थं युवतितरा ।
भाष्यकारप्रयोगात्सिलादिष्वकृत्वसुच इति पुंशद्भावे न भवति, खिद्घा-
दिषु पुंशद्भावाद् ह्रस्वत्वं विप्रतिषेधेनेति वा पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्त्या ह्रस्वेन
बाधितत्वात् । ब्रह्मबन्धुतरा नद्याः शेषस्यान्यतरस्यामिति ह्रस्वाभावपक्षे
जातिश्चेति पुंशद्भावप्रतिषेधः । पूर्वत्र त्वनेन प्रतिषेधो न लभ्यते यौवन-
स्याजातित्वात्, यावद्द्रव्यभाविनी हि जातिः, तथा च युवजानिरित्युदा-
हृतम् । नन्वत्रान्तरङ्गत्वादेव त्यूडौ भविष्यतः, अस्यन्तस्वार्थके तु कनि
ब्रह्मबन्धुकेत्यत्र केण इति ह्रस्वे सति नास्ति विशेष ऊडन्ताद्वैत्यसौ मत्या-
मुकारान्ताद्वै, युवतिशब्दादपि कनि पुंशद्भावेन भाष्यमिति नास्त्येष विशेषः ।
न चास्मात्कनिष्यतइत्यत्रापि ग्रामाणमस्ति तस्मान्नार्थस्त्यूडोर्यहणेन ॥

“ स्वौजसमौट्ठश्टाभ्यांभिसुडेभ्यांभ्यसुडसिभ्यांभ्यसुडसोसाम्ड्यो-
 स्सुप् ” ॥ ‘उकारदयोनुबन्धा इत्यादि’ । तत्र प्रथमैकवचनस्योकार
 एतत्तदोः सु लोपो हलङ्ग्याभ्यो दीर्घात्सुतिसीत्यत्र केवलस्य व्यञ्जनस्यो-
 च्चारयितुमशक्यत्वादुच्चारणार्थः, अत्र तु सूत्रे औकारोपश्लेषाच्छक्यते
 सकारमात्रमुच्चारयितुम्, अनङ् सावित्यत्र विशेषणार्थस्तु न भवति व्या-
 वर्त्यस्याभावात्, न चानङ् सीत्युच्यमाने वर्णनिर्देशे च तदादिविधिसम्भ-
 वात्सप्तमीबहुवचनेपि प्रसङ्गः, सर्वनामस्थानइत्यनुवृत्तेः । जसो जकारो-
 स्मिन्नेव सूत्रे ऽसन्दिग्धोच्चारणार्थः, अन्यथा ह्यौकारस्यावादेशे सन्देहः
 स्यात् किमौकारस्योच्चारणमर्थावित्यस्येति । जसः शीत्यादौ विशेष-
 णार्थस्तु न भवति, असः शीत्युच्यमानेष्यतिप्रसङ्गाभावात्, शसा-
 दीनां सानुबन्धकत्वात् । शसशकार औटष्ठकारस्यासन्दिग्धोच्चारणार्थः,
 अन्यथा डकारष्ठकार इति सन्देहः स्यात्, तस्माच्छस इत्यदौ विशेषणा-
 र्थस्तु न भवति जसादीनां सानुबन्धकत्वात् । टा इत्यत्र ठकारष्टाडसिड-
 सामिनात्स्या इति विशेषणार्थः, अन्यथा सुपां सुलुगित्यादिना विहितस्या-
 कारस्यापि ग्रहणं स्यात् । तदेवमेषां चतुर्णामुकारादय उच्चारणविशेष-
 णार्थाः, इत्संज्ञाप्येषां प्रयोगे श्रवणं मा भूदिति न पुनरित्कार्यं किं चि-
 दस्ति । औटष्ठकारः सुडिति प्रत्यहारग्रहणार्थः, डेप्रभृतिषु डकारो घेडि-
 तीति विशेषणार्थः । डसेरिकारो युष्मदस्मद्गां डसोशित्यत्र ग्रहणं मा
 भूदित्येवमर्थः । पकारः प्रत्याहारग्रहणार्थ इति । उकारादयोनुबन्धा
 यथायोगमुच्चारणविशेषणार्था इत्यनेनागतार्थत्वादिदमुक्तमेवं औटष्ठकारः
 सुडिति प्रत्याहारार्थ इत्ययिमथन्येन भवितव्यम् । क्व पुनरिमेथं स्वादयो
 भवन्तीत्याह । ‘संख्याकर्मादयश्चेति’ । ‘शास्त्रान्तरेणेति’ । बहुषु बहुव-
 चनं, कर्मणि द्वितीयेत्यादिना । ‘तेन सहास्यैकवाक्यतेति’ । पूर्वं त्ववा-
 न्तरवाक्यभेदापेक्षया शास्त्रान्तरेणेत्युक्तम् आकाङ्क्षायोग्यता^१वशेन भिन्नप्रक-
 रणपठितानामप्येकवाक्यता भवत्येव, प्रकरणभेदेन तु पाठस्तिङ्गादिवि-
 धिनाप्येकवाक्यत्वं यथा स्यादिति । बहुषु बहुवचनमित्यत्र तु भिन्नवा-

लिङ्गं नोपलभ्यतइति. टाबादेस्तत्कृतस्यानन्यकार्यस्य दर्शनात्, यद्येवमि-
तरंतराश्रयं प्राप्नोति लिङ्गावगमाटाबादिशब्दप्रयोगस्तद्योगाल्लिङ्गावगति-
रिति, इन्द्रियदौर्बल्यं कदा चिदुपलभ्यस्य कदा चिदनुपलम्भे कारणं शक्य-
मभिधातुं, खट्वादिषु च लिङ्गस्य कदा चिदप्यनुपलम्भाल्लिङ्गविविक्तखट्वा-
दिवस्तुयाहिणा प्रत्ययेण लिङ्गाभावनिश्चयात्तद्विरुद्धमनुमानं नोदेतुमर्हति,
महि शक्यते वक्तुं भित्तुएहं गजवद्, देशत्वाद्गजशालावत्, प्रत्ययेणेन्द्रियदौ-
र्बल्यात्तु गजो नोपलभ्यतइति, तस्मादसदेव लिङ्गं शब्दप्रयोगमहिम्ना
खट्वादिषु प्रतीयते, भवत्वेषं श्रोतुः प्रतीतिः, यस्त्वसौ प्रयोक्ता स केन
लिङ्गमवगम्य तदनु रूपं शब्दं प्रयुङ्के, किं च कुमार्यर्थः कुमारी वस्तिवति
कुमार्यादिष्वर्थवस्तुशब्दयोः पुत्रपुंसकयोरनुपपत्तिः, भाष्ये तु

आविर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चेत्यनपायिनः ।

धर्मा मूर्त्तिषु सर्वेषु लिङ्गत्वेनानुदर्शिताः ॥

आविर्भाव उपचयः पुंस्त्वं, तिरोभावो ऽपचयः स्त्रीत्वम्, अन्तरा-
लावस्था स्थितिर्नपुंसकत्वमित्यर्थः । कस्य -पुनराविर्भावादिकं लिङ्गं
सत्त्वरजस्तमसां गुणानां तत्परिणामरूपाणां च तद्रात्मकानां शब्दस्यश-
रूपरसगन्धानां, शब्दादिसङ्घातरूपाश्च सर्वा मूर्त्तयः प्रतिक्षणपरिणामस्व-
भावाश्च सत्त्वादयो गुणा न स्वस्मिन्वात्मनि मुहूर्तमप्यवतिष्ठन्ते, एवं
शब्दादय आकाशादयो घटादयश्च । उक्तञ्च

सर्वमूर्त्यात्मभूतानां शब्दादीनां गणोगणौ ।

त्रयः सत्त्वादिधर्मास्ते सर्वत्र समवस्थिताः ॥

इति ।

कथितोदकवच्चैपामनवस्थितवृत्तिता ।

अजस्रं सर्वभावाणां भाष्यणवोपवर्णिता ॥

इति च । तथा । .

रूपस्य चात्ममात्राणां शुक्लादीनां प्रतिक्षणम् ।

का चित्तलीयते का चित्कथं चिदभिवर्द्धते ॥

इति ।

प्रवृत्तिमन्तः सर्वे हि तिसृभिश्च प्रवृत्तिभिः ।

सततं न वियुज्यन्ते वाचश्चैवात्र सम्भवः ॥

इति च । टाबाद्यन्तः शब्द एवैता अवस्था गोचरयतीत्यर्थः ।

पुरुषो यदप्यपरिणामी तथापि

अचेतनेषु सङ्क्रान्तं चैतन्यमिव दृश्यते ।

प्रतिबिम्बकधर्मेण यत्तद्वाचो निबन्धनम् ॥

ततश्च ।

यश्चाप्रवृत्तिधर्मार्थश्चितिरूपेण गृह्यते ।

अनुयातीव सान्येषां प्रवृत्तिर्विष्वगाश्रया ॥

सामान्यमपि गोत्वादि व्यक्तेरव्यतिरेकतः ।

प्रवृत्तिधर्मं तद्द्वारा शशङ्कादिवाचु तु ॥

तस्मादुक्तपदार्थस्य सम्भवाल्लिङ्गयोगिता ।

प्रवृत्तेरपि विद्यन्ते तिस्रो ह्येताः प्रवृत्तयः ॥

पुत्रपुंसकता स्त्रीत्वं तेन स्यादन्यलिङ्गता ।

तदेवं सर्वपदार्थव्यापित्वादुपचयपचयान्तरालावस्था स्त्रीणि लिङ्गानि, एवं च नक्षत्रे तारका तिष्यः, कुमार्यर्थो वस्तु इति एकस्याप्यर्थस्य नानालिङ्गयोग उपपद्यते, आविर्भावादित्रयस्यापि गुणभेदेन तस्मिन्नेवार्थे सर्वदा सम्भवात् । न चैवं तद्वृत्तेः सर्वस्यैव शब्दस्य त्रिलिङ्गता प्रसङ्गः, नह्यस्ति नियमो यः शब्दो यत्रार्थे पर्यवस्यति तत्र विद्यमानः सर्व एवाकारस्तेन शब्देनाभिधातव्य इति किं तु य आकारोभिधीयते तेन सता भवितव्यमित्येतावत् । तद्यथा तत्रा युवा कृष्णः कामुक इति तत्रादि-शब्दाणामेकार्थपर्यवसितानामपि व्यवस्यत एवाकारो वाच्यः, तथा लिङ्गेष्वपि द्रष्टव्यम्, उक्तं च,

सन्निधाने पदार्थानां किं चिदेव प्रवर्तकम् ।

यथा तत्रादिशब्दानां लिङ्गेषु नियमस्तथा ॥

इति । उपचीयते कुमारीत्यत्रापि कुमारीशब्दः स्वमहिम्ना कस्य चिद्दुर्मस्यापचयमेवाह, शब्दान्तरप्रयोगात्तु धर्मान्तरस्योपचयः प्रतीयते, एवं

क्तेपि स्त्रीत्वे टात्रादयो भवन्ति, तथानेकापि प्रत्ययो नानुपपन्नः, तद्द्वो-
तको हि तत्रा नानाप्रत्ययः, प्रदीपादेशचानेकस्यापि द्वातकत्वं दृष्टं,
प्रत्ययार्थपक्षेपि न दोषः, यद्यपि स्त्रीत्वमात्रे वाच्ये प्रत्ययः क्रियते
तथापि स्त्रीत्वतदाश्रययोरभेदविवक्षया स्वाभाविकत्वाद्वा गुणप्रधानभा-
वस्य द्वयोरपि दृष्टत्वेन सामानाधिकरण्यं वचनभेदश्च भविष्यति, गार्थ्या-
यणीत्यादौ च द्वाभ्यामेव स्त्रीत्वमभिधातुं शक्यते नैकेन स्वभावात् ।
यद्वा ष्फस्य पित्करणसामर्थ्यान्डीष् सिद्धः, ष्यङि यङश्चाबिति वचनसा-
मर्थ्याच्चाब् भविष्यति, तथाहि । अत्र यङ्ष्यङोः सामान्यग्रहणाय तदवि-
घाताय च ष्यङोनुबन्धद्वयं कृतं, कालितरेत्यत्रान्यः प्रकर्षयुक्तोऽन्यश्चाप्रकर्ष-
युक्तस्तत्रावस्थाभेदादेक एवार्थो भिन्नतइति प्रकर्षयुक्तस्यानभिहितं स्त्रीत्व-
मिति तदभिधानाय टाबिं भविष्यति, स्त्रीशब्देपि स्त्रियामित्यस्मादेव
निपातनादीकारः सिद्ध इति सुष्ठुक्तमुभयथापि युज्यतइति ॥

“अजाद्वयतृष्ठाप्” ॥ “अदन्ताच्चेति” । अकारान्तादित्यर्थः ।
स्वरूपग्रहणं तु न भवति, अच्छब्दान्तात् नीलत् परीतत् कलिङ्गदि-
त्यादेः स्त्रीलिङ्गादिति, तदाद्याचिख्यासायामित्यादेर्नेर्देशात् । ‘पकारः
सामान्यग्रहणार्थ इति’ । ड्याप्प्रातिपदिकादित्यादौ, पकारानुरोधस्तु
टाब्डापोः स्वरार्थः । ‘टकारः सामान्यग्रहणाविघातार्थ इति’ । अन्यथै-
कानुबन्धत्वादस्यैव ग्रहणं स्यात् तु डाप्चापोः । ‘खट्वेति’ । कथं पुन-
रत्राकारान्ता प्रकृतिरवधार्यते, यावता नित्यमेवायमाबन्तः स्त्रियां वर्तते
शास्त्रात्प्रयोगाच्च, शाकटायनदर्शने हि सर्वपामेव व्युत्पत्तिः, पञ्चभिः
खट्वाभिः क्रीतः पञ्चखट्व इत्यादौ स्त्रीप्रत्यये लुप्ते प्रयोगएवाकारान्तत्वं
दृश्यते । ‘शुभंयाः कीलालपा इति’ । अन्येभ्योपि दृश्यन्तइति विच्,
कः पुनरत्र टापि सति दोष इत्याह । ‘हरश्राब्थ इति’ । ‘सुलोपः स्या-
दिति’ । ‘क्व चिज्जातिलक्षण इति’ । गणपाठाग्रसरे विभागं दर्शयिष्यति
बलन्तानां त्वित्यादिः । ‘अजाद्वयग्रहणमिति’ । प्रकृतस्य प्रथमान्तस्यान्वया-
सम्भवात्तदर्थमजाद्वयग्रहणमिति शेषः । ‘अमहत्पूर्वति’ । महच्छब्दस्या-
नुकरणत्वाल्लौकिकार्थाभिधायित्वाभावादान्महत इत्याख्यं न भवति ।

‘पुंयोगे तु डीषैवेति’ । जातिग्रहणस्य प्रयोजनमाह । ननु पुंयोगे सोय-
मित्यभिसंबन्धात्परशब्दः परत्र वर्त्ततइति गौणत्वादेव न भविष्यति,
तस्मात्सुखप्रतिपत्त्यर्थं जातिग्रहणम् । अमहत्पूर्वत्यस्यार्थमाह । ‘मह-
त्पूर्वस्येति’ । अत्रापि जातिरिति संबद्ध्यते, इह प्रतिषेधो माभूत् महती
शूद्रा महाशूद्रेति, नह्यत्र महत्पूर्वः समुदायो जातिवचनः, क्व तर्हि
प्रतिषेधः, यत्र समुदायो जातौ वर्त्तते, तद्विदं दर्शितम् । ‘महाशूद्रशब्दो
ह्याभीरजातिवचन इति’ । यद्वेवं समुदाये जातिवचने गौरखरा-
दिवदवयवार्थाभावाद्गुण्यत्तिमात्रं क्रियते, तत्रावयवार्थस्य स्त्रीत्वस्याविव-
क्षितत्वात् पुंसि समासे कृते टापः प्रसङ्ग इति तत्रामहत्पूर्वैति प्रति-
षेधः सार्थकः, ततः किममहत्पूर्वैत्यत्र जातिरिति न संबन्धनीयं, कथं
महती शूद्रा महाशूद्रेत्यत्रान्तरङ्गत्वाद्यापि कृते पश्चात्सुप्, सुबन्तस्य
समासः, ततश्चाभिनिर्वृत्तत्वाद्यापः प्रतिषेधस्याप्रसङ्गः, सत्यं, विस्पष्टा-
र्थमेवात्रापि जातिरिति सम्बध्यते । ननु च शूद्रशब्दः पठ्यते, कः प्रसङ्गो
यन्महाशूद्रशब्दात्स्यादत आह । ‘तदन्तविधिनेति’ । ‘अतिधीवरी
अतिपीवरीति’ । दधातेः पिबतिश्चातो मनिन्कनिब्बनिपश्चेति कनिपि
कृते घुमास्यादिसूत्रेणैवं, धीवानमतिक्रान्ता पीवानमतिक्रान्तेति प्रादि-
समासः, अत्र वनो र चेति डीषैव भवतः, असति तु ज्ञापने वन इति
प्रत्ययग्रहणमथापि कृद्ग्रहणं सर्वथातिक्रान्तप्रधाने समासे न स्यात् ।
‘अतिभवती अतिमहतीति’ । उगितश्चेत्यत्रोगिदित्युगित्प्रातिपदिक-
स्यैव ग्रहणमित्यङ्गीकृत्येदं प्रयोजनं दर्शितं, तत्र तु वक्ष्यति उगिदिति
प्रातिपदिकाप्रातिपदिकग्रहणं तेन ग्रहणवता प्रातिपदिकेनेति निषे-
धाभावात्तदन्तविधिरिति, यदाहोगिदस्य सम्भवति यथाकथं चिदिति
तदन्तात्प्रातिपदिकादिति च । अतिमहतीत्यत्र शश्वद्वावादौणादि-
कादुगिल्लत्रणो डीष, के चिद्वौरादिपाठाद् डीषं वर्णयन्ति, तदयुक्त-
मनुपसर्जनाधिकारात् । किं च गौरादिपाठस्य प्रयोजनमपि न पश्या-
मः । ननु च महतीशब्दोन्तोदात्त इष्यते, सत्यं, शनुरनुम इत्यत्र नद्व-
जाद्युदात्तत्वे वृहन्महतीरूपसंख्यानमित्यनेनैव सिद्धं, विभक्त्युदात्तार्थं

तदिति चेत् तदेव डीबुदात्तार्थमपि भविष्यति, अतिमहतीत्यादौ च डीषभावस्योक्तत्वान् डीबुदात्तार्थमप्युपसंख्यानमेष्टव्यं. यदि तदन्तविधिर्जाप्यते पञ्चानामजानां समाहारः पञ्चाजी द्विगोरपि टाप् प्राप्नोति । अत्राहुः । अजाद्यत इति षष्ठी अजादीनामजन्तानां च या स्त्री तद्वाच्येयं यत् स्त्रीत्वं समवेतं तत्र टात्रिति, प्रत्यासत्त्या च स्त्रीत्वविशेषोपलक्षणानामेव प्रकृतित्वं विज्ञायतइति मत्वा वृत्तिकारेणोक्तम् अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योदन्ताच्चेति, न च पञ्चाजीत्यत्राजार्थं समवेतं स्त्रीत्वं किं तर्हि समाहारे, एवं चामहत्पूर्वेति प्रतिषेधः शक्योक्तुं, नहि महाशूद्रीत्यत्र शूद्रार्थगतं स्त्रीत्वं, तदन्तविधिस्त्वनुपसर्जनादित्यत्र जापयिष्यते । 'सत्प्राक्काण्डेति' । प्राक्कर्णोत्यत्र वार्त्तिकं सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेध इति, तत्रैव भाष्यं प्राक्पुष्पा च प्रत्यक्पुष्पा चेति, तस्मादत्रापि प्राक्शब्दो न पठनीयः सदच्काण्डेत्येव पठनीयम् ॥

“ ऋचेभ्यो डीप् ” ॥ 'डकारः सामान्यग्रहणार्थं इति' । ड्याप्-प्रातिपदिकादित्यादौ, पकारः सामान्यग्रहणाविघातार्थं इति तु पूर्वानुसारेण गम्यमानत्वात्त्रोक्तम्, अत्रापि पकारानुरोधेनुदात्तार्थः ॥

“ उगितश्च ” ॥ 'यथाकथं चिदिति' । यदि वर्णो उगित् संभवति यदि वा प्रत्ययो ऽथापि प्रातिपदिकं सर्वथा यत्रैवामन्यतमः प्रकारः संभवतीत्येष यथाकथंचिदित्यस्यार्थः । एतदेव स्पष्टयति । 'तदुगिच्छब्दरूपमिति' । प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रातिपदिकाप्रातिपदिकयोः शब्दरूपमन्यपदार्थः, न प्रातिपदिकमेव नापि प्रत्यय एवेत्यर्थः । तत्रोगिता प्रातिपदिकस्य विशेषणात्तदन्तविधिर्भवतीत्याह । 'तदन्तादिति' । 'पथन्ती-त्ति' । अत्र शतृप्रत्यय उगित् तदन्तं प्रातिपदिकम् अतिभवती अतिमहतीत्यत्रापि भवति, ग्रहणवता प्रातिपदिकेनेत्ययं तु प्रतिषेधो यत्र सूत्रोपात्तं प्रातिपदिकस्यासाधारणं रूपं तत्रैव भवतीत्यत्रापि व्यपदेशिवद्भावेन भवति, व्यपदेशिवद्भावो ऽप्रातिपदिकेनेत्ययं तु निषेधः प्रातिपदिकस्यैवामाधारणरूपग्रहणे, अतिगोमतीत्यत्रापि भवति, प्रत्ययग्रहणपरिभाषा तु प्रत्य-

यस्येवासाधारणरूपग्रहणे भवति । 'धातोस्तूगितः प्रतिषेध इति' । वक्तव्य इति शेषः, स तर्हि वक्तव्यः, न वक्तव्यः । उगित्त्वामित्यत्रो-
त्त्वादेव सिद्धेऽञ्चित्यग्रहणं नियमार्थमिह शास्त्रे उगिता यत्कार्ये विधी-
यते तद्घातोर्यदि भवति अञ्चतेरेवेति, कार्यमात्रं नियम्यते न नुमा-
गम एव, अधातुग्रहणं चाधातुपूर्वस्यापि नुमर्थमिति तत्रैव वक्ष्यते ।
अपर आह, उगितश्चेति योयं चशब्दः सोऽञ्चतेर्लुप्तनकारस्यानुकरणं,
विभक्तेश्च सुपां सुलुगिति लुक्, भाविनं चाकारलोपमाश्रित्य चेति नि-
द्वैशः कृतः, ततश्चाञ्चित्यग्रहणं नियमार्थमकारनकारलोपयोश्चात-
न्त्रत्वाद्वाञ्चेः पूजायामिति लोपनिषेधविषयेऽपि ङीष् भवति, प्राञ्ची
प्रत्यञ्ची ब्राह्मणीति । 'उखासत्यर्थाध्वदिति' । क्विप् चेत्यत्रानयोर्व्यु-
त्पत्तिः कृता ॥

“वनो र च” ॥ वन इति क्वनिव्वनिव्वड्वनिपां प्रत्ययानां सामा-
न्येन ग्रहणं, न वन षण् संभक्तौ, वनु याचनइति धात्वोर्विजन्तयोः,
कुतः, प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणमिति, अत एव शुनो निष्क्रान्ता
युवानमतिक्रान्ता निःशुनी अतियूनीत्यत्रापि न भवति, अनर्थकत्वाद्वा ।
'शर्वरीति' । शृ हिंसायाम्, अन्येभ्योऽपि दृश्यन्तइति वनिप् । 'परलोक-
दृश्वरीति' । दृशेः क्वनिप् । 'वनो न हश् इति' । विहितविशेषणं हश्-
ग्रहणं हशन्ताद्घातोर्यां वन्विहितस्तदन्तात्प्रातिपदिकान् ङीष्वा न भवत
इत्यर्थः, तेन शर्वरीत्यत्र प्रतिषेधाभावः, तथा ओणु अपनयने वनिपि
विद्वनोरनुनासिकस्यादित्यात्वे अवादेशे अवावचित्यत्र संप्रति हशः
परत्वाभावेऽपि हशन्ताद्विहितत्वात् प्रतिषेधो भवत्येव अवावा ब्राह्म-
णीति, एष एव स्थितः सिद्धान्तः । बहुलं कृन्दसि ङीष्वा वक्तव्यौ । यञ्च-
रीरिषः । प्रद्वरिशवोस्तुट् च, प्रेत्वंरी ॥

“पादोऽन्तरस्याम्” ॥ 'पादिति कृतसमासान्तः पादशब्दो
निर्दिश्यतइति' । उत्तरसूत्रे ऋच्यभिधेयायां तस्यैव संभवात्, तेन पाद-
यतेः क्विबन्तस्य ग्रहणं न भवति । 'द्विपदीति' । द्वौ पादावस्या इति
बहुव्रीहौ संख्यासुपूर्वस्येत्पकारलोपे पादः पदिति पद्भावः ॥

“टाबृचि” ॥ ‘ञचीत्यभिधेयनिर्देश इति’ ॥ व्याप्तिः, विषयनिर्देशे हि ऋवेदविषयएव हि प्रयोगे स्याच्चान्यत्र ॥

“न षट्स्वस्रादिभ्यः” ॥ टाबृचीति पादन्ताद्विहितस्य टापोत्राप-सङ्गात्तदनन्तरस्य डीपोयं प्रतिषेध इत्याशङ्कामपनयति । ‘यो यत इति’ । तत्र सर्वेभ्य एव डीप् प्राप्नोति, टाप् नलोपे सत्यकारान्तता-यामुपजातायां षड्भ्य एव, यो यः प्राप्त इति तु युक्तः पाठः, अन्यथा स ततो न भवतीति वाच्यं स्यात्, व्याप्तिश्च न गम्येत । ‘पञ्च ब्राह्मण्य-इति’ । ननु चात्र ब्राह्मणीशब्दसामानाधिकरण्यात् स्त्रीत्वावगतिः, संख्याशब्दस्तु स्वमहिम्ना भेदगणनमाह । तथाहि । पञ्चेत्युक्ते नानास्व-मात्रं द्रव्यस्य गम्यते न लिङ्गविशेषः, तथा च लिङ्गानुशासनेषु ष्यान्ता संख्येत्यलिङ्गत्वमुक्तं, यद्येवमेका द्वे बहू इत्यत्रापि प्रत्ययो न स्यात्, संख्याशब्दत्वेन भेदगणनामात्रस्य शब्दार्थत्वात् । अथ तत्र स्त्रीत्वमपि शब्दार्थः, पञ्चादिष्वपि स्यात्, वक्तव्यो वा विशेषः, सति तस्मिन् प्रतिषेधे नान्तरेणानुप्रयोगं पञ्चेत्यादौ स्त्रीत्वात्प्रभिव्यक्तिरिति लिङ्गानु-शासनेष्वलिङ्गत्वमुक्तमसति तु प्रतिषेधे पञ्चादिभ्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति, एकादिभ्यस्तु भवतीति न शास्त्रैकशरणः प्रतिपत्तुमर्हति । ननु विभक्तौ परतः त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृभावः, तत्र संनिपातपरिभा-षयैव डीबभावः सिद्धस्तत्किं तिसृचतसृशब्दयोः स्वस्रादिपाठेन । ज्ञाप-नार्थं तु । एतज् ज्ञापयति अनित्या संनिपातपरिभाषेति, तेन त्यदाद्यत्वे कृते टाब् भवति या सा इमे द्वे इति, डीपोनन्तरस्यायं प्रतिषेधो युक्त इत्याश्रित्य चोदयति । ‘षट्संज्ञानामिति’ । ‘कस्माच्च स्यादिति’ । अत इति हि प्राप्नोति, असिद्धो नलोपस्तस्यासिद्धत्वाच्चैतददन्तं, परिगणितेषु कार्येषु नलोपो ऽसिद्धो भवति, नलोपः सुप्स्वरेत्यस्य नियमार्थत्वात्, नेदं तत्र परिगणयते, इदमपि तत्र परिगणयते, कथं, सुबिति न सप्तमी-बहुवचनेन प्रत्याहारः किं तर्हि यदश्चाबिति चापः पकारेण, ततश्च टापोपि प्रत्याहारन्तर्भावात्तद्विधिरपि सुब्विधिरवेति, तदेतदाह । ‘प्रत्या-हाराच्चापेति’ । न स्यादित्यनुषङ्गः, कस्माच्च स्यादिति प्रश्नः । चापा

प्रत्याहाराच्च स्यादिति परिहारः । इदं चाचार्यदेशीयस्य वचनम्, आचार्यसिद्धान्तं दर्शयितुमेतद् दूषयति । 'सिद्धं दोषस्त्वित्त्वडति' । सत्यं सिद्धमिदं चापा प्रत्याहारे, इत्थे तु दोषो भवति, बहूनि चर्माण्यस्याः बहुचर्मिकेति, कथं तत्र सुब्विधिरिति सर्वविभक्त्यन्तावयवः समास आश्रितः, सुपो विधिः सुपि विधिरिति, ततश्च यथा राजभ्यामित्यत्र सुपि चेति दीर्घत्वं न भवति तथा टापि सुपि विधीयमानमित्वमपि सुब्विधिरिति तत्र कर्त्तव्ये नलोपस्यासिद्धत्वात्कात् पूर्वाकारो न भवतीतीत्वं न स्यादित्यर्थः । सिद्धान्तमाह । 'तस्माच्चोभाविति' । स्त्रियामित्यर्थमात्रमपेक्ष्य तत्र यदुक्तं तत्र भवतीत्येवं डीप्टापावुभावपि प्रतिषेध्यावित्यर्थः । ननु च सकृत्प्रतिषेधस्य प्रवृत्तिः, स च स्वप्रवृत्तिसमये यस्य प्रसङ्गमेव प्रतिषेधति, ततश्च पूर्वं डीपि प्रतिषिद्धे नलोपे च कृते पश्चात्प्राप्तप्रवृत्तयोः कथं प्रतिषेधः, आत्माश्रयो हि स्यात् स्वप्रवृत्तिमपेक्ष्य स्वप्रवृत्तिरिति, तस्मात्तन्वावृत्त्येकशेषाणामन्यतमाश्रयणेन द्विरस्य प्रवृत्तिः, तत्र द्वितीयया प्रवृत्त्या टापः प्रतिषेधः ॥

“मनः” ॥ ‘अनिनम्नन् ग्रहणीतीति’ । अन् इन् अस् मन् इत्येतेषां ग्रहणे अर्थवत्परिभाषा न व्याप्रियते, तेनैषामनर्थकानामपि ग्रहणं भवति, एभिश्चार्थवद्विरनर्थकैश्च तदन्तविधिर्भवतीत्यर्थः, सीमन्शब्दोच्युत्पन्नं प्रातिपदिकम्, अतिक्रान्ता महिमानमतिमहिमा अत्रापीमनिच एवार्थवत्त्वं न तु मनः ॥

“अनो बहुव्रीहेः” ॥ ‘अनुपधालोपी बहुव्रीहिरिहोदाहरणमिति’ । कुत इतिदित्याह । ‘उपधालोपिनो हीत्यादि’ ‘विभाषां वक्ष्यतीति’ । अन उपधालोपिनोन्यतरस्यामित्यनेन । ‘सुपूर्वत्यादि’ । शोभनं पूर्वास्याः शोभनं चर्मास्या इति बहुव्रीहिः, अयं च न संयोगादुपधालोपिनोपस्य प्रतिषेधादनुपधालोपी । ‘बहुव्रीहेरिति किमिति’ । समासादिति वाच्यमिति भावः । ‘अतिराज्ञीति’ । राजाहः सखिभ्य इति टञ् न भवति समासान्तविधेरनित्यत्वात् ॥

“डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ ‘अन्यतरस्यां ग्रहणं क्रिमिति’ ।
डापा मुक्ते प्रतिषेधो यथा स्यादित्येवमर्थं तावदेतन्न कर्तव्यं, कथं डाब-
प्युच्यते प्रतिषेधोपि ताबुभौ वचनाद्बुविष्यतः, यदि हि नकारान्तस्य
श्रवणं न स्यात्तदा डापैवापवादेन डीपो बाधात् प्रतिषेधानर्थकः स्यात्,
अथ डाप्प्रतिषेधाभ्यां मुक्ते डीबपि यथा स्यादित्येवमर्थमन्यतरस्यां-
ग्रहणं तदपि न, बहुराज्ञीत्यादावन उपधालोपिनोन्यतरस्यामित्यनेनैव
डीपः सिद्धत्वात्, यत्र तर्हि तेन न सिद्ध्यति अतिशर्मत्यादौ तदर्थमेत-
त्स्यात्, यद्येवमनेनैवोपधालोपिनोपि सिद्धत्वादन उपधालोपिन इत्ये-
तदनर्थकं स्यात्, एवं तर्हि तदन्यतरस्यां ग्रहणं न करिष्यामीतीदमन्य-
तरस्यां ग्रहणं क्रियते, कथमनेनैवान्यतरस्यां ग्रहणेनोपधालोपिनोपधालो-
लोपिनश्च डीपि प्रापिते सत्यन उपधालोपिन इत्येतावदपि क्रियमाणं
नियमार्थं भविष्यति, अनो बहुव्रीहेर्यन् डीब्विधानं तदुपधालोपिन एवेति,
ततश्च तदन्यतरस्यां ग्रहणं न कर्तव्यं भवति, तदवश्यं कर्तव्यम्, अस्मि
हि तस्मिन्नेनान्यतरस्यां ग्रहणेन बहुव्रीहिमात्राद्वाप्प्रतिषेधद्वीप्सु त्रि-
ष्वपि प्राप्तौपधालोपिनो डाप्प्रतिषेधो बाधित्वा नित्यं डीब्वेव यथा
स्यादित्येवमर्थं तत्स्यात्, अतस्तदवश्यं कर्तव्यम्, इदं तु न कर्तव्यमिति
प्रश्नः, परिहरति । ‘बहुव्रीहाविति’ । अयमभिप्रायः, डाप्प्रतिषेधाभ्यां
मुक्ते डीबपि यथा स्यादित्येवमर्थमिदं तावदन्यतरस्यां ग्रहणं, न चान
उपधालोपिन इत्यस्य वैयर्थ्यं, नियमार्थत्वात्, अनो बहुव्रीहेर्यदन्यतरस्यां
डीब्विधानं तदुपधालोपिन एवेति, तेन सुपर्वा मुशर्मत्यादावनेनान्यतर-
स्यां ग्रहणेन प्रापितो डीब्व न भवति बहुराज्ञीत्यादावेव तु भवति, नन्वे-
वमिदमन्यतरस्यां ग्रहणं मा भूत् अन उपधालोपिन इत्येतदेव विध्यर्थ-
मस्तु को वा विशेषः, अनेनान्यतरस्यां ग्रहणेन बहुव्रीहिमात्रान् डीपि
प्रापिते तन्नियमार्थं स्याद् अस्मिन् डाप्प्रतिषेधयोरेव प्राप्तयोरु-
पधालोपिनो ऽप्राप्तो डीप् पक्षे विधीयतइति । अयमस्ति विशेषः ।
अस्मिन्नन्यतरस्यां ग्रहणे सति डाप्प्रतिषेधाभ्यां मुक्ते स्वेनस्वेन शास्त्रेण
डीब्व भवन्वचन्तेषु वनो र चेत्यनेनैव भवतीति बहुधोवरीत्यादौ रेफोपि

भवति, एवमनेन वचन्तादुपधालोपिनोनुपधालोपिनश्च बहुव्रीहेर्बहुधीव-
 न्मुपर्वत्रित्यादेर्डीब्रेफयोः प्रापितयोरन्यत्र बहुराजन्सुशर्मत्रित्यादौ केवले
 डीपि प्रापिते सत्यन उपधालोपिनोन्यतरस्यामित्येतन्नियमार्थं भवति,
 तेन च नियमेन सुशर्मत्यादौ डीब् व्यावर्त्यते, सुपर्वत्यादौ डीपि व्याव-
 र्त्तिते तत्सन्नियोगशिष्टत्वादेर्योपि न भवति, बहुराज्नीत्यादौ तु यथाप्राप्तौ
 डीबवस्थितः, बहुधीवरीत्यादौ च वनो र चेत्यनेन प्राप्तौ डीब्रेफावव-
 स्थिताविति सर्वमिष्टं सिद्धति, असति त्वस्मिंस्तस्मिंश्च विध्यर्थे ऽपूर्वं
 एव डीप् तेन विधीयतइति वचन्ते बहुव्रीहावृत्तेभ्यो डीबित्येतत्सन्नियुक्तं
 वनो र चेत्येतन्न प्रवर्त्ततेति केवले डीपि सति बहुधीवनीति स्यात्, अतो
 ऽन उपधालोपिन इत्येतन्नियमार्थं यथा स्यात्स्वतन्त्रो विधिर्मा भूदित्ये-
 वमर्थमिहान्यतरस्यांयहणं क्रियतइति तद्विदमन उपधालोपिन इत्यत्र
 वृत्तिकारः स्पष्टयिष्यति । यदनेनान्यतरस्यांयहणेन पत्रे डीबपि प्राप्यते
 दामेत्यादौ मवन्तादपि प्राप्नोति, नैष दोषः, योगविभागः क्रियते
 डाबुभाभ्यां भवति, ततो ऽन्यतरस्याम्, अनो बहुव्रीहेरित्येव वर्त्तते,
 मन इति निवृत्तम् ॥

“अनुपसर्जनात्” ॥ प्रसज्यप्रतिषेधोयमित्याह । ‘उत्तरसूत्रेषुप-
 सर्जनप्रतिषेधं करोतीति’ । पर्युदासे को दोषः, कुक्कुटीपाद इत्यत्र न
 स्यात् पूर्वपदस्योपसर्जनत्वात्, न । अन्तरङ्गत्वात्प्रागेव डीपि कृते तदन्तस्य
 समासः, न चेदानीमुपसर्जनत्वे डीषः पर्युदासः, पूर्वमेवाभिनिवृत्तत्वात् ।
 किं च प्रसज्यप्रतिषेधेषु दोषः समानः, कुक्कुटीत्यत्रैव तर्हि न प्राप्नोति,
 किङ्कारणमन्वर्थमुपसर्जनमप्रधानमुपसर्जनमिति, अस्त्येवमनुपसर्जनं तूपस-
 र्जनादैन्यत्सर्वं न तु प्रधानमेव, तेनापेक्षणीयस्याभावेऽप्यप्रधानादन्यत्वाद्ब्र-
 ष्यति, यदा तर्ह्यधर्मानृतादिवद्विरोधिवचनोनुपसर्जनशब्दस्तदा न प्राप्नोति,
 तस्मात्प्रसज्यप्रतिषेधः । ‘अनुपसर्जनादित्येवं तदिति’ । उपसर्जनाच्च भव-
 तीत्येवमित्यर्थः । ‘वक्ष्यति टिड्ढाणजिति डीबिति’ । कथं प्रथमान्तस्य व-
 क्ष्यतीत्यनेन सम्बन्धः । अत्राहुः । वक्ष्यति टिड्ढाणजित्येतावान् ग्रन्थः, टि-
 ड्ढाणजिति वक्ष्यतीत्यर्थः । कः पुनरत्र प्रत्यय इत्यत्राह । ‘डीबिति’ । एवं

जातेरिति ङीष् इत्यत्रापि ग्रन्थच्छेदः, तत्र च पूर्वस्मिन्व्यतीत्यनुषङ्गः ।
 'कुरुचरीति' । चरेष्टः । 'बहुकुरुचरोति' । बहुव्रीहिः सर्वापसर्जनः ।
 'कथं पुनरित्यादिः' । प्रत्युदाहरणे यदुपसर्जनं न तत् स्त्रियां वर्त्तते,
 यदा च स्त्रियां वर्त्तते तदा भवत्येव प्रत्ययः, बहूः कुरुचर्यास्यां बहुकु-
 रुचरीका बहुकुक्कुटीका मधुरोति, यः स्त्रियां वर्त्तते बहुव्रीहिसतो ऽटि-
 त्त्वाद्जातित्वाच्चाप्रसङ्गः । तथाहि । टित्प्रातिपदिकं एह्यते तच्च किं
 चित्साक्षात्टिट्त्वति यथा नदट् चोरडिति, किं चित्त्ववयवटित्त्वद्वारेण, यत्र
 ह्यवयवटित्त्वमकिंचित्करं तत्र समुदायार्थं तद्विज्ञायते, स चावयवः क्व
 चिद्वातुः स्तनन्धयीति, क्व चित्कल्ल्युडादिः, क्व चित्तद्वित्प्रुत्थुलादिः, तत्र
 यं समुदायं यो ऽवयवो न व्यभिचरति तदर्थं तस्य टित्त्वमिति कुरुचरशब्द
 एव टित् तत्कृते बहुकुरुचरशब्दात्प्रसङ्ग इति प्रश्नः । परिहरति । 'तद-
 न्तविधिनेति' । ननु यद्गणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते,
 ग्रहणं चोपादानमात्रं न तु स्वरूपेणोच्चारणमेव तत्कथं तदन्तविधिः ।
 स्यादेतत् । यत्र एह्यमाणं रूपं प्रातिपदिकस्यैकसाधारणं तत्र तदन्त-
 विधिप्रतिषेधः, इह चोरडित्यादि प्रातिपदिकमपि टित् ल्युडादिप्रत्य-
 योपि धेडिति धातुरपि, ततश्च यथोगितश्चेत्यत्र षर्णाप्युगित्प्रत्ययोपि
 प्रातिपदिकमपीति तदन्तविधिर्भवति तथेहापि प्रसङ्ग इति, स्यादयं प्रसङ्गो
 यदि टिता प्रातिपदिकं विशेष्येत टिति च प्रातिपदिकेन विशेष्यमाणे नानेन
 विशेष्येण तदन्तविधिः, प्रातिपदिकेन चासम्भवादिति नैव बहुकुरुचरश-
 ब्दात्प्रसङ्ग इत्यत आह । 'ज्ञापितं चैतदिति' । शूद्रा चामहत्पूर्वत्यत्र
 ज्ञापितमेतत् । अथश्यञ्चैतज् ज्ञापितमुत्तरत्रापि परिपालनीयमित्याह ।
 'तथा चेति' । अनाश्रीयमाणे ज्ञापकेणन्ताद्विधीयमानो ङीष् प्रत्ययग्रह-
 णपरिभाषया कारशब्दादेव स्याद् न त्वणन्तात्कुम्भकारशब्दात्, ज्ञाप-
 कान्तु ततोपि भवतीत्यर्थः । ननु च कुरुचरणपरिभाषया कुम्भकारशब्द-
 स्याणन्तत्वं, नेत्याह । 'न वाणिति' । 'कुरुचरणमिति' । किं कारण-
 मित्यत्राह । 'तद्वितोप्यणस्तीति' । यत्र तु एह्यमाणं रूपं कृत एवासा-
 धारणं तत्रैषा परिभाषा, इह त्वौपगवीति तद्वितस्यापि ग्रहणमिति

नायमस्या विषय इत्यर्थः । अथ कारशब्दादुत्पत्तौ सत्यां को दोषः, कौम्भकारेयो न सिद्धति, प्रत्ययग्रहणपरिभाषया कारीशब्दात्स्त्रीभ्यो ठकि तस्यैव वृद्धिस्वरौ स्यातां, षडः सम्प्रसारणवद्भविष्यति, तद्वयाथा, षडन्त-स्योच्यमानं सम्प्रसारणं परमकारीषगन्धीपुत्र इत्यत्रापि भवति स्त्रीप्रत्यये तदादिनियमाभावात् तथा कारशब्दादप्युत्पत्तौ कुम्भकारीशब्दस्यापि स्त्रीप्रत्ययान्तत्वाद्भविष्यति, एवमपि कारीशब्दादपि कदा चित्स्यात्, अथ ब्रूयाः, कारीशब्देन कुम्भशब्दः समसिष्यते, स्त्रीभ्यो ठगित्यत्र च व्याप्रातिपदिकादिति त्रितयाधिकारसामर्थ्यात्स्त्रीप्रत्ययान्तात्प्रातिपदिकादिति प्रत्ययो विधास्यते, स्त्रीप्रत्ययान्तस्य च प्रातिपदिकत्वं समासमन्तरेणानुपपन्नमिति कुम्भकारीशब्दादेव ठगुत्पत्स्यते, व्याग्रहणानुवृत्त्या च सौपर्ण्य इत्यत्रापि भविष्यतीति, एवमपि व्याबनुवृत्तेः सौपर्ण्य इतिवत् कारीशब्दादपि स्यात्, गतिकारकोपपदानामिति वचनाच्च व्यन्तेन समासो दुर्लभः, ततः कुम्भकारशब्दादेव ङीब्यथा स्यादित्युत्तरत्रापि तदन्तविधिरभ्युपगन्तव्यः । न च कुम्भकारशब्दादप्युत्पत्तौ तदादिनियमाभावात्कारीशब्दादपि ठक् प्रत्ययप्रसङ्गः, किं कारणं स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेनेत्यनेन, प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेरधिकस्य ग्रहणमभ्यनुज्ञायते न न्यूनस्यापि । ननु च सत्यप्युत्तरत्र तदन्तविधौ कुम्भकारीत्यत्र समुदायादपि भवतु, केवलात्कारशब्दादपि प्रसङ्गो यथोपगवीत्यादौ, ततश्च कौम्भकारेयः पक्षे दुष्यत्येव, एवं तर्हि कारशब्दादप्युत्पत्तौ कुम्भेनैकार्थीभूतस्य तावतो निष्कृष्यापत्येनायोगात्तदादिनियमाभावाच्च समुदायादेव दुग्भविष्यति । यद्वा कुम्भेनैकार्थीभूतस्य कारस्य स्त्रीत्वेनायोगात्स्त्रीप्रत्यय एव न भविष्यति, असति पुनरुत्तरत्र तदन्तविधौ स्त्रीप्रत्ययस्यात्राप्रसङ्गः, किं कारणं, यदणन्तं न तस्य निष्कृष्य स्त्रीत्वेन योगः, यस्य च स्त्रीत्वेन योगो न तदणन्तम् । अत उत्तरत्राप्यवश्यं प्रधानेन तदन्तविधिरभ्युपगन्तव्यस्तत्र यथा प्रधानेन भवति तथोपसर्जनेनापि स्यादिति प्रतिषेधोपमारभ्यते, तथा च पूर्वत्रोपसर्जनेनापि तदन्तविधिर्भवति, न षट्स्वसादिभ्यः प्रियपञ्चा द्वौपदीति, अतिक्रान्ता भवन्तमतिभवतीति । स्यादेतत् । पूर्व-

चोपात्तं तदन्तं वा स्त्रियामित्यनेन विशेष्यते, टिड्ढाणञित्याद्विभूपात्तमेव
 टिडादिकं, तेन ज्ञापितेपि तदन्तविधौ बहुकुम्भचरेत्यादौ टिडादेरस्त्री-
 त्वाच्च भविष्यति, कुम्भकारीत्यत्र त्वगन्तस्य स्त्रियां वृत्तेस्तदन्तादपि
 भविष्यति नार्थ एतेनेति, तत्र । त्वदुक्तस्य विषयविभागस्य दुर्ज्ञानत्वात्,
 अतो विषयविभागज्ञापनार्थमिदमारभ्यते । नन्वारब्धेऽप्यस्मिन्नेष विषय-
 विभागः शक्य आस्थातुं, पञ्चाजीत्यत्राजानामस्त्रीत्वेन तदन्तस्य स्त्रियां
 वृत्तेरजाद्व्यतष्टाबिति टाप् प्रसङ्गात्, अतो विशेषणविशेष्यभावं प्रति का-
 मचारादजाद्व्यतष्टाबित्यत्र टिड्ढाणञित्यादौ चोपात्तं स्त्रीत्वेन विशेष्यते,
 वनो र चेत्यादावुपात्तं तदन्तस्य चेति नार्थ एतेन । एवं तर्हि तदन्तविधिज्ञा-
 पनार्थमिदमारभ्यते, अमहत्पूर्वेत्येतत्तु शक्यमकर्तुं, नहि महाशूद्रेत्यत्र समु-
 द्वाये जातिवचने शूद्रशब्दः स्त्रियां वर्त्तते । अपर आह । लौकिकस्याप्रधा-
 नस्योपसर्जनस्येह ग्रहणं तेनापिशिलिना प्रोक्तमिजश्चेत्यण, ततोध्येच्यां
 तदधीतद्वत्यण, तस्य प्रोक्ताल्लुगिति लुक्, आपिशला ब्राह्मणी, अत्र
 इजश्चेति विहितस्य प्रोक्तप्रत्ययस्यागोऽप्रधानत्वात्तदन्तान्डीब् न भवति,
 नन्विदानीमध्येनृप्रत्यये लुप्ते प्रकृतिरेव तदर्थमाहेति प्रधानस्त्रियामध्ये-
 च्यामणन्तस्य वृत्तेः स्यादेव डीप् प्रत्ययः । स्यादेतदेवं यत्रणन्तादनुप-
 सर्जनादित्युच्येत वयं त्वगमेवानुपसर्जनत्वेन विशेषयिष्यामः, अण्येनानुपस-
 र्जन इति, अर्थद्वारकं चाणः प्राधान्यमप्राधान्यं च, तदेतदुक्तं भवति, यस्मि
 वर्थेणुत्पन्नः स यदा प्राधान्येनोच्यते तदा तदन्तान्डीब् भवति, यदा तु
 गुणभावेन तदा नेति, इह चाध्येच्यां सङ्क्रान्तत्वात्प्रथमस्यागोर्था गुणभूत
 इति तदाश्रयस्तावन्डीब् न भवति, यस्त्वध्येच्यामुत्पन्नस्तदाश्रयेऽपि न
 भवति तस्य लुप्तत्वात् । प्रत्ययलक्षणोऽपि न भवति, अणाकारस्य विशे-
 ष्यात्, टिड्ढाणञित्यत्र ह्यत इति वर्त्तते तत्राणन्तादकारान्तादिति
 विज्ञायमाने स्यात्प्रत्ययलक्षणमणा त्वकारे विशेष्यमाणे वर्णनिमित्ते डीप्
 प्रत्ययः कथं प्रत्ययलक्षणेन स्यात् । ननु स्त्रियामित्यनुवृत्तेनाणं विशेष-
 यिष्यामो योण् स्त्रियां विहित इति, एवमपि काशकृत्स्विना प्रोक्ता
 मीमांसा काशकृत्स्वी तामधीते काशकृत्स्वा ब्राह्मणीति द्वितीयेणि

प्रोक्ताल्लुगिति लुप्तेपि प्रथमोप्यण् स्त्रियामेवोत्पन्नस्तदन्ताद्वाह्नय्यां
वर्त्तमानान्डीप्प्रसङ्गः, तस्मात्प्रधानाद्यथा स्यादप्रधानान्मा भूदित्येतत्प्र-
योजनं सूत्रस्येति ॥

“टिङ्गाणञ्द्रुयसज्दग्नमात्रचतयपठकृञ्कञ्करपुख्यनाम्” ॥

‘इह कस्मादिति’ । लडादेशस्य स्थानिवद्भावेन टित्त्वमस्तीति प्रश्नः ।
‘पवमाना यजमानेति’ । ननु शानत्रादिषु लट इत्यस्य निवृत्त-
त्वाद् अनादेशपक्षः स्थापितः, पवमानेत्यादिषु शानजुदाहर्त्तव्यः ।
‘द्व्यनुबन्धकत्वान्लट इति’ । लडादिष्वकारादयोप्यनुबन्धा इति
भावः । एतेन लिङ्लृटौ व्याख्यातौ अनूचाना यद्व्यमाणेति । ‘ल्युडा-
दिषु कथमिति’ । द्व्यनुबन्धकत्वात्तेषामपि ग्रहणेन न भाव्यमिति
प्रश्नः । ‘टित्करणसामर्थ्यादिति’ । न च लडादिष्वपि टित्करणसाम-
र्थ्यमित्याह । ‘इतरत्रेति’ । ‘पठिता विद्येति’ । कथमित्यनुषङ्गः । इटि-
त्त्वमुभयार्थं स्यादिति प्रश्नः । ‘आगमटित्त्वमनिमित्तमिति’ । आगमानां
टित्त्वं डीपो निमित्तं न भवतीत्यर्थः । कुत इत्यत आह । ‘द्व्युद्युलौ तुट् चेति
लिङ्गादिति’ । यद्वागमटित्त्वं डीपो विमित्तं स्यात्ततः सायन्तनीत्यादौ
तुट् आगमस्य टित्त्वान्डीप् सिद्ध इति द्व्युद्युलोष्टित्करणमनर्थकं स्यादिति
भावः । ननु च पुराणप्रोक्तेष्विति निर्द्वेषेन यदा तुण् न भवति तदा
डीबर्थं तयोष्टित्त्वं स्यात्तत्र, पुराणशब्दाद्वाह्वादिषु पाठान्डीषा भवितव्यम्,
अन्तोदात्तो हि पुराणीशब्दः पुनःपुनर्जायमाना पुराणीति यथा । एव-
मपि न ज्ञापकं बाह्वादिभ्यश्चेत्यत्र वेति वर्त्तते, ततश्च डीषा मुक्ते डीब्
यथा स्यादिति द्व्युद्युलोष्टित्त्वं स्यादिति चिन्त्यमेतत् । ‘सौपर्ण्येति,
सुपर्णशब्दात्पाककृणादिडीषन्तात्स्त्रीभ्यो ढक्, ननु च सानुबन्धत्वादस्य
ग्रहणेन न भवितव्यमत आह । ‘निरनुबन्धक इति’ । यद्यपि शिलाया
ठ इति निरनुबन्धको ढशब्दोस्ति स इह स्वभावात्पुंसकलिङ्ग इति
स्त्रियां नास्तीत्युक्तं, योपि सभाया यः, ढश्छन्दसीति ढः सोपि स्त्रियां
न वर्त्तते कथं, तत्र तत्र साधुरिति वर्त्तते कथं च स्त्री नाम सभायां साध्वी
स्याद्व्यञ्जसभायां हि विदुषामधिकारः । ननु मा नाम भूद्व्यञ्जसभायां

साध्वी शालायां स्त्रीसभे च साध्वी भविष्यति, तत्रयज्ञसभायां साध्वी
 ब्राह्मणपरिषदित्यत्रापि प्रसङ्गः, एवं तर्ह्येवंविधे विषये कृन्दसि सभे-
 यीशब्दस्य प्रयोगाभावोत्र हेतुः । 'णोपि क्व चिदण्कृतं कार्यं भवतीति' ।
 शीलं कृत्रादिभ्यो ण इति यो णस्तत्राण् कृतं कार्यं भवतीति । कथं,
 ज्ञापकात्, यदयं कर्मस्ताच्छील्यइति टिलोपार्थं निपातनं करोति,
 यदि हि ताच्छीलिके णो ऽण्कृतं कार्यं न स्यात्त्रिपातनमनर्थकं स्यात्,
 कर्मशब्दाच्छत्रादिनक्षणे णो कृते नस्तद्वितइत्येव टिलोपस्य सिद्धत्वाच्च
 चात्रिति प्रकृतिभावः, अणि हि स प्रकृतिभावः, । 'चैरी तापसीति' ।
 चुरातपःशब्दौ कृत्रादिषु पठितव्यौ । क्व चिदित्यस्य व्यावर्त्यं दर्शयति ।
 'दाण्डा मौष्टेति' । दण्डमुष्टिशब्दाभ्यां तदस्यां प्रहरणमिति णः ।
 'त्रौत्सी त्रौदपानीति' । उत्सोदपानशब्दाभ्यां भवार्थे उत्सादिभ्योञ्,
 अथ शाङ्करवादिषूत्रे पुनरत्र्यहणं किमर्थं, यावता ऽनेनैव सिद्धं, न रूप-
 भेदा न स्वरभेदस्तत्राह । 'शाङ्करवाद्यञ इत्यादि' । विदस्यापत्यं बैद्री,
 अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योञ्, गोत्रं च चरणैः सहेति जातिः, तत्रौत्सीत्यादौ
 चरितार्थमिमं ङीप् बाधित्वा जातिलक्षणे ङीप् प्राप्नोति, यदि तर्हि
 तस्य निबन्धनमस्ति तदेवात्र्यहणमस्तु किमत्राञ् ग्रहणेन, न वा जात्य-
 धिकारात्, जातेरिति हि तत्र वर्त्तते, अनधिकारे हि पुंयोगादाख्यायां
 ङीप् प्रसङ्गः, बैदस्य स्त्री बैद्री । उरुद्वयमीत्यादौ प्रमाणे द्वयमचदप्र-
 ज्ञमात्रः । 'पञ्चतयीति' । संख्याया अवयवे तयप्, द्वयसजादिषु अनुष-
 न्धोच्चारणं प्रातिपदिकानां ग्रहणं मा भूत् किमस्य द्वयसं किमस्य
 मात्रमिति । तयशब्दोपि तयतेः पचाद्यजन्तः सम्भवति । 'ठनादिनि-
 वृत्त्यर्थमिति' । दण्डोस्या अस्ति, अत इनिठनौ, दण्डिका, काश्यादिभ्य-
 छञ्जिठौ काशिकेत्यादौ मा भूदित्येवमर्थम् । 'तादृशीति' । त्यदादिषु
 दृशोनालोचने कञ्च, आ सर्वनाम्नः, कञा अकारोच्चारणमातोनुपसर्गं
 गोदेत्यादौ माभूत् । 'इत्वरीति' । इण्णशिञ्जिभ्यः क्वरप् ।
 'आद्यङ्करणीति' । आद्यसुभगेत्यादिना ख्युत् । 'नञ्स्त्रीकक्षरणतनु-
 नानामिति' । भाष्ये तु कञ्क्वरब्दित्येतावत्सूत्रं ख्युनः पाठो नार्थ इति

तस्याप्युपसंख्यानमेव कृतम् । 'स्त्रीणी पौंक्षीति' । स्त्रोपुंसाभ्यां नञ्संज्ञौ भवनात् । 'शक्तिकी याष्टिकीति' । प्रहरणाधिकारे शक्तियष्टोरीकृक् । 'तरुणी तलुनीति' । एतयोर्वयोर्यं ग्रहणं तरुणी सुरेति, वयसि तु वयसि प्रथमइत्येव सिद्धं, न सिद्धाति, गौरादिपाठान्डीष प्राप्नोति, तस्माद्द्वयस्य-वयसि च डीब्डीषोर्विकल्पः, क्व चिद्गौरादिपाठात्सिद्धमिति पठ्यते तद्रूपमात्रसिद्धाभिप्रायं द्रष्टव्यं, स्वराद्यं तूपसंख्यानं कर्तव्यमेव ॥

"यजश्च" ॥ 'आपत्यग्रहणमिति' । आपत्ये भव आपत्यः, यज्, आपत्यादिति सूत्रं कर्तव्यमित्यर्थः । 'द्वैष्येति' । भवादावर्थं यज् । 'योगविभाग उत्तरार्थ इति' । उत्तरत्र यज् एवानुवृत्तिर्यथा स्याद्विदादीनां मा भूदिति ॥

"प्राचां ष्फ तद्धितः" ॥ 'षकारो डीषर्थ इति' । ननु च ष्फप्रत्ययेनैव स्त्रीत्वस्य द्व्येति तत्त्वान्डीषा न भाव्यं तत्राह । 'प्रत्ययद्वयेनेति' । 'तद्धितग्रहणं प्रातिपदिकसंज्ञार्थमिति' । प्रातिपदिकसंज्ञा तु डीषर्था । ननु च सिद्धेऽत्र डीष षित्करणसामर्थ्यात्, धातोस्तु त्रपादेः षित्त्वमङ्विधौ चरितार्थमिति त्रपा समेत्यादौ डीषभावः, तदेतत्साच्यासिकं तिष्ठतु तावत् । 'सर्वत्रग्रहणमित्यादि' । सर्वत्रग्रहणं तावद् उत्तरसूत्रे न कर्तव्यम्, आरभसामर्थ्यादेव प्राचामित्यस्य निवृत्तौ सर्वत्र सिद्धत्वादतस्तदिहाप-कृष्यते, तदयमर्थो भवति, सर्वत्र बाधकविषयेऽपि प्राचां मतेन यजन्तात्फो भवतीति, एवं सप्तम्यर्थोऽपि समञ्जसो भवति । 'आवट्याच्चापं वक्ष्यतीति' । असति पुनरपकर्षे आवट्याच्चाबुदीचां मते सावकाशः परत्वात्फं बाधेत सर्वत्रग्रहणात्फ एव भवति, एवं च षाच्च यज इति चाञ्चिषयेऽपि प्राचां ष्फ एव भवति शार्करात्यायणी पौतिमा-ष्यायणी गौकत्यायणीति ॥

"सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः" ॥ लोहितादीति पृथक्पदं लुप्तवि-भक्तिकं, पूर्वत्र च प्राचां मते फो विहित इह तु सर्वत्र मते, कार्यः सर्वेषां मत-इत्यर्थः, तदाह । 'सर्वेषामाचार्याणां मतइति' । मतेनेति तृतीयान्तपाठे सूत्रे षष्ठ्यन्तान्त्रल्, । 'स्वतन्त्रमिति' । योन्यस्यावयवो न भवति तस्व-

तन्त्रं प्रातिपदिकं, कः पुनरनादित्यत्राह । 'कपिशब्दात्पर इति' ।
 लौहित्यायनीत्यादिर्गोद्यन्तर्गणः, बभ्रुशब्दोपि तत्रैव पठ्यते यज्ञ, तु
 मधुबभ्रुर्ब्राह्मणकौशिकयोरित्यनेनैव भवति । 'कण्वात्स्वित्यादि' ।
 कण्वशब्दात्पूर्वः कतशब्दात्तत्तरः शकलशब्द इष्यते, कतशकलकण्वेत्ये-
 वमेषां संनिवेशः कार्य इत्यर्थः । किमेवं सति भवतीत्याह । 'पूर्वा-
 न्तराविति' । शकलशब्दान्त आदिश्च यथाक्रमं ययोः पूर्वान्तर-
 योग्णयोस्तौ तथोक्तौ पूर्वा गणो लौहितादिः शकलशब्दान्तो भवति,
 उत्तरश्च गणः शकलशब्दादिर्भवतीत्यर्थः, सत्यमेवं भवति प्रयोजनं तु
 किमित्यत आह । 'ष्फाणाविति' । श्लोकं व्याचष्टे । 'प्रातिपदि-
 केष्वन्यथा पाठ इति' । कपिकत कुरुकत अनडुह कण्व शकलेत्येवं गर्गादिषु
 गणसन्निवेशः, । 'स एवं व्यवस्थापयितव्य इति' । 'एवमिति' श्लोको-
 क्तयानुपूर्व्येत्यर्थः । अनडुहकुरुकतशब्दावस्मात्स्थानादपहृष्यान्त्र पाठौ,
 शकलशब्दस्तु कतकण्वयोर्मध्ये पठितव्य इति यावत् । नन्वेवं
 गणद्वयादपि प्रच्युतः शकलशब्दः ष्फाणौ द्वावपि न प्रतिपद्येत, तत्राह ।
 'कतन्तेभ्य इति' । 'बहुव्रीहितत् पुरुषयोरेकशेष इति' । कतस्यान्तः
 समीपभूतः कतन्त इति तत्पुरुषेण शकलशब्द उच्यते, शकन्ध्वादि-
 त्वाविपातनाद्वा पररूपं, तथा कतान्तो येषां तानि कतन्तानीति
 बहुव्रीहिः, तत्र बहुव्रीहितत्पुरुषयोः सह विवक्षायां बहुव्रीहिः शिष्यते
 स्वरभिन्नानां यस्योत्तरस्वरविधिः स शिष्यतइति वचनात् । 'तथेत्यादि' ।
 कण्वादिभ्य इत्यपि बहुव्रीहितत्पुरुषयोरेकशेष इत्यर्थः । कण्वस्यादिः
 समीपभूतः कण्वादिः शकलशब्दः, कण्व आदिर्येषां तानि कण्वादीनि
 ततः पूर्ववदेकशेषः, तत्र, बहुव्रीहितत्पुरुषयोर्मध्ये तत्पुरुषवृत्त्या, तत्पुरुषस-
 म्यासेन । 'मध्यवर्त्तीति' । गणद्वयस्य । 'प्रत्ययद्वयमपीति' । ष्फाणावि-
 त्यर्थः । 'शाकलाइति' । आपत्यस्यति यलोपः । अपर आह । पूर्वोत्तरौ
 तदन्तादी याह्याविति शेषः, पूर्वा गणस्तदन्तोयाह्यः, सर्वत्र लौहितादि-
 शकलान्तेभ्य इति, उत्तरो गणस्तदादिर्याह्यः शकलादिभ्यो गोत्रइति ।
 एवं ष्फाणौ प्रयोजनमिति ॥

“कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च” ॥ ‘कौरव्यमाण्डूकयोरित्यादि’ । अस्मि-
न्सूत्रे आसुरेरपि ग्रहणं कर्त्तव्यम् । आसुरिकौरव्यमाण्डूकेभ्यश्चेति वक्तव्य-
मित्यर्थः । ‘आसुरायणीति’ । ष्फस्य तद्धितत्वाद्भस्येति चेति इजो
लोपः, तद्विदं तद्धितग्रहणमेव लिङ्गं भवत्यासुरेरपि ष्फ इति, यजादि-
ष्वकारान्तेषु सवर्णदीर्घत्वेनापि रूपं सिद्धम् । ‘शैषिकेषु चार्थेष्विति’ ।
आसुरीप्रसङ्गादिदमत्रोक्तम् । अन्यथा द्विरासुरियग्रहणं कर्त्तव्यं स्यात् ।
‘आसुरीय इति’ । असुरस्यापत्यमासुरिः, तेन प्रोक्त आसुरीयः कल्प
इति ॥

“वयसि प्रथमे” ॥ ‘श्रुत्येति’ । श्रवणमात्रेण प्रकरणाद्ग्रनपेक्ष-
येत्यर्थः । ‘कुमारीति’ । प्रथमवयोवचन एवायं न पुंयोगाभावहेतुकः,
पुंस्यपि प्रयोगात्, यस्तु वृद्धायां प्रयोगो वृद्धकुमारीति, स पुंयोगाभावा-
त्साधर्म्याद्देदितव्यः । ‘वयस्यचरमइति’ । चरममन्त्यमचरमे अनन्त्ये,
इह के चिच्चत्वारि वयांसीच्छन्ति कौमारं यौवनं मध्यत्वं वृद्धत्वमिति,
यथाहुः ॥

प्रथमे वयसि नाधीतं द्वितीये नार्जितं धनम् ।

तृतीयेन तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति ॥

इति । अन्ये तु चीणि ।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्रस्तु स्थिविरीभावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

इति । अन्ये तु बालत्वमध्यत्ववृद्धत्वानि चीणि ।

आषोडशाद्द्वेद्वालो यावत् क्षीरान्नवर्त्तकः ।

मध्यमः सप्ततिर्यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥

एषु सर्वेषु दर्शनेषु यौवनं द्वितीयं वयो भवति, यौवनवचनौ च
वधूटचिरण्टशब्दैः, अतो न प्राप्नोति तदाह । ‘द्वितीयवयोवचनावेतावि-
ति’ । यदा तु द्वे एव वयसौ उपचयापचयलक्षणो तदैतन्न वक्तव्यं, यौव-
नस्यापि प्रथमवयोरूपत्वात् । श्रुत्या वर्त्ततइति यदुक्तं तस्य व्यावर्त्ये
दर्शयति । ‘उत्तानशया लोहितपादिकेति नैता वयःश्रुतय इति’ ।

श्रुत्या श्रवणमात्रेण नैते वयः प्रतिपाद्यन्तीत्यर्थः । इह तावदुत्तानश-
येति, क्रियाकारकसम्बन्धमात्रं प्रतीयते, तदेव च प्रवृत्तिनिमित्तम् ।
उत्तानादिषु कर्तृष्विति शेरतेरच् प्रत्ययः, सर्वत्र च कदा चिदुत्ताना
शेते उच्यते चेदमुत्तानशयेति तत्र नियमो गम्यते, अन्यथा स्वप्तुमसाम-
र्थादुत्तानैव शेतइति, एवमपि सन्देहः, बाला वृद्धेति, तस्मादुत्तानैव-
शेतइति नियमो वृद्धत्वाभावे च प्रकरणादिना ऽवसिते बाल्यं गम्यते,
लोहितपादिकेत्यत्रापि अन्यपदार्थमात्रं श्रुत्या प्रतीयते । प्रकरणादिना
स्वभावत एवास्या रक्तौ पादौ नालक्तकादिनेति प्रतीतौ सत्यां बालेति
गम्यते, इतिशब्दः प्रकारे, एवंप्रकारा न वयःश्रुतय इत्यर्थः । अत एव
बहुवचनं, तेन द्विवर्षेत्यादावपि न भवति, अत्रापि प्रकरणादिना वयोः
गम्यते, परिमाणमात्रं तुशब्दार्थः, शालादावपि प्रयोगात्, द्वे वर्षे भूता
इति ठञो वर्षाल्लुक्च, चित्तवति नित्यमिति लुक् ॥

“अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि” ॥ ‘तद्धित-
लुकि सतीति’ । परसप्तमी त्वेषा नोपपद्यते, अभावरूपेण लुका पौर्वा-
पर्याप्तम्भात् । ‘सर्वतो मानं परिमाणमिति’ । परिमाणं तु सर्वत इत्यस्य
ग्रहणं न परिच्छेदकमात्रस्येत्यर्थः । ‘पञ्चभिरश्वैः क्रीतेति’ । तद्धितार्थे
द्विगुः, आर्हीयष्टक् । ‘कालः सङ्ख्या च न परिमाणमिति’ । नहि ताभ्यां
सर्वत आरोहतः परिणाहतश्च मीयते, एवं च कालः सङ्ख्या चेति प्रदर्श-
नार्थत्वात्परिमाणमपि परिमाणं न भवति, तथा चोत्तरमूत्रे काण्डशब्द-
स्यापरिमाणवाचित्वादिति वक्ष्यति, प्रमाणविशेषः काण्डमिति च, तेन
द्वौ श्वौ प्रमाणमप्या इति मात्रचः प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति लुकि
द्विशमा त्रिशमेति भवति, यद्येवमुन्मानमपि परिमाणं न स्यात्, कश्चिदा-
ह, इष्टमेवैतदुन्मानमपि नैवात्र परिमाणग्रहणेन एह्यते द्वाभ्यां निष्काभ्यां
क्रीता प्राग्वतीयस्य ठञो द्वित्रियुर्वाविष्कादिति लुक्, द्विनिष्का त्रिनि-
ष्काति भवतीति । अपर आह, विस्तकम्बल्यग्रहणं ज्ञापकमुन्मानमप्यत्र
परिमाणग्रहणेन एह्यतइति तयोन्मानविशेषत्वात्, सुवर्गायित्वा हेत्वात्,
कम्बलाच्च सञ्जायां कम्बल्यमूर्णोपलशतमिति । न्यासकारस्तु द्वौ

बिस्तौ परिमाणमस्येति विद्युद्भृन् बिस्तं परिपरिमाणं मन्यते । 'द्विव-
र्षति' । कृतव्युत्पादनमेतत् । 'द्विशता त्रिशतेति' । द्वाभ्यां शताभ्यां
क्रीतेति पणपादमाषशताद्वदिति नित्ये यति प्राप्ते शाखाद्वेत्यत्र शता-
च्चैति वक्तव्यमिति वचनात्पक्षे सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कञ्चिति कन्,
तस्याध्यर्द्धपूर्वति लुक् । 'द्विबिस्तेति' । परिमाणत्वे ठजो लुक्, उन्मा-
नत्वे ठकः । 'द्वाचितेति' । आचितो दशभाराः स्युः, द्वावाचितौ
पचति, आठकाचितपात्रात्खोन्यतरस्यां, द्विगोष्ठंश्चेति पक्षे ठन्खौ,
ताभ्यां मुक्ते प्राग्वतीयष्टञ्, तस्य पूर्ववल्लुक् । 'द्विकम्बल्येति' । क्रीतार्थे
ठजो लुक्, द्वाठकी द्वाचितेत्यनेन तुल्यम् । 'पञ्चाश्वीति' । समाहारे
द्विगुः । इमौ द्वौ प्रतिषेधावुच्येते तत्रैकः शक्यो वक्तुं, कथम्, एवं
वदामि परिमाणात्तद्वितलुकीति, तत्रियमार्थं भविष्यति, परिमाणा-
न्तादेव तद्वितलुकि ङीष् भवतीति, तेन द्वाठकीत्यादौ च भविष्यति,
पञ्चाश्वेत्यादौ च न भविष्यति, ततो बिस्ताचिकम्बल्येभ्यो नेति, नैवं
शक्यं विपरीतोपि नियमः सम्भाव्येत परिमाणान्तात्तद्वितलुक्येवेति, तत्र
को दोषः, परिमाणात्समाहारे न स्यात् द्विकुडुवी पञ्चाठकी, पञ्चा-
श्वेत्यादौ तु व्यावर्तकाभावात्स्यादेव ङीष्, तस्माद्वयान्यासमेवास्तु ॥

“काण्डान्तात्क्षेत्रे” ॥ मानदण्डः काण्डं, द्विगोरित्यधिकारा-
देव पूर्वसूत्रवत्तदन्तविधौ सिद्धे किमर्थमन्तग्रहणम्, अक्रियमाणेन्तग्रहणे
क्षेत्रइत्येतत् काण्डस्यैव विशेषणं विज्ञायेत क्षेत्रे यः काण्डशब्दस्त-
दन्ताद्द्विगोरिति श्रुतत्वात् न तदन्तस्य, यथोत्तरसूत्रे प्रमाणे यः पुरुष-
शब्दस्तदन्तादिति, ततश्चेह प्रसज्येत द्वाभ्यां काण्डाभ्यां काण्डप्रमि-
ताभ्यां क्षेत्राभ्यां क्रीता द्विकाण्डी वडवेति, इह तु न स्यात् द्वे काण्डे
प्रमाणमस्याः द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिरिति, अन्तग्रहणे तु सति तदन्तस्यैव
विशेषणं क्षेत्रं न काण्डस्य बहुव्रीहौ गुणभूतत्वात् ॥

“पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्” ॥ 'प्रमाणे यः पुरुषशब्द इति' ।
पञ्चारविः पुरुष इति शुल्बविदः, तत्र द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या इति

वाक्ये प्रमाणशब्देन सम्बन्धान् जातिवचनोपि पुरुषशब्दः प्रमाणे वर्त्तते,
वृत्तौ तु तत्स्वभावादेव प्रमाणे वर्त्तिर्द्रष्टव्या ॥

“ बहुव्रीहेरुधसो ङीष् ” ॥ ‘ऊधसो ऽनङिति समासान्ते कृत-
इति’ । स’मासार्थादुत्तरपदाद्भवन्समासान्तः पूर्वं भवति ततः स्त्रीप्र-
त्ययः । ‘अनो बहुव्रीहेरिति’ । उपलक्षणमेतत् । अनो बहुव्रीहेः, डाबुभा-
भ्यामन्यतरस्यामिति चेत्यर्थः । ‘कुण्डोधीति’ । कुण्डमिव ऊधोऽस्या
इति विग्रहः, ङीष्ल्लोपोन इत्यकारलोपः । ‘प्राप्तोधा इति’ । प्राप्ता-
पञ्चे च द्वितीययेति तत्पुरुषः, अत्वसन्तस्य चेति दीर्घः, । ‘अन उपधालो-
पिन इत्यादि’ । असत्यां पुनरनुवृत्तौ मध्येषवादन्वायेन डाप्प्रतिषेध-
योरेवायं ङीष् बाधकः स्यात् नान उपधालोपिन इत्यस्य ङीष्ः । ननु च
डाबुभाभ्यामित्यत्रानेनान्यतरस्यांयहणेन ङीबपि प्राप्यते, अन उपधालो-
पिन इत्ययं तु नियम इत्यवादीति कुतोयमनिष्टप्रसङ्गः । सत्यम् । अन
उपधालोपिन इत्यस्य तु विधित्वाभ्युपगमेनैतदुक्तम् । इह बहुव्रीहेरु-
धसो ङीष् नश्चेति वक्तव्यम्, ऊधःशब्दान्ताद्बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष् भवति
तत्सवियोगेन चान्त्यस्य नकारः, समासान्तप्रकरणे तु ऊधसोऽङिति न
वक्तव्यं, धनुषेऽङित्येव पठितव्यं, कः पुनरेवं सति गुणो भवति, अन
उपधालोपिन इत्यत्रास्यानुवृत्तिर्नाश्रयितव्या भवति, अपि च महोधाः
पर्जन्यः कुण्डोधो धैनुकमिति सिद्धं भवति अन्यथा ऊधसोऽङित्यत्र
स्त्रियामिति वक्तव्यं स्यादत आह । ‘समासान्तश्च स्त्रियामेवेति’ ।
इष्यतइत्यनुषङ्गः, तत्रैव स्त्रियामिति वक्तव्यमित्यर्थः, इतरथा हि कव्वि-
धिप्रसङ्गः, कपोवकाशः ऽन्यो बहुव्रीहेः, अयवकः, अत्रीहिकः, ङीष्स्तु
विभाषा कप् यदा न कप् सोवकाशः, कप्प्रसङ्गउभयं प्राप्नोति परत्वा-
त्कप् स्यात् ॥

“संख्याव्ययादेर्ङीप्” ॥ ‘पूर्वेण ङीषि प्राप्ते ङीष् विधीयतइति’ ।
यत्र पूर्वपदप्रकृतिस्वरस्तत्र बहुव्रीहौ, अन्तोदासे तु बहुव्रीहौ ङीम्ङीषो-
र्नास्ति विशेषः, सूधी, नञ्सुभ्यामित्यन्तोदात्तत्वं तत्राल्लोपे ङीबष्पु-

दात्तनिवृत्तिस्वरणेदात्तो भवति । 'द्वुधीत्यादि' । द्वे ऊधसी यस्या अतिगतमूधोस्या निर्गतमूधोस्या इति विग्रहः । 'आदिग्रहणं किमिति' । संख्याव्ययाभ्यामुत्तरो य ऊधःशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरिति विज्ञायमाने द्वुधीत्यादि सिद्धमिति प्रश्नः । 'द्विविधोधीति' । असत्यादिग्रहणे संख्याव्ययाभ्यामिति पञ्चमीनिर्देशात्ताभ्यामनन्तरो य ऊधःशब्दस्तदन्तादेव स्यात्पदान्तरव्यवाये तु न स्यादिति भावः ॥

“दामहायनान्ताच्च” ॥ स्वरितेनाधिकार इत्यत्र द्वौ पक्षौ शब्दाधिकारोर्थाधिकारश्चेति, तत्राद्ये पक्षे यस्यैव शब्दस्य स्वरितत्वं प्रतिज्ञातं स एवानुवर्त्तते, द्वितीये तु द्वन्द्वार्थस्यैकत्वात्तस्यैवानुवृत्तिः स्याद्वा न वा, तदिहाद्यं पक्षमाश्रित्याह । 'संख्याग्रहणमनुवर्त्तते नाव्यग्रहणमिति' । 'हायनो वयसि स्मृत इति' । प्रकृतिरिति शेषः । हायनान्तो बहुव्रीहिवयसि गम्यमाने ङीपः प्रकृतिराचार्यैः स्मृत इत्यर्थः । 'त्रिहायना शालेति' । प्राणिधर्मो वयः शालाया न सम्भवति । अथ मूत्रोदारहणवन्नचतुर्भ्यां हायनस्येत्यौपसंख्यानिकं णत्वं कस्माच्च भवतीत्यत आह । 'णत्वं चेत्यादि' । बहुव्रीह्यधिकारादेव तदन्तविधिसिद्धेरन्तग्रहणं विस्यष्टार्थम् ॥

“अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्” ॥ इति परत उपधालोपो यस्य सम्भवति स उपधालोपी । 'ननु सिद्धा एवेत्यादि' । एतच्च डाबुभाभ्यामित्यत्रैव व्याख्यातम् । 'अनुपधालोपिनो ङीप्प्रतिषेधार्थं वचनमिति' । अनो बहुव्रीहेर्यदन्यतरस्यां ङीब्विधानं तदुपधालोपिन एवेत्येवं नियमार्थमित्यर्थः । अस्य च नियमस्यानुपधालोपिनो ङीन्निवृत्तिः फलमिति फलतः प्रतिषेधवाचो युक्तिः । 'बहुराजे इति' । ऋङ् आप इति शी भावः, द्विवचननिर्देशो डापोभिव्यक्तये, एकवचने डाप्प्रतिषेधयो रूपस्य तुस्यत्वात् । 'बहुमत्स्येति' । सूर्योतिष्यागस्त्येत्यादिना उपधालोपविधानादुपधालोप्येष बहुव्रीहिः । 'सुपर्वति' । न संयोगाद्दमन्तादिति निषेधचायमुपधालोपी ॥

“ नित्यं संज्ञाकृन्दसोः ” ॥ ननु कृन्दसि दृष्टमेवानुविधीयते नापूर्वमुत्प्रेक्ष्यते, तत्र च ङीबेव चेदृश्यते तस्य च लक्षणमस्ति क इदानीं तदभावं प्रयोक्तुं प्रभवति, संज्ञाशब्दा अप्यनादिप्रयुक्ता नियतानुपूर्वीका स्तत्रापि ङीबेव चायं दृश्यते न तदभावः शक्यते कर्तुं, किमर्थमिदं सूत्रं, संज्ञाकृन्दसोरिति पदमुत्तरार्थं वक्तव्यं, नित्यग्रहणमुत्तरत्र विकल्प-निवृत्त्यर्थम् ॥

“ केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्थकृतसुमङ्गलभेषजाञ्च ” ॥ ‘केवलेति भाषायामिति’ । असंज्ञाविषयइति भावः । ‘मामकीति’ । मयेयमिति युष्मदस्मदोरन्यतस्यां खञ्चेत्यण्, तवकममकावेकवचनइति ममकादेशः, तत्राणन्तत्वाट्टिद्वाणञित्येव सिद्धे नियमार्थे मामकग्रहणं संज्ञाकृन्दसोरिव ङीबान्यत्रेति । ‘मामिकेति’ । टापि मामकनरकयोरुप-संख्यानमितीत्वम् । ‘भागधेयीति’ । भागशब्दात्पुल्लिङ्गात्स्वार्थं धेयप्रत्ययः, स्वार्थिकाश्च क्व चिदतिवर्त्तन्ते प्रकृतितो लिङ्गमिति स्त्रीलिङ्गता । ‘पापे-ति’ । अभेदोपचारात्तद्वृत्ति वर्त्तमानः पापशब्दोऽभिधेयवलिङ्गः, अवरीत्यत्र द्वितीयो वर्णा दन्त्योष्ठो न पवर्त्यः । ‘आर्येण कृतेति’ । प्राक् सुबुत्पत्तेः समासे ऽकारान्तत्वम् । ‘भेषजीति’ । भिषज इयमित्यणि आदिवृद्धेरभावो ऽस्मादेव निपातनादेकारः, एवं च भेषजग्रहणमपि नियमार्थम् ॥

“ रात्रैश्चाजसौ ” ॥ ‘कथमित्यादि’ । दीर्घान्ताज्जसि दीर्घान्जसि चेति पूर्वसवर्णदीर्घप्रतिषेधादग्रणादेशे रात्र्य इति प्रयोग उपपद्यते, ह्रस्वान्तस्य तु जसि चेति गुणे रात्रय इति रूपं स्यात्, दीर्घान्तरत्र रात्रिशब्दः संज्ञाकृन्दसोरपि जसि न सम्भवति, अजसाविति प्रतिषेधात् किंपुनर्भाषयामिति प्रश्नः । ‘ङीषयमित्यादि’ । बह्नादिषु रात्रिशब्दो न पठ्यतइति चेत् तत्राह । ‘तत्र हीति’ । कृत इकारः कृदिकारः, तदन्तान्ङीष् भवति, दृजाग्रभ्यां विः, दर्धिः, दर्धी, यस्तु क्तिसंबन्धी तदन्ताच्च भवति कृतिः कृतिः । ‘सर्वत इति’ । कृदिकारादकृदिकाराच्चेत्यर्थः । यस्तु क्तिसंबन्धस्तस्माच्च भवति आक्रोशेनञ्यनिः, अकारणिरहरणिः । रात्रिशब्दोऽयं राश-दिभ्यां त्रिविति व्युत्पत्तिपक्षे कृदिकारान्तः, अव्युत्पत्तिपक्षे सर्वतोक्तिसंबन्धी-

दिति डीष्, सूत्रं तु डीवर्थं रात्री व्यत्यत्, रात्रीभिरस्मात्प्रहभिर्देशस्येत्, अचाद्मुदात्तत्वं भवति ॥

“अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्” ॥ ‘निपातनसामर्थ्याच्चेति’ । कार्यान्तर-
सदर्थविशेषवृत्तिरपि लभ्यतइति भावः । कस्मिन्विशेषइत्यत्राह । ‘अन्तर्व-
त्पतिवदिति गर्भभर्तृसंयोगइति’ । अन्तर्वदिति गर्भसंयोगे गर्भि-
ण्यामित्यर्थः । पतिवदिति भर्तृसंयोगे भर्तृमत्यामित्यर्थः, जीवपत्या-
मिति यावत् । ‘इह न भवति अन्तरस्यां शालायां विद्यतइति’ । अस्मि-
न्विषये एवं विधं वाच्यमेव भवति न तु मनुबादीत्यर्थः । क
च्चिदन्तर्वती शालेति पठ्यते तदयुक्तम्, अत्र मनुबभावस्योक्तत्वात् ।
‘पतिमती पृथिवीति’ । स्वामिपर्यायोत्र पतिशब्दः । ‘मनुज्ञिपात्य-
तइति’ । अधिकरणप्रधानस्यान्तःशब्दस्यास्तिना ऽसामानाधिकरण्याच्च
प्राप्नोतीति कृत्वा । ‘वत्वं तु सिद्धमिति’ । मादुपधायाश्चेत्यनेना-
दुपधत्वात् । ‘अन्तर्वत्पतिवतोरित्यादि’ । एतयोः शब्दयोर्निपात-
मान्मनुञ्चत्वे भवतः, नुक् विधीयते यथाक्रमं गर्भिण्यां जीवपत्यां
चाभिधेयायां, जीवः पतिरस्याः जीवपतिः, विभाषा सपूर्वस्येति
डीन्कारयोरभावपत्ते रूपं, तत्र डिति ह्रस्वश्चेति नदीसंज्ञापत्ते इदु-
द्वामिति हेरामादेशः, जीवत्पत्यामिति भवति । वा तु छन्दसि
नुग्विधिः, छन्दसि विषये तु विकल्पेन नुग्विधिर्भवति, अन्तर्वती
अन्तर्वती, पुंस्यपि दृश्यते सोन्तर्वानभवत् ॥

“पत्युर्नो यज्ञसंयोगे” ॥ यद्यत्र यज्ञशब्देन पतिशब्दस्य संबन्धा
यज्ञसंयोग इत्यर्थः स्यात् यज्ञस्य पतिरियं ब्राह्मणीत्यत्रैव स्यात्, अस्ति
ह्यभ्राष्ट्रद्वारकः संबन्धः स्वरूपेण चानन्तर्यलक्षणः, अथ यज्ञवाचिना
संयोगो यज्ञसंयोगः तथापि पत्नीसंयाज इत्यादावेव स्यात् त्वियमस्य
पत्नीत्यादौ, तस्माद्यज्ञशब्दस्य योर्थस्तेन पतिशब्दार्थस्य संबन्धा
यज्ञसंयोग इत्याह । ‘यज्ञेन संयोगइति’ । अन्यथा यज्ञशब्देनेत्य-
वक्ष्यत् । एवं च पतिशब्दार्थस्येत्यप्युक्तं भवति, नहि पतिशब्दस्य
यज्ञेनार्थेन वाच्यवाचकभावः संबन्धान्तरं वा सम्भवति । ‘तत्सा-

धनत्वादिति' । देवतोद्वेषेन स्वद्रव्यत्यागो यागः, मध्यकं च दम्प-
 त्योर्धनं कुटुम्बिनौ धनस्येशति जायापत्योर्न विभागो विद्यतइति हि
 स्मर्यते, ततश्च त्यागे भार्याया अप्यनुमतिरपेत्यतइति, तत्रास्या अनु-
 मत्या साधनत्वं, पत्यवेक्षितमाज्यं भवतीत्यादौ च साक्षादेव कर्तृत्वं
 मदभिलषितसाधनतया मदर्थं कर्मत्येवं रूपोधिकारलक्षणसंबन्धो-
 स्तीत्याह । 'फलग्रहीत्वत्वादिति' । कर्तृत्वमात्रं विवक्षितं न स्त्रीत्व-
 मिति डीम् कृतः, कर्त्तरि चेति समासप्रतिषेधः कर्मणि षष्ठा एव न
 शेषषष्ठा इति तस्यानेनोपपन्नः समासः, फलग्रहीतत्वादिति पाठे
 ग्रहीतं फलं ययेति बहुव्रीहौ फलशब्दस्य जातिवचनत्वाद् निष्ठायाः
 पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परचनमिति ग्रहीतशब्दस्य परनि-
 पातः । 'कथमित्यादि' । शूद्रस्यैव यज्ञे ऽनधिष्ठितत्वाद्यज्ञेनासंयोगा-
 त्कथं तद्भार्याया यज्ञसंयोग इति प्रश्नः । 'उपमानादिति' । अग्नि-
 साक्षिकं यत्यागिग्रहणं तदृषलादीनामप्यस्ति तदाश्रयमुपमानम् ॥

“विभाषा सपूर्वस्य” ॥ सहशब्देऽयमस्ति तुल्ययोगे यथा सशिष्यो
 गुरुरागत इति, अस्ति च विद्यमानवचनः, यथा सहैव दशभिः
 पुत्रैर्भारं वहति गर्द्वंभीति, इत्यभूतलक्षणे तृतीया, विद्यमानेष्वेव पुत्रे-
 ष्वित्यर्थः, पूर्वशब्देऽप्यस्ति व्यवस्थावचनः, पूर्वं मधुरायाः पाटलिपुत्र-
 मिति, अस्ति चाश्रयशब्दः पूर्वं कायस्येति, तत्र तुल्ययोगे सहशब्दः
 पूर्वशब्दश्च व्यवस्थायामिति पक्षे यामस्य पतिरियमिति वाक्ये प्राप्नोति,
 पूर्वस्य चापि प्राप्नोति, विद्यमानवचनसहशब्दः पूर्वशब्दश्च व्यवस्थावचन
 इति पक्षे पूर्वस्य माभूद्वाक्ये तु स्यादेव, अश्रयवचनः पूर्वशब्दः
 तुल्ययोगे सहशब्द इति पक्षे वाक्येपि स्यात्, तत्रापि पतिशब्दस्य
 पूर्वोच्यवचनः प्रकारस्तस्यापि स्यात्स्माद्विद्यमानवचनः सहशब्दः पूर्व-
 शब्दश्चावयववचन इति पक्ष आश्रीयते, तेन सहेत्यत्र तुल्ययोगइति
 विशेषणस्य प्रायिकत्वात्समासः, एवं च स्थिते सपूर्वस्येति पतिशब्दविशेष-
 षणं नोपपद्यते कथं प्रकारेण सपूर्वत्वमव्यभिचारादविशेषणं शब्दान्तरं
 तु पतिशब्दस्यावयवो न सम्भवति ततश्च सामर्थ्यात्प्रातिपदिकं पतिश-

ब्देन विशेष्यते न तु तेन । 'पतिशब्द इति' । पतिशब्देन तदन्तस्य ग्रहणम्, अनुपसर्जनग्रहणेनापि तदन्तं प्रातिपदिकमेव विशेष्यते न विशेष्यभूतः पतिशब्दः, अन्यथा बहुव्रीहौ न स्यात् जीवः पतिरन्याः जीवपतिर्जीवपत्नीति, षष्ठीसमास एष तु स्यादाशापतिराशापत्नीति, तदेतत् सर्वमालोच्याह । 'पतिशब्दान्तस्य सपूर्वस्यानुपसर्जस्येति' । 'शामस्य पतिरियमिति' । असति सपूर्वग्रहणे तदन्तविधेरभावादत्रैष स्यात्, अथाप्यमहत्पूर्वेति ज्ञापकात्तदन्तेपि भवेत्केवलस्यापि स्यादेव तस्मात्सपूर्वस्येति वक्तव्यम् ॥

“ नित्यं सपव्यादिषु ” ॥ यानि समानादिपूर्वपदानि पत्यन्तानि प्रातिपदिकानि ते सपव्यादयः, कुत एतत्, समानादीनामेव गणे पाठात्, सपव्यादीनां चापाठात्, यद्येवं समानादिष्विति वक्तव्यं पूर्वग्रहणानुवृत्तेः, समादिषु पूर्वष्वयवेषु सत्स्वित्यर्थे, सत्यं, समानस्य सभावार्थे तु सपव्यादिष्वित्युक्तं, क्व चित्तूदाहरणानन्तरं समानादिष्विति वक्तव्यं सभावार्थमेवमुक्तमिति वृत्तावैव पठ्यते, अपर आह । समुदायोच्चारणसामर्थ्यात्सपत्नीभार्य इत्यत्र पुंवद्भावो न भवतीति नाच्चाप्तोक्तिरस्ति । किं च सभावार्थे समुदायोच्चारणमिदमिति समर्थ्यमपि चिन्त्यं, तथा हे सपत्निःसपत्निः सपत्यं च्छति सपव्या सपत्यै इत्यादावपि ह्रस्वयणादेशो न स्यातां तस्मात्सभावार्थमेव सपव्यादिष्वित्युक्तम् । 'नित्यग्रहणं विस्पष्टार्थमिति' । आरम्भसामर्थ्यादेव नित्यं भविष्यतीति भावः । 'दासाच्छन्दसीति' । दासपत्नीरहिगोपाः ।

• “पूतक्रतोरै च” ॥ यद्ययमैकारः प्रत्ययः स्यद्दुत्तरसूत्रउदात्तवचनमनर्थकं स्यात् प्रत्ययत्वादेव सिद्धेः, तस्मादादेशोऽयं विज्ञायतइत्याह । 'ऐकारश्चान्तादेश इति' । 'त्रय एते योःगा इति' । पुंयोगादाख्यायमित्यत्रानुवर्त्तयितव्या इत्यर्थः । इह करणसामर्थ्याच्च डीष्सहिता एबानुवर्त्तन्ते, तेन यदा पुंयोगात्स्त्रियां पूतक्रत्वाद्यो वर्त्तन्ते तदा डीष्ं बाधित्वा ऐकारादिसहिता डीष् भवति ॥

“वृषाकप्यग्निकुक्षितकुमीदानामुदात्तः” ॥ ‘वृषाकपिशब्दे मध्मोदात्त इति’ । लघावन्ते द्वयोश्च बहुषो गुरुरिति वचनात् । अस्यार्थः । अन्ते एकस्मिन्लघौ द्वयोश्च लघ्वोः परतो बहुषः शब्दस्य गुरु-
रुदात्तो भवतीति, बहुष इति, बहुच इत्यर्थः । योस्माकं चकारेण प्रत्या-
हारः सोन्येषां षकारेण । ‘अन्यादिषु पुनरिति’ । फिपित्यनेनाग्न्यादी-
नामन्तोदात्तत्वं, फिषिति प्रातिपदिकस्यान्याचार्यसंज्ञा, ये तु कुसी-
देति मध्ये गुरुमधीयते तेषां लघावन्तइति मध्मोदात्तप्रसङ्गः ॥

“मनोरौ वा” ॥ ‘ऐकारश्चोदात्त इति’ । औकारस्त्वनुदात्त एव । ‘वायहणेन द्वावपि विकल्प्येते इति’ । यदा च द्वावपि न भव-
तस्तदा ङीवपि न भवति सन्नियोगशिष्टत्वात् । ‘मनुशब्द आद्युदात्त इति’ । मन ज्ञाने, भृमृशीतृचरित्सरितनिधनिमिमशिजभ्य उरिति वर्त्त-
माने धान्ये निदिति च, शृस्वृस्त्रिष्यसिर्वासिहनिक्लिदिबन्धिमनि-
भ्यश्चेति उपत्ययः, निच्चादाद्युदात्तत्वं, भरुः, मरुः, शयुः, तरुः, चरुः,
त्सरुः, तनुः, धनुः, मयुः, मद्रुः, न्यङ्कादिपाठात्कुत्वं, प्रथमस्यादाहर-
णानि । शरुः, स्वरुः, खेहुः, जर्षु, असुः, वसुः, हनुः, क्तेहुः, बन्धुः, मनु-
रितिद्वितीयस्य ॥

“वर्णोदनुदात्तात्तोपधात्तो नः” ॥ ‘वर्णानां तणानितन्तानामिति’ ।
तशब्दान्तानामेतादीनां णशब्दान्तानां शोणादीनां तिशब्दान्तानां शिति-
प्रभृतीनां निशब्दान्तानां ष्णिप्रभृतीनां तकारान्तानां च ष्पत्प्रभृतीनां ष-
र्णोवाचिनामादिरुदात्ता भवतीत्यर्थः । ‘गतिस्वरणेति’ । गतिरनन्तर इत्य-
नेन । ‘घृतादित्वादिति’ । घृतादीनीति फिषि पठ्यते । ‘क्षिशङ्गा-
दिति’ । लघावन्तइति मध्मोदात्तत्वाद्दुत्तरपूत्रेण ङीषि प्राप्ते ङीष्वि-
धीयते । ‘असितपलितयोरिति’ । वर्णानां तणानितन्तानामित्या-
द्युदात्तावेतौ । ‘ह्रन्वसीत्यादि’ । तो न इति नकारे प्राप्ते कशब्दं
ङीष्सहितमिच्छन्ति । ‘भाषायामपीष्यतइति’ । भाष्ये तु नैतत्प्रदर्शित-
म्, अवदातशब्दे न वर्णोवाची किं तर्हि विशुद्धवाची, एवं ह्यह ।

त्रीणि यस्यावदातानि विद्ययानिश्च कर्म च ।

एतन्नयं विजानीहि ब्राह्मणाय्यस्य लक्षणम् ॥

इति । तेनावदातेत्यत्र ङीम् भवति ।

“अन्यतो ङीष्” ॥ सारङ्गकल्माषशब्दौ लघावन्तइति मध्वा-
दात्तौ, शप आक्रोशे, कल वृषः, शपेर्बश्चेति कलप्रत्ययः, पकारस्य बकारः
प्रत्ययस्वरेण मध्वादात्तः शबलशब्दः, खट्वाशब्दो नित्स्वरेणाद्युदात्तः, खट्
काङ्क्षे, अशुप्रुषिलटिकणिलखटिविशिभ्यः क्वन्, कृष्णशब्दान्तोदात्तः, कृषेर्वर्ण-
इति नक् प्रत्ययः, इलचि प्रकृते कपेश्चेति उणादिषु सूत्रं, कपिः सौत्रो
धातुः, कपिलशब्दान्तोदात्तः ॥

“षिद्गौरादिभ्यश्च” ॥ ‘षिद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्य इति’ । घु-
नादेः प्रत्ययस्य षित्त्वमवयवे ऽचरितार्थे समुदायस्य विशेषकं भवतीति
प्रातिपदिकानां षित्त्वं, धातोस्तु ऋपादेः षित्त्वमङ्गविधौ चरितार्थमिति
न तेन प्रातिपदिकं षिद्भवति । ‘रज्ज्कीति’ । शिल्पिनि घुनित्यत्र घु-
त्पादितं, गौरादिषु गौरशब्दस्य वर्णवाचिनोऽप्यन्तोदात्तत्वात्पाठः, मत्स्या-
दीनां योपधानामयोपधादिति जातिलक्षणस्य ङीष्ः प्रतिषेधात्पाठः,
अन्येषां जातिशब्दानां स्त्रीविषयार्थः पाठः, श्वन्तञ्चित्येतयोर्डापि प्राप्ते ।
‘अनडुही, अनड्वाहीति’ । अनकारान्तत्वाद्प्राप्ते ङीष्ि सप्रत्यययोः पाठः,
ङीष्ि परतो विकल्पेनान्यथा स्यात् । ‘एषणकरण इति’ । करणसाधन
एषणशब्दो ङीष्मुत्पादयति, इष्यतेनयेत्येषणी, अधिकरणे ल्युडिति
टित्त्वान् ङीबेव भवति, अन्येषामपि ल्युङन्तानां ङीष्ि प्राप्ते पाठः, मेध-
शब्दस्याजातिवाचित्वाद् गौतमस्य शाङ्गारवादित्वान् ङीष्ि प्राप्ते वचना-
त्पत्ते सौपि भवति, आयस्यूणशब्दः शिषादरणन्तः, भौरिक्यादय इज-
न्तास्तेषामणिजोरिति ष्यङ्प्राप्तौ, आपिच्छिका नाम राजानः, जन-
पदशब्दात्तत्रियादञ्, तस्यातश्चेति लुकि कृते प्रत्ययलक्षणेन ङीष्प्रा-
प्तेति, अपे हायनमस्य अयहायनः, प्रजादित्वात्स्वार्थिकोण्, अस्मादेव
निपातनाण्णत्वम्, आयहायणः, ङीष्ि प्राप्ते पाठः, के चिदायहायणी-
तीकारान्तं पठन्ति, तस्य प्रयोजनमायहायणीभार्य इत्यादौ पुंवद्भावे

मा भूदित्याहुः । एतेन प्रत्यवरोहणीति व्याख्यातम् । 'सुमङ्गला-
त्संज्ञायामिति' । केवलमामकेति ङीपि प्राप्ते पत्ते सोपि भवति
स्वरे विशेषः, सुमङ्गलशब्दो बहुव्रीहिस्तत्र नःसुभ्यामित्यन्तोदात्तत्वा-
न्ङीप्पि सत्युदात्तनिवृत्तिस्वरेण भाव्यमिति नास्ति विशेषः, तथा
च छन्दसि सुमङ्गलीरियं वधूरित्यन्तोदात्तत्वं दृश्यते, तस्माज्जाति-
वचनो ऽव्युत्पन्नः स्त्रीविषयः सुमङ्गलशब्दो लघावन्तइति मध्यादातो
द्रष्टव्यः, तरुणतलुनयोर्नञ्स्त्रीकृत्स्वरेति ङीपि प्राप्ते पत्ते सोपि भवति,
बृहन्महच्छब्दयोरनर्थकः पाठ इति प्रागेवोक्तम्, ऋष्यणन्तः सौधर्मशब्दः ।
'रोहिणी नत्तत्रइति' । नत्तत्रादन्यत्र रोहिणी । 'रेवती नत्तत्रइति' ।
रयिरिति धननाम, रयिर्विद्यतेस्या इति मतुपि रयेर्मतौ बहुलमिति सम्प्र-
सारणं, निपातनादृष्यं, नत्तत्रादन्यत्र ङीष् भवति, विकलादीनां टापि
प्राप्ते । कटाच्छोणि वचने, कटी शोणिः, अन्यत्र कटा । 'पिप्पल्यादय-
श्चेति गणसूत्रं, पिप्पली हरीतकीत्यादिकं तु तस्योदाहरणप्रदर्शनम् ।
'पृथिवीति' । प्रथेः पिषन्सम्प्रसारणं चेति पिप्वादेव सिद्धे प्रत्यया-
न्तस्य पाठः पुंषद्वावनिवृत्त्यर्थः, पृथिवीभार्य इति । स्त्रीविषय-
स्यास्य पुंषद्वावपाप्तिश्चिन्त्या, क्राष्टुशब्दस्य स्त्रियां चेति तृज्वद्वावः ।
क्राष्टीत्यत्र निरूपणीयमस्ति स्त्रियां चेत्यत्र निरूपयिष्यामः । 'पिप्वा-
देव सिद्धइति' । मातरि पिप्वेति वार्तिककारवचनात्पिष्यं निपातनसा-
मर्थ्याद्वा, उक्तं हि

धातुसाधनकालानां प्राप्त्यर्थं नियमस्य च ।

अनुबन्धविकाराणां कृत्वर्यं च निपातनम् ॥

इति । 'दंष्ट्रेति' । येषामजादिषु दंष्ट्रेति पाठो नास्ति तेषामिदं
प्रयोजनम् ॥

“जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुक्कबरावृत्य-
मत्रावपनाकृत्रिमाश्रायास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवे-
शेषु” ॥ वर्त्ततेनया सा वृत्तिः जीविका, । 'स्वरे विशेष इति' ।

तमेव दर्शयति । 'उत्सादिपाठादञि कृतइति' । अमत्रं भाजनम् ।
 'कुण्डान्येति' । क्रियाशब्देयं, कुडि दाहे, गुरोश्च हल इत्यकारप्रत्ययः,
 आवटपर्यायस्तु कुण्डशब्दो नपुंसके नियतः, यस्तु पत्यौ जीवति कुण्डः
 स्यादिति मनुष्यजातिवचनस्ततो जातिलक्षणो ङीष् भवत्येष कुण्डीयं
 न गोलीति । अमत्रवाचिनस्तु जातिशब्दादपि स्त्रीविषयत्वाङ्गीष् विधी-
 यते । 'आवपनञ्चेदिति' । यत्र धान्यादि प्रक्षिप्य नीयते सा गोणी
 यस्याः पुनर्यादृच्छिकं नाम सा गोणा । 'स्थलान्येति' । कृत्रिमा पुरुष-
 व्यापारेण निष्पादिता, यथा स्थलयोदकं परिरुह्णतीति । 'भाजीति' । भज
 विश्राणने चुरादिः, गयासन्न्या युजिति युचि प्राप्ते ऽस्मादेव निपातनात्
 स्त्रियामप्येत् । 'श्राणेति' । श्रा पाके, क्तः, संयोगादेरिति नत्वम् । 'स्यौल्यं
 चेदिति' । द्रव्ये वर्तमानस्य नागशब्दस्य स्यौल्यं चेत्यवृत्तिनिमित्तमि-
 त्यर्थः । 'नागशब्दो गुणवचन इति' । गजवाची नागशब्दस्तत्सहचरितं
 स्यौल्यमुपादाय स्यन्तरे प्रयुक्त उदाहरणं, सर्पे दृष्टस्तद्गतं दैर्घ्यमुपादाय
 स्यन्तरे प्रयुक्तः प्रत्युदाहरणमित्यर्थः । 'वर्णश्चेदिति' । प्रवृत्तिनिमि-
 त्तमित्यर्थः । 'कालान्येति' । यस्या यादृच्छिकीयं संज्ञा । 'नीलान्येति' ।
 नील्या रक्ता शाटी, नील्या अन्वक्तव्य इत्यन् । 'त्रयोविकारश्चेदिति' ।
 फाल इति यस्याभिधानम् । 'कुशान्येति' । कृन्दोगाः स्तोत्रियागणना-
 र्थानौदुम्बरान् शङ्खान् कुशा इति व्यवहरन्ति । 'कामुकान्येति' । यस्या
 मैथुनादन्यत्कामयितुं शीलम् । 'मैथुनेच्छावती भणयतइति' । कामुकश-
 ब्दस्य लषपतेति कर्त्तरि घ्युत्पादितत्वादिच्छामात्रे वृत्त्यभावात्सूत्रे तु प्रवृ-
 त्तिनिमित्तमात्रं निष्कष्योक्तं, मैथुने इच्छा यस्याः सा मैथुनेच्छेति व्यधिक-
 रणपदोबहुवीहिराश्रयणीय इति भावः । 'केशवेश इति' । क्लेशसन्निवे-
 शविशेष इत्यर्थः ॥

“शोणात् प्राचाम्” ॥ शोणाशब्देयं वर्णवाची वर्णानां तण्ति-
 नितन्तानामित्याद्गुदात्तः, तत्रान्यतो ङीषित्येन सिद्धे नियमाद्यै वचनं
 प्राचामेव नान्येषामिति ॥

“वेतो गुणवचनात्” ॥ ‘गुणमुक्तवान्गुणवचन इति’ । कृत्य-
 स्युटो बहुलमिति भूते कर्त्तरि न्युटं दर्शयति, स पुनर्यः प्राग्गुणमभि-
 धायं पश्चान्मतुब्लोपादभेदोपचाराद्वा तद्वृत्तिं वर्त्तते स वेदितव्यः ।
 ‘शुचिरिति’ । उत इत्यस्मिन्नसत्त्वेपि पश्वीत्यादिसिद्ध्यर्थमेवात इत्यस्या-
 सम्बन्धो व्याख्येयस्ततश्चेहापि प्रसङ्ग इति भावः । ‘गुणवचनान्डी-
 ब्विति’ । मनोरौ वेत्यस्यानन्तरमिदं पठितव्यमित्यर्थः । उत्तरसूत्रं बह्वा-
 दिभ्यो वेति पठितव्यम् । ‘आद्युदात्तार्थमिति’ । आद्युदात्तेषु गुणवचनस्य
 डीब्विधानस्य प्रयोजनमित्यर्थः । अन्तोदात्तेषूदात्तयणो ह्रस्पूर्वादिति
 डीब्वप्युदात्त इति नास्ति विशेषः । आद्युदात्तेषु तु डीब्वनुदात्त एवावति-
 ष्ठते । ‘वस्वीति’ । शृस्वृस्त्रिहीत्यादिना वसेरूपत्ययः, निच्वादाद्युदात्तो
 वसुशब्दः, गुणवचनश्चायं नैर्मल्यवचनः, प्रशस्तवचन इत्यन्ये, तथा चाति-
 शयेन वसुर्बसिष्ठो भवति, पटुशब्दाप्याद्युदात्तः, धान्ये निद्रित्यधिकारे
 फलिपाटिनमिमनिजनाङ्कुष्यटिनाकिधतश्चेति उपत्ययः, फलेर्गुणागमः,
 पाटेश्च पटिरादेशः, फल्गुः, पटुः, नाकुः, मधुर्जसु इत्युदाहरणानि । मृदु-
 शब्दस्त्वन्तोदात्तः, म्रदं द्वाद्रे कुर्भश्चेत्यधिकारे प्रथिम्रदिभ्रञ्जां सम्प्रसा-
 रणं सलोपश्चेति कुप्रत्ययः, पृथुः, मृदुः, भ्रस्तेः सलोपः सम्प्रसारणाच्च,
 न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्, भृगुः । ‘खररिति’ । खरः क्रन्या पतिंखरेति निघण्टुः,
 तत्र पाणियहणोःकण्ठाभिधायित्वाद्गुणवचनत्वम् । तपरकरणं किम् ।
 पटुमिच्छति पटूयति, पटूयतेः क्विप् पटूः स्त्री, अत्र मा भूत्, यद्यप्ययं
 सम्प्रति क्रियावचनस्तथापि पूर्वं गुणमुक्तवानिति कृत्वा स्यात्प्रसङ्गः, इहोत
 इति विशेषणाद्गुणवचनयहणाच्च शास्त्रीयोदेङ्गुणो न एङ्गते, लोके तूपसर्जनं
 गुण उच्यते शास्त्रेऽपि यस्य गुणस्य हि भावादिति विशेषणमात्रं गुणो
 एङ्गते, शुल्कादौ च प्रसिद्धतरो गुणशब्दः, वैशेषिकादयस्तु रूपसादय-
 श्चतुर्विंशतिर्गुणा इति प्रतिपन्नास्तद्विद्भिर्निश्चितं गुणं लक्षयति । ‘सत्त्वे
 निविशतइत्यादि’ । सोदन्यस्मिञ्जातिगुणाक्रिया इति सत्त्वं द्रव्यं
 तत्र यो निविशते भ्रमवैति स गुणः, यो निविशते स गुण इत्युच्यमाने
 गुणाक्रियानात्योर्गुणत्वप्रसङ्गात्सत्त्वइत्युक्तम् । इवमपि सत्ता जातिर्गुणः

स्यात्सा हि द्रव्यगुणकर्मसु त्रिष्वपि समवैति तदर्थं द्रव्यएवेत्यवधारणं
द्रष्टव्यम्, एवमपि द्रव्यत्वजातिर्गुणः स्यात्सत्त्वे निवेशात्तत्रैव च निवेशा-
दित्यत आह । 'अपैतीति' । ततः सत्त्वादपैति अपगच्छति क्व चिद्वा
क्दा चिद्वा न भवतीत्यर्थः । यथाप्रफले श्यामता पूर्वमुपैति रक्ततायां तत्र
जातायामपैति च, द्रव्यत्वजातिस्तु सर्वदा द्रव्ये निविशते नापैति, यदि
हि कदा चित्क्व चिद्वा न स्याद् द्रव्यमेवैतन्न स्यात्, एवमपि गोत्वादिजा-
तिर्गुणः स्यात्सा हि सत्त्वे निविशते ऽपैति च, ततोश्चादिष्वभावादित्यत
आह । 'पृथग् जातिष्विति' । पृथगिति पृथक्पदं, पृथग्भूतासु जातिष्वित्य-
र्थः, जात्याधारेण द्रव्येषु दृश्यमानो जातिषु दृश्यतइत्युपचर्यते, समासे तु
सति जात्यन्ताच्छ इति नित्याधिकारपरिगणितशुद्धः प्रसज्येत, तदेवमुक्तल-
क्षणेोपेतो यः पृथग्जातीयेषु दृश्यते स गुणः, न चैवंरूपा गोत्वादिजातिः,
यद्यपि खण्डमुण्डादिरूपेण खण्डमुण्डादयः पृथग्जातीयास्तथापि गोत्वेन
तासामेकजातीयत्वमेव, ये त्वपैतीत्यस्य सत्येवाधारे तत्परित्यागमर्थ-
माहुस्तेषां पृथग्जातिष्वित्यनर्थकं गोत्वादिजातेरप्यपैतीत्यनेनैव व्यावृ-
त्तिसिद्धेः । तस्मात्पूर्वाक्त एवार्थः, एवमपि हि क्रिया गुणः स्यात्सा हि
द्रव्ये निविशते यदा सक्रियं तत्रैव च निविशते ऽपैति च ततो यदा
निष्क्रियं द्रव्यं, पृथग्जातीयेषु गवाश्वादिषु दृश्यते ऽत आह । 'आधे
यश्चेति' । आधेयो निष्पाद्यः । यथा पाकनित्तिप्तेषु घटादिषु रक्तता
गुणः अक्रियाजः, अनुत्पाद्यो यथा तेजःपरमाणुषु स एव रक्तता गुणः,
तदेवमाश्रयभेदेनोत्पाद्यानुत्पाद्यस्वभावो गुण इति नित्योत्पाद्यस्य कर्मणो
गुणत्वाभावः । एवमपि द्रव्यं गुणः प्राप्नोति तदपि शरीरादिकं पादादिषु
द्रव्येष्वेवै पृथग्जातीयेषु निविशते संयोगविनाशे च ततोपैति, आधेयं
चाक्रियाजम्, अवयविद्रव्यस्योत्पाद्यत्वादाकाशादेश्चानुत्पाद्यत्वादित्यत
आह । 'सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुण इति' । य उक्तलक्षणेोपेतः सत्त्वप्रकृतिर्न
भवति द्रव्यस्वभावको न भवति स गुण इत्यर्थः । अत्रोत्तराद्वैतैव सर्व-
जातीनां व्यावृत्तिसिद्धेः पूर्वाहुं व्यर्थं, जातीनां नित्यत्वेनोत्पाद्यत्वाभा-
वात्, नैतदेवम्, अस्ति पूर्वाहुं न जातिर्व्यावर्त्तते, यथा जैजसानां परमा-

गूनां यद्रूपं यच्चैष्टकादिपात्र्यद्रव्यगतं तदुभयं मिलितमुत्पाद्यानुत्पाद्य-
स्वभावामित्युभयोरपि गुणात्वं भवति न पुनः प्रत्येकमुभयस्वभावत्वात्,
तथा पात्र्यद्रव्यरूपं जातिश्चेत्युभयं मिलितमुत्पाद्यानुत्पाद्यस्वभावमिति
जातिरपि गुणः स्यादेव, नहि सजातीयत्वे सतीति विशेषणमुपात्तमतः
पूर्वोद्धेन जातिव्यावृत्तिः । नन्वेवमपि पृथग्जातिषु दृश्यतइत्यनेनैव सर्व-
जातिव्यावृत्तिसिद्धेः पूर्वकं विशेषणद्वयं व्यर्थमेव, तस्मात्सत्त्वे निविशत-
इति स्वभावकथनं ततोपैति पृथग्जातिषु दृश्यतइति च विकल्पेन
जातीर्थावर्तयतः, अपैतीत्यस्य च तत्रैव कियन्तं चित्कालं स्थित्वा
तमाधारन्त्यजातीयमर्थः । तदेवं सत्त्वे निविशते अपैति आधेयश्चा-
क्रियान्तश्चेत्येकं लक्षणं, सत्त्वे निविशते पृथग्जातिषु इत्यादिकं चापर-
मिति लक्षणद्वयमनुमर्त्तव्यम् ॥

“बहुादिभ्यश्च” ॥ ‘शक्तिः शस्त्रइति’ । शक्तिशब्दः शस्त्रेभिधेये
हीणमुत्पादयति शक्तिः शक्ती । शस्त्रइति किम् । शक्तिः सामर्थ्यम् । अन्ये
शक्तिशस्त्री इति शब्दद्वयं पठन्ति, शस्त्रिः शस्त्री, इतः प्राग्यङ्गादीत्या-
दीनि त्रीणि वाक्यानि यथोत्तरमधिकविषयाणि, तत्रोत्तरं वाक्यद्वयं रात्रे-
श्चाजसावित्यत्रैव व्याख्यातम् । इकारान्तात्प्राग्यङ्गाविनो वा डीष् भवति,
धमनिः धमनी । सर्वतो ऽक्तिवर्थादित्येव डीषि सिद्धे शकट्यादीनामिजा-
रान्तानां पाठः प्रपञ्चार्थः । पट्टतिशब्दः क्तिचन्तः, पादस्य हतिः पट्ट-
तिः, हिमकादिहतिषु चेति पद्मावः, अहचिति पठ्यते न स केवलः
स्त्रियां वर्त्तते, तस्मात्तदन्तो बहुव्रीहिरुदाहार्यः, दीर्घमहास्याः दीर्घाद्गी
शरत्, पाठसामर्थ्यादनुपसर्जनादिति न प्रवर्त्तते, अस्य हीषो विकल्पि-
तत्वाद्वाप्यतिषेधावपि भवतः, अन उपधालोपिन इति डीष् च । ‘बहु-
शब्दे गुणवचन इति’ । अन्तोदात्तश्च लङ्घिबन्धोर्नालोपश्चेत्युपत्य-
यान्तः । किमर्थं तर्हि तस्यैह पाठ इत्यत्राह । ‘तस्येति’ ॥

“नित्यं क्वन्दसि” ॥ ‘नित्यग्रहणमुत्तरार्थमिति’ । इह त्वार-
म्भसामर्थ्यादेव नित्यो विधिः सिद्धः, योगारम्भश्चिन्त्ययोजनः ॥

“भुवश्च” ॥ ‘विभ्वी प्रभ्वीति’ । विप्रसंभ्यो द्विसञ्ज्ञायामिति
दुप्रत्ययान्तान्डीष् । ‘स्वयंभूरिति’ । भवतेः क्लिप् । ‘ह्रस्वादेवेय-
मिति’ । यद्वेवं घेर्ङितीति गुणे कृते भोरिति निर्देशः प्राप्नोति तत्राह ।
‘सौत्रोयं निर्देश इति’ । गुणस्यैव कृतस्य छान्दस उवडादेश इत्यर्थः ॥

“पुंयोगादाख्यायाम्” ॥ ‘पुंसा योः पुंयोग इति’ । योः
सम्बन्धः । ‘पुंयोगाद्वेतोरिति’ । हेतौ पञ्चमीं दर्शयति । आख्यायहणं
गुणभूतेनापि पुंसैव सम्बध्यते ऽन्येन सम्बन्धासम्भवात् । गणकादयो हि
शब्दाः पुंयोगास्त्रियां वर्त्तमाना न पुंयोगस्याख्या भवन्ति, स्त्रियां च
पुंयोगमन्तरेण न प्रवर्त्तन्तइति स्त्रिया अपि नाख्यास्तदाह । ‘पुंस
आख्याभूतमिति’ । भूतग्रहणेनैतद्वर्त्तयति यत्प्रातिपदिकं प्राक् पुंसा वाच-
कमभूत्सम्प्रति तु पुंयोगाद्वेतोः स्त्रियां वर्त्ततइति । ‘गणकीत्यादि’ ।
गणयतीति गणकः, एबुलु, प्रतिष्ठते प्रष्ठः, प्रष्ठोयगामिनीति यत्वं, कथं
पुनरिति पुंशब्दा इत्यत आह । ‘पुंसि शब्दप्रवृत्तिनिमित्तस्य सम्भवादिति’ ।
गणयति प्रतिष्ठतइति व्युत्पत्त्या पुंसि रुढा एते न स्त्री गणयति प्रति-
ष्ठते वा, महामात्रशब्दस्यापि प्रवृत्तिनिमित्तं हस्तिपकानामाज्ञापनं,
हस्तिपकाधिपतिर्हि महामात्रः, या तु स्वयं गणयति प्रतिष्ठते वा न
तस्यां पुंयोगाच्छब्दप्रवृत्तिः, अपि तर्हि स्वयमेव क्रियासम्बन्धादिति
टापैव तत्र भाव्यं, कथं तर्हि स्त्रियां प्रवृत्तिरित्यत आह । ‘तद्वोगा-
दिति’ । कोः ॥

तस्येदमिति सम्बन्धादिति चेत्तद्वितो भवेत् ।

० डीषेव बाधकः स्याच्चेन्नित्यं बाधः प्रसज्यते ॥

गणकस्येयमिति भेदसम्बन्धे विवक्षिते तस्येदमिति तद्वितः
प्राप्नोति, अथ नाप्राप्ते तद्विते डीषारभ्यमाणस्तस्य बाधक इत्युच्यते
कदा चिदपि तद्वितो न स्यात्, उभयमपि त्विष्यते प्राष्टी प्रष्टीति । स्यात्-
तमेतत् । एतदेव डीष्विधानं ज्ञापकं भेदविवक्षायामपि तद्वितमन्तरेण
प्राष्टादयः स्त्रियां वर्त्ततइति, तेन न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्येति निय-

मोत्र बाध्यते, सति हि तद्वृत्ते प्राप्तीत्यणि डीबेव सिद्धः, तस्य चोदा-
 त्तनिवृत्तिस्वरूपादात्त्वमिति किं डीष्विधानेनेति, तत्र । येनीकारा-
 न्तास्तद्वृत्ताः भानोरियं भानव्रीयेति तदर्थमेतन्म्यात्, एवं तस्याख्या-
 यहणं ज्ञापकं नात्र तद्वृत्तोत्पत्तिरिति, नहि तद्वृत्तान्तः प्रकृत्यर्थं पुंसि
 वर्त्तते, एवमपि ज्ञापकेन तद्वृत्तस्य नित्यं बाधात्प्राप्तीति न स्यात्,
 तस्माद्गुष्ट एवायं पक्षः, एवं तर्हि यथा मन्त्राः क्रोशन्ति, गौर्वाहीकः,
 गङ्गायां घोषः, यष्टीः प्रवेशयेत्यादौ तात्स्यात्ताद्वृत्त्यात्तत्सामीप्यात्तत्सा-
 हचर्याच्चातस्मिन्नपि तत्त्वाधारोपेण तच्छब्दप्रवृत्तिस्तदत्रापि प्रष्टा-
 दिसाहचर्यात्तच्छब्दप्रवृत्तिर्भविष्यति, तत्राभेदेन भेदसम्बन्धस्य निवृत्त-
 त्वाच्च तद्वृत्तप्रसङ्गः, विवर्त्तिते च भेदे तद्वृत्तोत्पत्त्या प्राप्तीत्यादि भवि-
 ष्यति । तत्राहुः । यस्त्वया धर्मश्चरितव्यः सोऽनया सहेति भार्याय
 शास्त्रसिद्धं साहचर्यमिति तस्यामेवैतन्डीष्विधानमिति, भट्टिकाव्ये
 दुहितृष्वपि दृष्टः प्रयोगः । कौमल्यया ऽसात्रिसुखेन रामः प्राक्कैकर्यं
 भरतस्ततोभूदिति, कैकर्यस्य दुहिता कैकर्या; जनपदशब्दात्प्रत्ययप्र-
 तु कैकर्याति प्राप्नोति, न च तस्यातमेति लुक्, न प्राच्यभगादीति
 प्रतिषेधात्तस्मात्सोऽयमित्यभिप्रम्बन्ध इत्ययमेव पक्षो यावत् । यद्वा यथा
 स्वामिदासौ पचत इति स्वामिनः संविधावृत्त्वात्पकृत्वं दासस्य तु
 साक्षात् तथा पुरुषः साक्षात्प्रतिष्ठते स्वपि संविधावृत्त्वात्पुरुषगतायाः
 प्रस्थानक्रियायास्तस्यामागेपात्प्रतिष्ठतइति, तस्यामेव प्रष्टुशब्दो व्युत्पा-
 द्यते न तु पुरुषे व्युत्पादितः सन् तेन सहाभेदे पचारात्तस्यां वर्त्तते, न
 चैतावता पुंयोगादेव हेतोः स्त्रियां वर्त्ततइत्यस्य हानिः, साक्षात्स्वयम-
 कर्तृत्वात् । अत्र पक्षे प्रस्य इति स्थिते सुबन्तस्य समासः, सुप् च सख्यानि-
 मित्तः, प्रातिपदिकं च पूर्वं लिङ्गमभिधत्ते पञ्चात्मज्ञानमिति तद्विमित्तमुब-
 पेक्षात्समासात्प्रागेवोत्तरपदात्स्यशब्दाट्टापप्रसङ्गः, न च स्यशब्दात्प्रत्ययेनैव
 डीप् लभ्यते प्रष्टुशब्दो हि पुंस आख्या न तु स्यशब्दमात्रं, नैप दोषः । गति-
 कारकोपपदानां ह्रस्विः सह समासवचनं प्राक् सुवृत्तेरिति ह्रदन्ताव-
 स्यायामेव समासः, सा पुंस आख्याति डीष् भविष्यति, परिभाषाप्रयोः

जनान्युपपदमतिङित्यत्र प्रतिपादितानि । 'देवदत्तेति' । स्त्रिया एव कस्याश्चिदेषा संज्ञा, 'परिसृष्टा प्रजातेति' । प्रसूतेत्यर्थः । 'पुंयोगादेते शब्दाः स्त्रियां वर्त्तेन्तदिति' । परिसर्गः प्रसवः, प्रजन इत्यनर्थान्तरं स च न पुंयोगमन्तरेण सम्भवति, तस्मात्पुंयोगाद्देतोः स्त्रियां वर्त्तेति । परिसृष्टा प्रजातेति द्वौ पङ्क्तौ, एते शब्दा इति बहुवचनं तु य एवं जातीयकाः शब्दाः प्रसूतादयस्तदपेक्षं द्रष्टव्यम् । 'गोपालिकादीनामिति' । सिद्ध-यइति शेषः । 'सूर्याद्वेवतायां चाव्यक्तव्य इति' । ङीष् एव प्रतिषेधे वक्तव्ये चाव्विधानमन्तोदात्तार्थं, सूर्यशब्दोयमाद्युदात्तस्तत्र टापि सति आद्युदात्तत्वमेवावतिष्ठेत । 'सूरीति' । सूर्यस्य स्त्री मानुषी कुन्त्यादिः, सूर्येति यतोपः ॥

“ इन्द्रवृषणभवशर्वसृष्टमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामा-
नुक्” ॥ 'योषामिति' । इन्द्रादीनामृडान्तानामातुलाचार्ययोश्च । 'अन्येषामिति' । हिमादीनाम् । 'हिमारण्ययोर्महत्वइति' । महत्वयो-गेनानयोः स्त्रीत्वम्, अन्यत्र नपुंसकत्वम् । दुष्टो यव इति^१ पाठः । 'यवानीति' । जात्यन्तरमेवाभिधीयते, अयमेव च दोषो यदुत यवत्वजाते-रभावे तदाकारानुक्तिः । 'यवनाल्लिप्यामिति' । के चिज्जनपदिनो यवनास्तेषां लिपिः, तस्येदमित्यणो बाधको ङीष्, लिपिशब्दः स्त्रीलिङ्गः । 'उपाध्यायमातुलाभ्यां वेति' । उपाध्यायमातुलाभ्यां यो ङीष् तत्सन्नि-योगेनानयोर्वा ऽऽनुगागमो भवतीति वक्तव्यमित्यर्थः, तत्रोपाध्यायस्या-प्राप्ता मातुलस्य तु नित्यं प्राप्त आनुग्विकल्प्यते । 'आचार्यादणत्वं चेति' । क्षुभ्रादिषु पठितव्यमित्युक्तं भवति । 'अर्यक्षत्रियाभ्यां वेति' । ङीष्पानुक्तौ द्वावप्यप्राप्तौ विकल्प्येते । 'स्वार्थेवायं विधिरिति' । यदि तु पुंयोगे ऽयं विधिः स्याच्छूद्रापि क्षत्रियस्य भार्या क्षत्रियाणी स्यात् ब्राह्मणभार्या च क्षत्रियाणी न स्यात्, तस्मात्स्वार्थे एव स्त्रीत्वविशि-ष्टेयं विधिः । 'मुद्गलादिति' । ङीषो लित्वादानुगाकारस्य लित्स्वरः । अथ किमर्थमानुग्विधीयते न अनुगोवाच्येत, अकारोच्चारणसामर्थ्यादतो

गुणे पररूपं बाधित्वा सर्वर्णदीर्घत्वं भविष्यति, अन्यथा नुगेवोच्येत, यथैव तर्हि पररूपं न भवति तथैव सर्वर्णदीर्घत्वमपि न स्यात्, नैष दोषः । यं विधिं प्रत्युपदेशो नर्थकः स विधिर्बाध्यते यस्य तु विधिर्निमित्तमेव नासौ बाध्यते, तस्मादनुगेव वक्तव्यः । अपर आह । इन्द्रमावष्टे इन्द्रयति, इन्द्रयतेः क्लिप्, गिलोपः, इन्द्रः स्त्री इन्द्राणी, अत्र दीर्घस्य अवन्यं, दीर्घोच्चारणमामर्थ्यादत इत्यधिकारो बाध्यते इति, एवमपि क्लिबन्त पुंस आख्या न भवति ॥

“क्रीतात्करणपूर्वात्” ॥ पूर्वशब्दोवयववचन इत्याह । ‘करणं पूर्वमस्मिन्नित्यादि’ । व्यवस्थावाचिनि तु पूर्वशब्दे करणं पूर्वमस्मादिति वाच्यं स्यात्, एवं च क्रीतस्य करणवाचिशब्दान्तरमवयवो नोपपद्यतइति तद्व्यतिरिक्तमेव प्रातिपदिकं करणपूर्वत्वेन विशेष्यते, क्रीतशब्देनापि विशेषितस्यैव विशेषणान्तदन्तविधिरित्याह । ‘क्रीतशब्दान्तात्प्रातिपदिकादिति’ । यदि तु व्यवस्थावाचिनं पूर्वशब्दमाश्रित्य क्रीतशब्दो विशेष्यते करणं पूर्वमस्मादिति ततो वाक्येपि स्याद् अश्वेन क्रीतेति, तस्मादवयववाची पूर्वशब्दः प्रातिपदिकं च विशेष्यमिति सम्यगुक्तम् । ‘वस्त्र-क्रीतीति’ । गतिकारकोपपदानामिति वचनात् प्रागेव सुबुत्पत्तेः क्रीतशब्देन सह समासः, । ‘टाबन्तेन समास इति’ । णकादेशस्य पूर्वं प्रत्यन्तवस्वात्कृदन्तताया अविघाताद्विरुद्धाबन्तेन समासः, अथ टाबन्तेनापि समासे कस्मादेवात्र न भवति तत्राह । ‘अत इतीति’ । ननुदाहरणवत्प्रागेव टाबुत्पत्तेरत्रापि समासः प्राप्नोति, वक्तव्यो वा विशेषो ऽत आह । ‘गतिकारकोपपदानामित्यादि’ । न तत्र बहुल्यहणमस्तीति चेत्त्राह । ‘कर्तृकरणे कृता बहुलमिति’ । कर्तृकरणे कृता बहुलमित्यनेन तावदत्र समासः, स च बहुल्यहणात् प्राक् सुबुत्पत्तेः क्व चिद्व्यति, क्व चिद्व्यति सुपीति मन्यते, गतावतैव च बहुलं तदुच्यतइति माभ्यान्तेनोक्तं न पुनः कर्तृकरणे कृता बहुलमित्ययमेव समासः प्राक् सुबुत्पत्तेरिष्यते, यथा तु भाष्यं तथा नैतद्विष्यते ॥

“क्तादल्पाख्यायाम्” ॥ ‘अल्पाख्यायामिति’ समुदायोपाधिरिति । ननु चाल्पैरभ्रैर्विलिप्तेति पूर्वपदार्थस्यैवाल्पता गम्यते न विलिप्तार्थस्य, एवं मन्यते, अभ्राणामल्पत्वे सति तद्विलेपनस्याल्पत्वमवश्यभावीति । ‘अभ्रविलिप्तीति’ । वृत्तौ गतार्थत्वादल्पशब्दस्याप्रयोगः, । ‘चन्दनानुलिप्तेति’ । बहुलेन चन्दनेनानुलिप्तेत्यर्थः, कृद्गुहणपरिभाषया समुदायस्य क्तान्तत्वम् ॥

“बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्” ॥ ‘बहुव्रीहिर्यान्तोदात्त इति’ । अत्र क्तादित्यनुवृत्तिसामर्थ्यात्प्रत्ययग्रहणपरिभाषा कृद्गुहणपरिभाषा च न प्रवर्त्ततइति बहुव्रीहेः क्तान्तत्वम् । ‘शङ्खुभिर्चीति’ । निष्ठेति पूर्वनिपातो न भवति, जातिकालसुखादिभ्यः परवचनमिति वचनात्, शङ्खादयो हि जातिवचनाः, अत एव जातिकालसुखादिभ्य इत्यन्तोदात्तत्वं भवति । ‘गलोत्कृत्तीति’ । कृती छेदने, उत्पूर्वात् क्तः, गलमुत्कृत्तमस्या इति विग्रहः । ‘पादपतितेति’ । कर्तृकरणे कृता बहुमिति समासः, याथादिस्वरेणान्तोदात्तत्वम् । ‘अन्तोदात्ताज्जातप्रतिषेध इति’ । अन्तोदात्ताद्बहुव्रीहेर्डीर्ष्विधाने जातशब्दान्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः, स त्वन्तग्रहणादेव सिद्धः, कथम्, इहान्तग्रहणं न कर्त्तव्यं वर्णादनुदात्तादिति वद् उदात्तान्तादिति विज्ञास्यते, तत् क्रियते नित्ययोगे यथा बहुव्रीहिविज्ञायेत, दन्तजातादौ तु वा जातइति विकल्पेनान्तोदात्तत्वम् । ‘पाणिरुहीत्यादीनां विशेष इति’ । सिद्धयइति शेषः । अग्निसाक्षिकं यस्याः पाणिरुह्यते सा पाणिरुहीतीति भवति । ‘कथं चिदिति’ । यथोक्तात्प्रकारादन्येन प्रकारेणेत्यर्थः । ‘अबहुनञित्यादि’ । बहुादिपूर्वपदाद्बहुव्रीहेर्डीर्ष्वेन भवतीति वक्तव्यमित्यर्थः । ‘बहुकृतेति’ । बहूनि कृतान्यनयेति विग्रहः, बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्वीत्यन्तोदात्तत्वम् । ‘अकृता सुकृतेति’ । न विद्यते कृतमनया शोभनं कृतमनयेति विग्रहः, नञ्सुभ्यामित्यन्तोदात्तत्वम् । ‘मासजातेति’ । मासो जातोतीतोऽस्याः, सुखं जातं प्राप्तमनया, दुःखं जातमनयेति विग्रहः, सुखादयः सुखादिभ्यः कर्तृवेद-

नायामित्यत्र पठिता गृह्यन्ते । अथ वा बहुव्रीहेष्व जातिपूर्वादिति वक्तव्यं, बहुव्रीहावन्तोदात्तनिमित्तेष्वन्येषु प्रतिषट्पु जातिरेवान्तोदात्तनिमित्तं क्तान्तस्यावशिष्यतइति जातिग्रहणमेवात्र कर्तव्यमित्यर्थः ॥

“अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा” ॥ ‘शाङ्गजगधीत्यादि’ । शाङ्गं जगधमनया पलाण्डुर्भक्षितानयेति विग्रहः, शाङ्गादिरभत्यजातिः, सर्वत्र जातिकालमुखादिभ्य इत्यन्तोदात्तत्वम्, ‘वस्त्रच्छनेति’ । कुट्ट अपवारणे चुरादिः, वा दान्तशान्तेत्यादिना कुत्रशब्दो निपातितः, अत्रानाच्छादनादिति प्रतिषेधात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमेव भवति । प्रवृद्धा चेत्यादिना विग्रहविशेषेण तत्पुरुषं दर्शयति ॥

“स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्” ॥ ‘अतिकेशीति’ । अतिक्रान्ता केशानिति तत्पुरुषः, एकविभक्ति चेति केशशब्दस्योपसर्जनत्वम् । ‘अशिखेति’ । असत्युपसर्जनशब्दोत्रैव प्राप्नोति न मूलादाहरणेष्वनुपसर्जनादित्यधिकारात् । अथ बहुव्रीह्याधिकारादत्र न भविष्यतीत्युच्येत, अतिकेशोत्यत्रापि तर्हि न स्यात्, अङ्गात्रेत्यादिभाष्येनुक्तमप्येतत्प्रयोगबाहुल्यादृत्तिकारणोक्तं, यद्यत्र स्वमङ्गं स्वाङ्गं गृह्येत शलत्तामुखा शाला, अत्रापि प्राप्नोति, मुखस्य शालाङ्गत्वात्, दीर्घकेशी रथ्येत्यत्र च न स्यात्, केशानां रथ्याङ्गत्वाभावात्, तदव्याप्यतिव्याप्तिपरिहारार्थं स्वाङ्गं परिभाष्यते । ‘अद्रवमिति’ । तत्र प्राणिस्यं स्वाङ्गमित्यनेन शलत्तामुखा शालेत्यत्र न भवति, एवमपि बहुःकृपा ऽत्र प्राप्नोति, तदर्थमाह । ‘अद्रवमिति’ । द्रवतीति द्रवं, ततोऽन्यदद्रवम् । एवमपि बहुजाना ऽत्रापि प्राप्नोत्यत आह । ‘मूर्तिमदिति’ । असर्वगतद्रव्यपरिमाणा मूर्तिः, असर्वगतानि यानि द्रव्याणि तेषां यत्परिमाणं ह्रस्वत्वादि सा मूर्तिः, स्पर्शवद्द्रव्यपरिमाणं मूर्तिरित्यन्ये, सा यस्यास्ति तन्मूर्तिमत्, एवमपि बहुशोफा ऽत्र प्राप्नोत्यत आह । ‘अविकारजमिति’ । विकारो वातादिवैषम्यं ततो यज्जायते तत्र भवतीत्यविकारजं, शोफस्तु श्वयथुसंज्ञको विकारजः, यदि प्राणिस्यं स्वाङ्गं रथ्यादिपरिगतानां केशानां

स्वाङ्गत्वं न स्यात्, सन्प्रत्यप्राणिस्यत्वात्, ततश्च दीर्घकेशी रथ्येति न सिद्धात्यत आह । 'अतस्यमिति' । सन्प्रत्यप्राणिस्यमपि कदा चित्प्राणिनि दृष्टं चेत्तदपि स्वाङ्गं भवत्येवेत्यर्थः । एवमपि प्रतिमावयवानां मुखादीनां स्वाङ्गत्वं न प्राप्नोति, अप्राणिस्यत्वात्ततश्च दीर्घमुखी प्रतिमेत्यत्र न सिद्धति तत्राह । 'तेन चेदिति' । अतस्यमित्यनुषङ्गः, अप्राणिस्यमपि मुखादि स्वाङ्गं तेन चेन्मुखादिना तदप्राणिद्रव्यं तथा युतं भवति यथा प्राणिद्रव्यमित्यर्थः । अन्येषां पाठस्तस्य चेत्तथा युतमिति, तत्रार्थः । अप्राणिस्यमपि मुखादि स्वाङ्गं तस्य चेदप्राणिनः तन्मुखादि तथा युतं भवति, तादृशसंस्थानं भवति यादृशं संस्थानं प्राणिन इत्यर्थः ॥

“नासिकोदरौष्ठजुहादन्तऋणशृङ्गाच्च” ॥ 'सहनञ्चिद्विद्यमानलक्षणस्तु प्रतिषेधो भवत्येवेति' । कथं, नासिकोदरयोस्तावदयं योगः पुरस्तादपवादन्यायेनानन्तरं बहुलक्षणमेव प्रतिषेधं बाधते, ओष्ठादिष्वपि मध्येपवादन्यायेन 'पूर्वं संयोगोपधलक्षणमेव प्रतिषेधं बाधते न सहादिलक्षणम्, अतोसौ भवत्येव सनासिका ऽनासिका विद्यमाननासिकेति । 'बिम्बोष्ठीति' । ओत्वोष्ठयोर्वा समासे पररूपं वक्तव्यमिति पररूपम् । 'कबरंपुच्छीति' । कबरं नानावर्णं पुच्छमस्याः सा मयूरी, मणिः पुच्छमस्या, विषं पुच्छमस्याः मणिपुच्छी विषपुच्छी वृश्चिकी, उलूक इव पत्तोस्या उलूक इव पुच्छमस्या इति विग्रहः ॥

“न क्रोडादिबहुचः” ॥ 'कल्याणक्रोडेति' । अश्वानामुरः क्रोडा, स्त्रीलिङ्गोयं, तत्र बहुव्रीहौ पूर्वपदस्य पुंवद्भावः, उत्तरपदस्योपसर्जनह्रस्वत्वम् । 'कल्याणनखेति' । अयन्योयं, नखमुखात्सञ्ज्ञायामिति प्रतिषेधात्, असञ्ज्ञायां ङीष् इष्टत्वात्, तस्मात्कल्याणोखेति पाठः । उखेति हि पठ्यते । क्रोडा बालखुरोन्नाः शफो गुदं भगगलौ चेति ॥

“सहनञ्चिद्विद्यमानपूर्वाच्च” ॥ पूर्वग्रहणमकृत्वा सहनञ्चिद्विद्यमानेभ्य इत्युच्यमाने सहादिभ्यः परं यत्स्वाङ्गन्तदन्तान्ङीष् न भवतीत्यर्थो भवति ततश्चेह प्रतिषेधः प्रसज्येत विद्यमानं मुखमस्य विद्यमानमुखः,

कल्याणो विद्यमानमुखोऽस्याः कल्याणविद्यमानमुखीति, भवति ह्येतद् यथोक्तविशेषणम्, इह च न स्याद् विद्यमानकल्याणमुखेति, नह्यत्र यथोक्तं विशेषणमस्ति तस्मात्पूर्वग्रहणम् ॥

“नखमुखात् संज्ञायाम्” ॥ ‘शूर्पणखेति’ । पूर्वपदात्संज्ञायामग इति गत्वम्, एवं च शूर्पणखा वा राक्षसी शूर्पणखी वा, यदि योगमात्रं न संज्ञा शूर्पणखी, संज्ञायां शूर्पणखा, न पुनः शूर्पणखीति गत्वङीषोः समावेशः साधुः ॥

“दीर्घजीह्वी चच्छन्दसि” ॥ ‘निपातनं नित्यार्थमिति’ । दीर्घजिह्वादित्युच्यमाने प्रकृतस्य ङीषो विकल्पितत्वाद्विहापि विकल्पो विज्ञायेत ॥

“दिकूर्पूर्वपदान् ङीष्” ॥ दिकूर्पूर्वपदान्-ङीषोनुदात्तत्वं स्वाङ्गा-च्चेत्यादिना विहितस्य ङीष एवास्मिन्विषयेनुदात्तत्वं वक्तव्यं, ङीष्विधाने ह्यन्यत्रापि ङीष्विषयान्ङीष्प्रसङ्गः, अपूर्वं हि ङीषि विधीयमाने प्रागुल्का प्राग्जघनेति ङीष्विषयादन्यत्रापि ङीष्प्राप्नोति ङीः प्रतिषेधाभावात्, इत्यस्मिन्पूर्वपदात्तदमाह । ‘विधिप्रतिषेधविषयः सर्वोप्यपेत्यतइति’ । तत्र विधिविषयापेक्षायाः फलं दर्शयति । ‘यत्र ङीष्विहित इति’ । ‘स्वरे विशेष इति’ । ङीषः पित्त्वादनुदात्तत्वं भवति, ङीषस्तु प्रत्ययाद्युदात्त्व-प्रसङ्गः । ‘प्राङ्मुखेति’ । ङीषा मुक्ते स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादिति ङीषपि भवति, कथम्, उक्तमेतत्, यत्रोत्सर्गापवादौ द्वावपि विकल्पितौ तत्रापवादेन मुक्ते उत्सर्गा न प्रवर्ततइति । प्रतिषेधापेक्षयाः फलं दर्शयति । ‘इह न भवतीति’ । एवं च कृत्वा वाक्यभेदः कर्तव्यः, दिकूर्पूर्वपदात्संयोगोपध-स्वाङ्गान्तावासिकाद्यन्तान्ङीष् भवति, क्राडादिबहुजन्तात् निति अपरः कल्पः, अत्र ङीषनुवर्तते, तस्य दिकूर्पूर्वपदादिति पञ्चम्या षष्ठी प्रकल्प्यते, दिकूर्पूर्वपदादुत्तरस्य ङीषो ङीबादेशो भवतीत्यर्थः, तेन यत्र ङीष् तत्रैव ङीषिति सिद्धम्, एवं चोत्तरत्र ङीषेव स्वर्ग्यतइत्युपपन्नं भवति ॥

“वाहः” ॥ ‘सामर्थ्यादिति’ । क्रमण्युपपत्ते वहेर्निर्वविधानात्के-वलस्य वाहः सम्भवा नान्तीत्येतत्सामर्थ्यम् । ‘दित्यौहीति’ । छन्दसि सहः, वहश्चेति षिवः, उपधाशुद्धिः, ङीषि वाह ऊह, तत्र मन्प्रमारण मित्यनुवृत्तेः सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपत्वम्, एत्यधत्पृष्ठस्विति वृद्धिः ॥

“सख्यशिखीति भाषायाम्” ॥ भाषायामित्युच्यते तत्रैतन्न सि-
ध्यति सखी सप्तपदी भव, आ धेनवो धुनयन्तामशिखीरिति । नैष
दोषः । इतिकरणोत्र क्रियते स भिन्नक्रमः, भाषायामित्यस्यानन्तरं
द्रष्टव्यः, स च प्रकारे वर्तते, तेन ऊन्दस्यपि क्व चिद्विष्यति, भाषायहणं
तु नित्यार्थम् ॥

“जातिरेकस्त्रीविषयादयोपधात्” ॥ अस्त्रीविषयादित्यनन्यभावे
विषयशब्द इत्याह । ‘न च स्त्रियामिति’ । स्त्रियामेव यस्य नियमेन
वृत्तिस्तस्त्रीविषयं ततो न्यदस्त्रीविषयमित्यर्थः । इह लौकिकजातियहणे
ब्राह्मणत्वादीनां गोत्रस्य च नाडायनादेर्जातित्वे वादीनां विप्रतिपत्तेः
चरणशब्दानां च कठादीनामध्ययनक्रियासम्बन्धनिबन्धनत्वेन पाचकादि-
वत्क्रियाशब्दत्वेनाव्याप्तिरित्यभिमतं जातिं लक्षयति । ‘आकृतियहणा जा-
तिरिति’ । गृह्यतेनेति गृहणमिति करणसामान्ये पदं संस्क्रियते, पश्चा-
दाकृतिशब्दसमवधाने स्त्रीत्वं प्रतीयमानं बहिरङ्गत्वात् प्रत्ययस्य निमित्तं
न भवति, गृहणमाकृतिर्यस्या इति गृहणरूपोद्देशेनाकृतिरूपता विधीयते
न त्वाकृतिरूपोद्देशेन गृहणरूपतेत्यर्थः । आकृतिः संस्थानं सा गृहणं यस्याः
सा ऽऽकृतियहणा, अवयवसन्निवेशविशेषव्यङ्ग्येत्यर्थः । अनेन गोत्वादिजाति-
लक्षिता, ब्राह्मणत्वादिजातिस्तु न संगृहीता भवति, ब्राह्मणत्त्रियादीनां
संस्थानस्य सदृशत्वादिति तत्संग्रहायाह । ‘लिङ्गानां चेति’ । सर्वाणि
लिङ्गानि न भजतीत्ययमर्था विवक्षितः, तत्र सर्वशब्दस्य लिङ्गापेक्षत्वेपि
गमकत्वाद्गुणो णिवप्रत्ययः समासश्च । लिङ्गानामिति कर्मणि षष्ठी ।
अप्राप्तप्रापणार्थं चेदं वचनं न त्वाकृतियहणेत्यस्य सङ्कोचकं, तेन
तटादेः सर्वलिङ्गत्वेपि आकृतियहणत्वाज्जातित्वं भवत्येव, इह कस्मान्न
भवति देवदत्तः देवदत्तेति, उपदेशापेक्षमिदं लक्षणं, कार्यः, असर्वलिङ्गेषु
येषु जातिवाचित्वमाचार्या उपदिशन्ति तेष्वेव भवतीत्यर्थः । आकृति-
गृहणाया जातिरेकत्वनित्यत्वप्रत्येकपरिसमाप्तत्वलक्षणान्धर्मानाह ।
‘सकृदिति’ । एकस्मिन्पिण्डे सकृदुपदिष्टा ऽयं गौरिति पिण्डान्तरं
निर्घाह्या निश्चेतुं शक्येत्यर्थः । यदि चैका न स्याच्चैव गृह्येत, तथा

नित्यत्वाभावेऽपि पिण्डेन सन्न विनाशाद्विनाशान्तरे न गृह्यते, यदि च प्रत्येकं सर्वात्मना परिममाप्ता न स्यात् तस्मिन् अपि तावत्पिण्डे सर्वात्मना न गृह्यते यत्राव्याता किं पुनः पिण्डान्तरे, कथं पुनरेकमेव वस्तु बहुत्र युगपत्कात्स्न्येन वर्त्तते नहि देवदत्तस्तदानीमेव सुप्ते भवति मधुरायां च, दृश्यते चेत्को द्रापः, नहि द्रष्टुमुपपन्नं नाम । 'गोत्रमिति' । अपत्यमित्यर्थः । चरणशब्देन शाखाध्यायिनो गृह्यन्ते, गोत्रस्यानाकृतियहणात्वात् सर्वलिङ्गत्वाच्च पृथगुपादानं, नाडायनं नपुंसकमिति दर्शनात्, चरणशब्दस्त्वध्ययनक्रियासम्बन्धेन प्रवृत्तत्वात्क्रियाशब्द एव न जातिशब्दः । 'कुक्कुटी सूकरीति' । आकृतियहणाया जातेरुदाहरणं, ब्राह्मणी वृषलीत्यसर्वलिङ्गायाः, तत्र ब्राह्मणीति रूपोदाहरणं, शार्ङ्गरवादिष्वस्य पाठाद् वृषलीत्येतदेव डीष् उदाहरणम् । 'नाडायनी चारायणीति' । गोत्रलक्षणाया नडादिभ्यः फक्, अपत्यमात्रस्य गृहणादनन्तरापत्येऽपि भवति, अयन्ती कुन्तीति, इतो मनुष्यजातेरिति डीष् भवति, इह तु कुलस्यापत्यं कुलीना ब्राह्मणीति डीष् न भवत्यजादिषु दर्शनादित्याहुः । 'कठीति' । कठेन प्रोक्तं, वैशम्पायनान्तेवासित्वाणिनिः, तस्य कठचरकादिति लुक्, ततस्तदधीतइत्यण्, तस्य प्रोक्ताङ्गुगिति लुक् । 'बह्वृचीति' । बहू च्चोस्या इति बहुव्रीहिः, बह्वृचश्चरणाख्यायामित्यकारः समामान्तः, कथं पुनः स्त्री नामाधीते, मा नामाधिगीष्ठ तदृश्यत्वात् ताच्छब्दं भविव्यति यथानधीयाने माणवके । अत्रापरे जातिलक्षणमुक्तं भाष्ये ॥

प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद्रुणैः ।

असर्वलिङ्गां बहुर्यां तां जातिं कवयो विदुः ॥

इति । सत्त्वस्य प्रादुर्भावविनाशाभ्यां या ऽऽविर्भावतिरोभावावै प्राप्नोति यावद्द्रव्यभाविनीत्यर्थः । गुणैश्च युगपद् द्रव्येण संबध्यते यथा निर्गुणं द्रव्यं न भवति तथा जातिरहितमपीत्यर्थः । बहूर्यामिति, अर्थशब्दो विषयवाची बहुविषयां बहुव्यक्तिय्यापिनीमित्यर्थः । असर्वलिङ्गामिति, पूर्ववत्लक्षणान्तरं, तत्र यथा पूर्ववत्तत्रां तथा कुमारीभावं इति

भवितव्यं, कथं, कौमारमयावद्द्रव्यभाव्यपि आकृतियहणत्वाद्भवति जातिः,
ततश्च जातेश्चेति पुंवद्भावप्रतिषेधः, वृद्धा स्थविरेत्यादौ च जातिलक्षणो
ङीष्प्राप्नोति, यथा पुनरुत्तरं तथा कौमारादिकं जातिर्न भवति, अयावद्-
द्रव्यभावित्वात्, तत्र पूर्वकं लक्षणं भाष्यकारस्याभिमतं नोत्तरम्, अपर आ-
हेत्यभिधानात् । तथा च ड्याप्सूत्रे युवतितरेत्यत्र तसिलादिष्विति प्राप्तस्य
पुंवद्भावस्य जातेश्चेति निषेध आश्रितः, अत एव वृत्तिकारेणाप्येतदेव
लक्षणमुपन्यस्तमिति के चिदाहुः । एवमपि युवजानिरित्यत्र पुंवद्भावो न
प्राप्नोति, तस्माद् द्वितीयमेव लक्षणं साधीयो मन्यामहे, अत एव वृद्धा स्य
विरिति जातिलक्षणो ङीष् भवति, युवतितरेत्यत्र तु भाष्यकारप्रयोगात्पुं-
वद्भावाभावः । 'मुण्डेति' । गुणशब्दोयम् । 'मत्तिकेति' । स्त्रियामेवायं
नियतः । इह कस्माच्च भवति माला बलाकेति, मालाशब्दो मलनं माल
इति घञन्तः पुल्लिङ्गः, क्षेत्रविशेषे नपुंसकः, सजि स्त्रीलिङ्गः, बलाका-
शब्दो हि बलां कायतीति यौगिकः सर्वलिङ्गः, बक्रजातिवचनः स्त्रीलि-
ङ्गः, नात्र यथाकथञ्चिदस्त्रीलिङ्गविषयत्वं विवक्षितं किं तर्हि यस्मिन्वृ-
त्तिनिमित्ते स्त्रीलिङ्गस्तस्मिन्नेव निमित्ते यल्लिङ्गातरेपि वर्तते तदस्त्रीवि-
षयं, यथापुनरयं शब्दार्थस्तथास्त्रियाः पुंवदित्यत्र वक्ष्यामः, तेन निमित्तभेदेन
नानालिङ्गेषु नायं विधिर्भवति, यद्येवं द्रोणी कुटी पात्रीत्यत्र न प्राप्नोति,
द्रोणशब्दः प्रमाणविशेषे पुल्लिङ्गः, गवादिन्यान्तु स्त्रीलिङ्गः, कुटशब्दो घटे
पुल्लिङ्गो गेहे तु स्त्रीलिङ्गः, पात्रशब्दो भाजनसामान्ये ऽर्दुर्चादित्वाद्भु-
यलिङ्गः, भाजनविशेषे स्त्रीलिङ्गः, गौरादिपाठात्सिद्धम् । 'हयगवयेत्यादि' ।
गौरादिष्विदानींतनैर्हयादयः प्रक्षिप्ता इति वार्तिककारवचनाद्विज्ञायते ॥
^१ पाकरुणपर्यपुष्पफलमूत्रबालोत्तरपदाच्च ॥ 'स्त्रीविषयत्वादे-
तेषामिति' । पूर्वत्र समानायामाकृतौ यदस्त्रोविषयमित्याश्रयात्त्रिमि-
त्तभेदेन नानालिङ्गानामेषां न सिध्यतीति भावः । ओदनपाकादयः सञ्ज्ञा-
शब्दा यथाकथंचिद्रूप्याद्याः ॥

"इतो मनुष्यजातेः" ॥ 'अवन्ती कुन्तीति' । अवन्तिकुन्तिशब्दा-
भ्यामपत्यर्थं वृद्धेत्कोसलाजादाज्यङ्, तस्य स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्चेति

लुक्, । 'दात्ती प्राप्तीति' । अत इज्, । 'विट् द्रदिति' । विट्शब्दाज्जनप-
दशब्दात्त्रयादन्, द्रक्शब्दाद् दृक्प्रगधेत्यादिनाम्, तयोरतश्चेति
लुक्, उदाहरणमिध्प्रमेवात इत्यस्यानुवृत्तिर्न शक्याऽऽश्रयितुमित्यत्रापि
प्रसङ्गः । 'औदमेयीति' । उदकं मेयमस्य उदमेयः, उदकस्योदः सज्जा-
यामित्युदभावः, तस्यापत्यम्, अत इज्, । 'सौतङ्गमी मौनिचित्तीति' ।
सुतङ्गममुनिचित्तशब्दाभ्यां तेन निर्वृत्तमित्यत्रार्थे इज् प्रत्ययः ॥

“ऊङुतः” ॥ ‘कुरु रिति’ । कुरुनादिभ्यो ण्यः, तस्य स्त्रियामत्रन्ती-
त्यादिना लुक् । ‘ब्रह्मबन्धुर्जीवबन्धुरिति’ । वृत्तस्वाध्यायहीनायां ब्राह्मण-
जातावेतौ बहुव्रीहौ वर्त्तते । ‘ङकार इत्यादि’ । नोधात्वोरित्युच्यमाने
यथावा याथावै अत्राप्युदात्तयणो हल्पूर्वादिति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तस्य
निषेधः स्यात्, वर्णग्रहणे स्पर्शवद्ग्रहणपरिभाषा नोपतिष्ठते, अथ दीर्घाच्चारणं
किमर्थं न उङुत इत्येवाच्येत, सवर्णदीर्घत्वेन सिद्धं, न सिध्यति सत्यपि
सवर्णदीर्घत्वे गोस्त्रियोरुपमर्जनस्येति ह्रस्वत्वं प्राप्नोति, न प्राप्नोति, किं
कारणम्, उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्, तथाहि । एकादेशस्यान्तवत्त्वेन
प्रातिपदिकसञ्ज्ञा सम्पाद्या ऽप्रत्यय इति निषेधात्, आदिवत्त्वेन च स्त्री-
प्रत्ययत्वं सम्पाद्यम्, इह तर्हि ब्रह्मबन्धुच्छत्रं पत्वतुकोरमित्दृत्वाद् ह्रस्व-
लक्षणो नित्यस्तुक् प्रसज्येत, दीर्घाच्चारणात्त्वेकादेशस्यामित्दृत्वेपि दीर्घ-
एवायमिति दीर्घात्वदान्ताद्वेति विकल्पः सिध्यति, एतदपि नास्ति प्रयो-
जनं, पदान्तपदाद्योरेकादेशोमित्दृः, न चैष पदान्तपदाद्योरेकादेशः,
तस्मादनर्थकं दीर्घाच्चारणमित्याशङ्क्याह । ‘दीर्घाच्चारणद्वयो बाधनार्थ-
मिति’ । शेषाद्विभाषेति कपोवकाशो ऽयवको ऽव्रीहिकः, ऊङोवकाशः
कुरु रिति, ब्रह्मबन्धवादेर्बहुव्रीहेरुभयप्रसङ्गे परत्वात्कप् प्राप्नोति, दीर्घाच्चा-
रणाच्च भवति, कथम्, उकारद्वयं दीर्घेण निर्वृष्टं तत्र द्वितीय उकारः
कपो बाधनार्थः । ‘अध्वर्युरिति’ । अध्वरं यातीति मृगव्यादयश्चेत्युणा-
दिषु दर्शनात्कुप्रत्ययो ऽध्वरशब्दस्यान्तनोपस्य, चरणान्तगोपं जातिः,
अध्वर्युशाखाध्यायिनि वंशे भवेत्यर्थः । ‘अप्राणिजातिश्चेति’ । अत्रोत
इति नापेक्ष्यते तेनालाबूककर्मन्थुशब्दाभ्यां दीर्घान्ताभ्यामपि भवति

कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊरिति वर्त्तमाने णिक्कशिपद्यर्त्तरित्यतो णिदिति च, नञिलम्बेर्नलोपश्च, लवि अवसंसने, तस्मान्त्रजूपूर्वादूपत्ययो भवति नलोपश्च, णित्वाट्टट्टिः, अन्दूट्टम्भूकक्कन्धूरिति निपातनादूकारान्तः कक्कन्धूशब्दः, एवमलाबूकक्कन्धूशब्दौ दीर्घान्तौ, ऊङ् विधानमलाब्बा कक्कन्ध्वा इत्यादौ नोङ्धात्वोरिति विभक्त्युदात्तत्वप्रतिषेधार्थम् । 'कृक-वाकुरिति' । कृके वचः कश्च, कृकशब्दउपपदे वचेर्धातोर्ण्य प्रत्ययो भवति कश्चान्तादेशः । 'रञ्जुरिति' । सृजेरसुम् च, आदिलोपः प्रकृतः, सृजेरुप्रत्यय आदेश्च लोपोऽसुगागमश्च, च्चतो यणादेशः, सकारस्य जस्त्व-चत्वं, सृज्यतेसौ रञ्जुरिति । 'हनुरिति' । युस्त्रिहित्यादिना हन्तेरुप्रत्ययः ॥

“पङ्गोश्च” ॥ ‘श्वशुरस्येति’ । पुंयोगलक्षणस्य ङीषो ऽपवाद ऊङ् विधीयते, शावशेराप्तौ, शुशब्दे ऽशोतिरुर्न् प्रत्ययो भवति, किमिदं शुइति, आशुशब्दस्यायमादिलोपो निपातितः, आश्वाप्तव्यः श्वशुरः, तस्य स्त्री श्वशूः, श्वशुरः श्वश्चेत्यादिनिपातनाद्विभक्त्यादि प्रातिपदिक-कार्यं भवति ॥

“ऊरुत्तरपदादौपम्ये” ॥ उपमीयतेभ्येत्युपमा तद्भाव औपम्यं, कथं विचकरे च करेणुकरोरुभिरिति, निरङ्कुशाः कवयः, करेण वरोरुभिरिति पाठः । करेण विचकरे वरोरुभिरिति ॥

“संहितशफलक्षणवामादेश्च” ॥ संहितशब्दः सहितपर्यायः लक्षणशब्दो ऽर्शाद्यच्प्रत्ययान्तः, वामशब्दः शोभनपर्यायः । ‘सहित-सहाभ्यां चेति’ । समा वा हितततयोरिति मलोपे सति यः सहित-शब्दस्तस्य संहितग्रहणेनैव सिद्धम्, एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्, यस्तु सह हित्त्वेन वर्त्ततइति व्युत्पन्नः सहितशब्दस्तस्येदं ग्रहणमित्याहुः । ‘सहोरुहिति’ । सहेते इति सहौ, तादृशावूरु यस्या इत्यर्थः । विद्यमानस्य वा सहशब्दस्य ऊर्वतिशयप्रतिपादनायप्रयोगः ॥

“कद्रुकमण्डल्वोश्कन्दसि” ॥ गुग्मुल्वादीनां कन्दसि, व्यत्य-येन स्त्रीत्वं, पतयालुशब्दः स्पृहिएहीत्यादिना ऽऽलुजन्तः ॥

“शाङ्गरवाद्यजो डोन्” ॥ ‘एते णान्ता इति’ । शङ्गरकपटु-

शुभुनुब्रह्मत्रित्येभ्यः प्राग्दीप्तोष्, गोतमशब्दादृष्यण्, गौराद्विष्वप्ययं
 पठितः । 'एते ढगन्ता इति' । बाहुल्यादेवमुक्तं, कमण्डलुशब्दाच्चतुष्पा-
 द्भ्यो ढञ्, इतरभ्यस्तु शुभादिलक्षणा ढक् । 'एतौ फगन्ताविति' । वास्य-
 शब्दाद्गोर्गादियत्रन्ताद्भूनि यञिञोश्चेति फक् । ननु न स्त्रियां युवसञ्जा
 गोत्राद्भून्यस्त्रियामिति वचनात्, गोत्रे चैका गोत्रइति नियमः, एवं
 तर्हि वात्स्यायनशब्दस्यास्मिन् गणे पाठसामर्थ्यास्त्रियां युवसञ्जा भवि-
 ष्यति, गोत्रएव वा प्रत्ययद्वयं, मुञ्जशब्दो नडादिः । 'जातिरिति' । गोत्र-
 लक्षणा । 'ढगन्त इति' । कीकसाशब्दः शुभादिः, । 'ज्यङन्ताविति' । वृद्धे-
 त्कोसलाजादाञ् ज्यङिति कविशिविभ्यां ज्यङ्, यङश्चाबत्र प्राप्नोति । 'एहि
 पर्यङ्गीति' । इह चेष्टायां आङ्पूर्वात्पर्याङ्पूर्वाच्च सर्वधातुभ्य इनितीन्
 प्रत्ययः, अश्मरथशब्दो गर्गादिः, उदपानशब्दः शुण्डिकादिरुत्सादिश्च,
 तत्राह । 'शुण्डिकाद्वगन्तः प्रयोजयतीति' । अन्ते तु डीपो डीनो वा
 नास्ति विशेषः । 'जातिरिति' । अरालचण्डालयोरसर्वलिङ्गत्वाज्जातित्वं,
 वतण्डशब्दस्य गोत्रत्वात्, वतण्डस्यापत्यं स्त्री वतण्डाच्चैति यञ्, लुक्
 स्त्रियामिति तस्य लुक् । 'भोगवद्गौरिमतेरिति' । मत्वन्तत्वाद्गुणित-
 श्चेति डीपि प्राप्ते वचनं, ननु भोगशब्दो घञन्तः, गौरिशब्दोत इञिती-
 जन्तः, तौ जित्स्वरेणाद्भुदात्तौ, ताभ्यां मत्पु, पित्त्वाद्भुदात्तः,
 ततश्च न डीम्डीनोरत्रास्ति विशेषस्तत्राह । 'घादिषु नित्यमिति' ।
 उगिल्लक्षणे डीपि सति नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम्, उगितश्चेति विक-
 ल्पेन ह्रस्वत्वं स्यात्, डीनि तु सति घरूपकल्पेति नित्यं सम्भवति, कथं
 भवति, यावता उगितः परा या नदी तस्या विकल्पो विहितः, डीनपि
 चोगितः परा नदी, भोगवद्गौरिमतेरुगित्त्वात् । नैष दोषः । उगित-
 श्चेतीत्यर्थेयं चशब्दः, उगित इत्येवमुगित्संशब्दनेन या नदी विहिता
 न चानेन विहिता डीनेषं विहिता नदी भवति, यथा तु युवोर-
 नाकावित्यत्र भाष्यं तथोगितः परा या नदीत्येतदेष स्थितं, सञ्जाया
 अन्यत्र डीबेव भवति ह्रस्वश्च विकल्पितः । 'नृनरयोर्दृष्टिश्चेति' ।

नृशब्दादृन्नेभ्यो ङीपि नरशब्दाज्जातिलक्षणे ङीपि प्राप्ते वचनम् ।
 'वृद्धिश्चेति' । वक्ष्यामीति च अन्यतरस्यग्रहणेपि नारीतीष्टं सिद्धमन्य-
 तरस्यानिष्ठनिवृत्त्यर्थं तु द्वयोरुपादानं, तत्र नरशब्दे ऽन्यस्य वृद्धौ सत्यां
 यस्यतिलोपादानर्थक्यमिति, यस्येति लोपस्तावद्भवति तत्र कृते रेफस्य
 वृद्धिः प्राप्नोति, का, ऽविशेषात्पर्यायेण सर्वैव, नैष दोषः । स्थानेन्तरतम
 इत्यत्रान्तरतमे स्थाने षष्ठीत्यपि पक्षो व्याख्यातः, ततो नृनरयोरिति
 येषा षष्ठी सा वृद्धेरन्तरतमे नृनराश्रयवे स्थानिन्यनुसंहियते, यत्र च
 षष्ठी तत्रादेश इत्यकारस्यैव भविष्यति, अत्र पुत्रशब्दं केचित्पठन्ति
 न स केवलः स्त्रियां वर्त्ततइति तदन्तस्य समासस्य ग्रहणं, तत्रापि बहु-
 पुत्रा ऽतिपुत्रेत्यादावनुपसर्जनाधिकारात् भवति, क्व तर्हि भवति, पुत्र-
 प्रधाने, ननु पुत्रप्रधाने समासे सैव पुल्लिङ्गता, सत्यं, सूतायराजभोजमे-
 रूभ्यो दुहितुः पुत्रद्वेति वार्त्तिककारेण यत्र पुत्रडादेशो विहितस्तान्यु-
 दाहरणानि, सूतपुत्री, राजपुत्रीति, अत्र स्वभात्पुत्रशब्दो दुहितृशब्देन
 समानार्थो न पुत्रडादेश इति पठतामभिप्रायः । अन्ये तु प्रद्योतपुत्री
 शैलपुत्रीति वार्त्तिकविषयादप्यदेव ङीन उदाहरणं, पुत्रडादेशस्तु ङीपि
 स्वरार्थे इति मन्यन्ते, नात्राप्तभाषितमस्ति ॥

“यङश्चाप्” ॥ पकारो ज्याप्प्रातिपदिकादित्यत्र सामान्यग्रह-
 णार्थः, स्वरस्तु परत्वाच्चित्स्वर एव भवति । ‘ज्यङः ष्यङश्च सामान्यग्रहण-
 मिति’ । यद्यपि ष्यङ् स्त्रियामेव विधीयते तथापि डिक्करणसामर्थ्यात्त-
 स्याप्यत्र ग्रहणमिति भावः । ‘आम्बष्टेत्यादि’ । आम्बष्टादिभ्योपत्ये
 वृद्धेत्कोमलाजादाज् ज्यङ् । ‘कारीषगन्धेति’ । स्वादिसूत्रे व्युत्पादितम् ।
 वराहशब्दादत इज्, शर्करात्तूपतिमाश्रणोक्तशब्दा गर्गादयः । ननु च
 गौकाक्ष्यशब्दः कौड्यादिषु पठ्यते, ततः ष्यङि यङ् इत्येव चाप् सिद्धः,
 मा पाठि तत्र पाञ्च यज इत्यनेनैव शर्कराद्यादिवद् गौकाक्ष्येति सिद्धं,
 यद्येवं गौकाक्षीपुत्रः ष्यङः सम्प्रसारणं न प्राप्नोति, नात्र सम्प्रसारण-
 मिष्यते, गौकाक्ष्यापुत्र इत्येव भवति, एवं हि सौनागाः पठन्ति ष्यङः
 सम्प्रसारणे गौकाक्ष्यायाः प्रतिषेधः ॥

“तद्वृताः” ॥ ‘युवतिरिति’ । तद्वृतसञ्ज्ञायां सत्यां कृत्तद्वृ-
 तमसाशश्चेति प्रातिपदिकमञ्ज्ञा भवति । ‘बहुवचनमित्यादि’ ।
 प्रत्यय इत्यादिवदेकवचनगव कर्त्तव्ये बहुवचनेन सञ्ज्ञानां बहुत्वमूच-
 नादनुक्तोपि तद्वृतः परिशुद्ध इति मन्यते, स्त्रीप्रत्ययानामादितस्तद्वृ-
 ताधिकारे क्रियमाणे प्राचां ष्फ तद्वृत इत्यत्र तद्वृतयहणं न कर्त्तव्यं
 यस्येति चेत्यत्र चकारग्रहणं इयात्प्रातिपदिकादित्यत्र तु तदन्तात्तद्वृत-
 विधानार्थं इयाद्यग्रहणं कर्त्तव्यमेव, सत्यङ्ङीवादीनां डकारस्येत्सञ्ज्ञा न
 स्यादतद्वृतइति प्रतिषेधात्, सत्यामपि वा पट्वीत्यादावोर्गुणः स्यात्-
 स्माद्वयान्यासमेवास्तु ॥

“यूनस्तिः” ॥ ‘युवतिरिति’ । त्यन्तादितो मनुष्यजातेरिति
 डीप्र भवति तिप्रत्ययेनैव स्त्रीत्वस्योक्तत्वात्, यौवनस्य वा ऽजातित्वात् ॥

“अणिञोरनार्षयोर्गुरुपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे” ॥ इह सम्भवे
 व्यभिचारे च सति विशेषणविशेष्यभावो भवति, तेन गोत्रे ऽनार्षयो-
 रिति चाणिञ्मात्रस्य विशेषणं गुरुपोत्तमयोरित्येतत्तदन्तस्य, तदाह ।
 ‘गोत्रे यावणिञौ विहितावनीर्षा तदन्तयोरिति’ । यद्यप्यपत्याधिका-
 रादन्यत्र लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणं तथाप्यत्र पारिभाषिकस्य ग्रहणं,
 लौकिकग्रहणस्यानार्षयोरिति पर्युदासाश्रयणेनैव सिद्धत्वात्, इहायं ष्यङ्
 प्रत्ययो वा स्यादादेशो वा, प्रत्ययविधावपि हि गापोऽगित्यादौ
 षष्ठीदर्शनात्, उत्तरत्र ऋद्ध्यादिभ्यश्चेति पञ्चमीनिर्द्वैशाच्च प्रत्ययपत्तोपि
 सम्भवत्येव, तत्राद्यपत्ते उदमेघस्यापत्यं स्त्री, अत इञ्, औदमेघ इति
 स्थिते तदन्तात् ष्यङ् विहिते औदमेघ्यायाश्छात्रा औदमेघाश्छात्राः,
 औदमेघ्यानां सद्गु औदमेघः सद्गुः, इत्रश्च सद्गुङ्ङनत्तणइति च इत्रन्ता-
 द्विधीयमानोणं न स्यात्, अथापि लिङ्गविशिष्टपरिभाषया इत्रन्ताद्विधी-
 यमानोणं ष्यङ्न्तादपि स्यात्, गवमप्यापत्यस्य च तद्वृतेनातीति यलोपो
 न स्यात्, ष्यङ्ङोनापत्यत्वात्, नैष दोषः । भस्याडे तद्वृतइति
 पुंवद्भावात्प्रागेवाण उत्पत्तेः ष्यङ्ङिवर्त्तते, तस्मिन्निवृत्ते इञ् इत्यण
 भविष्यति, यकारस्य च श्रवणं न भविष्यति, इह तस्मिन्निवृत्ते-

घ्याया अपत्यं, स्त्रीभ्यो ढ्रु, औदमेवेय इति यलोपो न स्यात्, पुंवद्भावश्च नास्ति अठइति प्रतिषेधादितीममाद्ये पत्ते दोषं दृष्ट्वा द्वितीयं पदमाश्रित्याह । 'ष्यङादेशो भवतीति' । नन्वस्मिन्पत्ते उडुलो-
 न्नोपत्यं स्त्री बाह्यादिषु लोमञ्जशब्दस्य पाठात्केशलस्यापत्येन योगाभा-
 वात्सामर्थ्यात्तदन्तस्य ग्रहणादिजि तस्य ष्यङादेशे सति ये चाभावक-
 र्मणोरिति प्रकृतिभावात्तद्वितइति टिलोपो न स्यात्तत्तश्चौडुलोमन्येति
 स्यादौडुलोम्येति चेप्यते, प्रत्ययपत्ते तु इजा व्यवधानान्नास्ति प्रकृति-
 भावः, यस्येति लोपे ऽपि कृते स्यानिवद्वावाद्भवधानमेव, नैष दोषः ।
 नात्राकृते टिलोपे ष्यङ् प्राप्नोति, किङ्कारणमगुरुपोत्तमत्वात्, तस्मादि-
 ज्येव टिलोपः, ततो गुरुपोत्तमत्वं, ततः ष्यङित्यानुपूर्व्यात्सिद्धम् । अयं
 तर्हि दोषः प्रत्ययग्रहणपरिभाषया ऽणित्त्वन्तयोर्यहणं, तयोर्विधीयमानः
 ष्यङनेकाल्त्वात्सर्वादेशः प्राप्नोति, ङित्वेत्यन्त्यस्य भविष्यति, तातङ्न्या-
 येन सर्वादेशः प्राप्नोति, यत्र हि ङकारस्य प्रयोजनान्तरमपि सम्भाव्यते
 तत्र ङित्वेत्येतदनन्त्यार्थङित्विष्वनडादिषु सगवकाशं बाधित्वा ऽनेकाल्-
 शित्सर्वस्येत्येतद्भवति यथा तातङि, इह च सर्वादेशत्वेपि यङत्वाविति
 विशेषणं प्रयोजनं सम्भवति तस्मात्सर्वादेशः प्राप्नोति, तत्राह । 'निर्दि-
 श्यमानस्येत्यादि' । यद्ययमुत्तमशब्दोव्युत्पन्नः स्यात्तदोच्छब्दात्तमपि कृते
 किमेत्तिङव्ययघादित्याम् प्राप्नोति, न वा द्रव्यप्रकर्षत्वात्, उच्छब्दो हि
 ससाधनक्रियावचन उद्गते वर्त्तते, तस्य क्रियाद्वारकः प्रकर्षो ऽतिशयेनो-
 द्गत इति, ततश्च द्रव्यनिष्ठत्वात्प्रकर्षस्याद्रव्यप्रकर्षइति प्रतिषेधो भवि-
 ष्यति, एवमपि तमपः पित्त्वादाद्युदात्तत्वप्रसङ्गः, न वोञ्छादिषु पाठात्,
 उञ्छादिषु हि उत्तमशब्दतमौ सर्वत्रेति पठ्यते, एवमपि स तावत्पाठः
 कर्त्तव्यः, क्रियामात्रस्य च प्रकर्षं उत्तमामित्याम्प्रसङ्गश्च, अतो नभिधा-
 नादुच्छब्दात्तमपोनुत्पत्तिरेषितव्या । किं च व्युत्पन्न उत्तमशब्दश्च-
 तुष्पभृतिषु वर्त्तते, कथम्, ऊर्ध्वमुच्चारित उद्गतः स च प्रथमोच्चारितम-
 पेवते, ततश्च त्रिषु द्वावुद्गतौ तयोश्च द्वितीयोतिशयेनोद्गतः, द्वयोश्च
 सम्प्रधारणायां तरपा भाव्यं, ततश्च यत्रोद्गता एव त्रयत्तत्रैव स्यात् क्य-

रीषगन्धेऽद्यादौ, वागन्धेऽद्यादौ तु न स्यात्, तदेवं व्युत्पत्तिपक्षे दोषं पश्यद्व्युत्पत्तिपक्षमाश्रित्याह । 'उत्तमशब्द इति' । 'स्वभावादिति' । न व्युत्पत्तिवशादित्यर्थः । त्रिभृतीनामिति वचनाद्वाचीप्राचीत्यादौ न भवति टिड्ढाणञिति डीबिभ्र भवतीति प्राप्तिमात्राभिप्रायेणोद्भूतम्, अत्र हि जातिस्वाच्छार्ङ्गश्चाद्यत्र इति डीना भाग्यम् । 'बासिष्टीति' । ऋष्यन्धकेऽद्यादिनाम् । 'आहिच्छन्तीति' । जातादावर्गेण, एवमत्रादेशपक्षः स्थापितः । यद्येवं हस्तिशिरसोपत्यं बाह्यादित्यादित्त्र, अचि शीर्ष इति शीर्षादेशइजः ष्यडादेशः, ततः स्यानिवद्भावेन शीर्षशब्दस्य शिरोयहणेन यहणाद्ये च तद्वृत्तइति शीर्षादेशः प्राप्नोति, अस्तु नस्तद्वृत्तइति टिलोपो भविष्यति, ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः प्राप्नोति, ततश्च हास्ति-शीर्षण्येति स्यात्, प्रत्ययपक्षे त्वित्राव्यवहितत्वात् हास्ति शीर्षादेशः, यस्येति लोपेपि कृते स्यानिवद्भावाद्भवधानमेव, तेन हास्तिशीर्ष्येति सिद्ध्यति, तस्मात्प्रत्ययपक्ष आश्रयणीयः, तदेतद्ये च तद्वृत्तइत्यत्र वामनो वक्ष्यति यदि प्रत्ययः कथमौदमेधेव इति, आप्त्याद्विहितः ष्यङ् सोप्यापत्य एव, तत्र यलोपे सिद्धमिति, जयादित्यस्तु मेने शीर्षादेशनत्रिपातेन ष्यङ् स तद्वृत्तं न करिष्यतीति, यद्यत्रमजादिप्रत्ययनिबन्धः शीर्षादेशः कथं तमजादिं विहन्यात्, ततः किं, ष्यडादेशोपि न प्राप्नोति, अनित्या मत्रिपातपरिभाषा तेन ष्यङ् भवति शीर्षादेशश्च न भविष्यति, अयं तस्मादेऽपक्षे दोषः । अनुबन्धौ कर्तव्यौ यङ्स्वाविति सामान्ययहणतद्विधातार्थौ, अन्यथा ऽणादेशे ष्यङ् टिड्ढाणञित्यादिना डीप् स्यात्, इजादेशे त्वित्र उपमह्वानमिति डीप्प्रसङ्गः, नैष दोषः । टिड्ढाणञित्यत्रात इति वर्त्तते तत्र चाणा ऽकारो विशेष्यते ऽण्योकार इति, तत्र ष्यडादेशेऽनन्विधाविति स्यानिवद्भावाभावाच्चीव भविष्यति, अगन्तादकारान्तादिति हि विजायमाने स्याश्रयमकारान्तत्वं स्यानिवद्भावाद्गगन्तत्वं चेति स्यान्डीपः प्रसङ्गः, इत्र उपमह्वानमित्यत्रापि इतो मनुष्यजातेरित्यत इत इत्यपेत्यते इत्र्य इकारः तदन्तादिति, इत्रन्तादिकारान्तादिति वा विजायमाने ष्यडादेशे सति वारास्तेत्यादिविकाराभावान्डीपभावः सिद्धः,

एवमपि स्वरार्थश्चाबेष्टव्यः, अन्यथा इजादेशः षड् स्थानिवद्भावेन जित्
 टाबपि पित्त्वाद्नुदात्त इति जित्स्वरेणाद्युदात्तं पदं स्यात् । स्यादेतत् ।
 इजो जकारस्येत्सञ्ज्ञायाः प्रागेव प्रतिपदविधानात्षड्देशः कारिष्यते,
 तत्र जित्स्वराभावात् प्रत्ययस्वरे सति टाप्यपि सिद्धः स्वर इति, यथैव
 तर्हि जित्स्वरो न भवति एवं वृद्धिरपि न स्याद्, अतो जकारस्य सत्यामि-
 त्सञ्ज्ञायामादेश इत्याख्येयं, ततश्च स्वरे दोषप्रसङ्गाच्चाबर्थमनुबन्धौ कर्त्त-
 व्यावेव, प्रत्ययपक्षे तु सति शिष्टे षडः प्रत्ययस्वरे कृते तदन्तादापि
 सिद्धमिष्टं न रूपभेदो न स्वरभेदः । ननु च षडैव स्त्रीत्वस्य घोतित-
 त्वादात्तं स्यात्, नैष दोषः । यथा गार्ग्यायणीत्यादौ द्वाभ्यां स्त्रात्वं
 द्योत्यते तथा ऽत्रापि द्वयोरैव सामर्थ्यामिति टाबपि भविष्यति, षडः सम्प्र-
 सारणमित्यत्र विशेषणार्थं तर्हि त्वयाप्यनुबन्धौ कर्त्तव्यौ, इह माभूत्याशानां
 समूहः पाश्या, पाशादिभ्यो यः, पाश्यापतिरिति, एवं तर्ह्येकोनुबन्धः
 कारिष्यते, क एकः, षकारे ङीष्प्रसङ्गः, ङकारे यङः सम्प्रसारणमित्युच्य-
 माने लोलूयापुत्र इत्यत्रापि प्राप्नोति, अप्रत्ययादित्यकारे ऽतो लोपे च
 सति अकारेण व्यसहितत्वात् न भविष्यति, वाराहीपुत्र इत्यत्रापि तर्हि
 टापा व्यवधानमेकादेशस्य पूर्वं प्रत्यन्तवत्त्वाच्चास्ति व्यवधानं, ननु
 षडः सम्प्रसारणमित्यत्र लिटि धातोरित्यतो धातुग्रहणमनुवर्त्तते आदेच
 उपदेशेशितीत्यात्वं धातोर्यथा स्याद्गोभ्यामित्यादौ मा भूदित्येवमर्थे, तत्र
 यङन्तस्य धातोः पुत्रपत्यारनन्तरयोः सम्प्रसारणं भवतीत्युक्ते यो धातुर्लो-
 लूयादिर्नासावनन्तरः, यश्चानन्तरो वाराह्यादिर्न स धातुस्तत्र धातु-
 त्थानन्तर्ययोरन्यतररूपपरिच्छागेन भवत्सम्प्रसारणं यथा वाराहीपुत्र
 इत्यादौ असत्यपि धातुत्वे आनन्तर्यमात्राश्रयणेन भवति तथा लोलू-
 यापुत्र इत्यत्रासत्यप्यानन्तर्ये धातुत्वाश्रयणेन स्यात्, अथ ब्रूया
 यङ्धात्वान् परस्परं विशेषणविशेष्यभावो ऽपि तर्हि समुच्चयः पुत्र-
 पत्यारनन्तरस्य यद्वा धातोश्चेति, तत्र वाराहीपुत्र इत्यादौ भविष्यति न
 तु लोलूयापतिरित्यादौ धातोर्व्यवधानात्, ततश्च सामर्थ्याद्वातुग्रहण-
 स्यात्तार्थवानुवृत्तिः सम्प्रसृतइति, यद्भवं वाक्यतिरित्यत्र षचेः सम्प्र.

सारणप्रसङ्गः, एवं तर्हि धातारिति निवृत्तिष्यते, आत्वं पुनर्गवादेः प्राति-
पदिकस्य न भवति उपदेशाभावात्, स्वरूपज्ञापनप्रधानो निर्द्वेष उप-
देशः, गोद्वचः नौद्वच इत्यादौ तु कार्यान्तरार्थमुच्चारणं न स्वरूप-
ज्ञापनार्थं, तदेवं प्रत्ययपक्षक एवानुबन्धः कर्तव्यः । अत्र संग्रह-
श्लोकाः ॥

पुंवद्वावाद्यजादौ यलुगगपि परस्मिन् ष्यङि ह्यौदमेघे
स्वार्थं ष्यङ् तद्वलुठे क्रमत इह भवेदौदुलोम्या परस्मिन् ।
ष्यङ्शीर्षाधीननाभस्तदभिविहतये न प्रभूर्हास्ति शीर्षं
सर्वादेशोपि तातङ्ङिव न यङ्ङिजोःस्यानिनोरुक्तिहेतोः ॥ १ ॥
स्त्युक्तावप्याप्परस्मिच्चिह्नं सुलभ इति षडौ विधेयौ न वा ये
ऽणादेशे ङीनिवृत्त्यै त्वण इत्र इति चेद् द्वौ विशेष्यौ न दोषः ।
त्रित्वादादेरुदात्तः प्रसजति सहजादेशने वृद्धाभावः
पाश्यापुत्रे निवृत्त्यै यण इक इह ऐत्वे कके ङीप्ङ्येस्तु ॥ २ ॥
लौलयापुत्र इत्यद्वयवहित इतरत्रापि दीर्घान्तवत्स्याद्
धात्वानन्तर्ययोगे विधिरिति स यथानन्तरे ऽधौ तथा धोः ।
धात्वानन्तर्यपोश्चेन्मिथ इह न हितेपेतिता वाक्यतादिः ॥
धोर्नात्राधिक्रियात्वे ह्युपदिशिरिति गोर्नां तदेवं ममैकः ॥ ३ ॥

“गोत्रावयवात्” ॥ गोत्रशब्दोऽयमस्ति पारिभाषिकोपत्यं पौत्र-
प्रभृतिगोत्रमिति, अस्ति च लौकिकोपत्यमात्रवचनः, अस्ति च व्युत्पन्नो
गूयन्ते शब्दवन्ते ऽनेन स्वसन्तानप्रभवा इति प्रधानभूत आदिपुरुषः,
स्वप्रवभस्यापत्यं सन्तानस्य सञ्जाकारी गोत्रमित्युच्यते, यथा भरते
रघुर्यदुरिति, अवयवशब्दोऽप्यस्ति एकदेशे यत्सम्बन्धादवयवतीति समुदाय
उच्यते, अस्ति च पृथग्भावे, अवयुत्यानुषाद् इत्यादाववपूर्वस्य यौतेः पृथग्भा-
वेपि दर्शनात्, अस्ति चाप्रधाने ऽवयवभूतायमस्मिन् याम इति, तत्र पारि-
भाषिके गोत्रे एकदेशे चावयवे च वचनप्रनर्थकमिदं स्यात्, कथं, पौत्र-
प्रभृत्यपत्यसमुदायो गोत्रं तदवयववत्तुर्थादिस्तदपि गोत्रमेव, सद्वाचिनो
ऽणिसन्तात्पूर्वगैव सिद्धः ष्यङ्, अथ कस्मिंश्चिन्महागोत्रे यान्यवान्तर-

गोत्राणि यथा भार्गवगोत्रस्य च्यवनादीनि ते गोत्रावयववास्तेष्वगुरु-
पोत्तमार्था ऽयमारम्भः, यद्वेवं सप्तर्षीणामगस्त्याष्टमानामष्टौ महागो-
त्राणि प्रवराध्याये पठन्ते तद्गतिरिक्तेभ्यः सर्वेभ्यः ष्यङः प्रसङ्गः, न
चैतद्विष्टमगुरुपोत्तमेभ्योपि पुणिकादिभ्य एवेष्यते पृथग्भाववचने त्ववय-
वशब्दे गोत्रादन्यवाचिनो ऽण्जन्तात्ष्यङि विधीयमाने पूर्वसूत्रे गोत्र-
ग्रहणमनर्थकम्, अथाप्रधानवचनोवयवशब्दः पारिभाषिकमेव गोत्रं प्रवरा-
ध्याये पाठाच्चाप्राधान्यं ततोयमर्थः स्यात्, येण्जन्ता गोत्रापत्यवाचिनः
प्रवराध्याये न पठन्ते तेभ्यः ष्यङिति तत्रानृषिभ्यो गुरुपोत्तमेभ्यः पूर्व-
णैव सिद्धः, अगुरुपोत्तमेभ्यस्तु सञ्ज्ञाकारिभ्य एवेष्यते, पारिभाषिके च
गोत्रे सञ्ज्ञाकारित्वं विशेषो न लभ्यतइति, इहापि प्रसज्येत तुषजको
नाम कश्चित्तस्य गोत्रं स्त्री, अत इज्, तौषजकी, अपत्यमात्रे तु गोत्रे यद्वे-
कदेशोवयवस्ततो ऽपत्यसमुदायस्य पौत्रप्रभृत्यपत्यमवयव इति तद्वा-
चिनो ऽण्जन्तात्पूर्वणैव सिद्धः, पृथग्भावे त्वपत्यादन्यवाचिन आहिच्छ-
न्नादेरेव प्रसङ्गः, अप्राधाने त्वप्रधानापत्यवाचिनोण्जन्तादगुरुपोत्तमात्र
सर्वत्रेष्यते किं तु सञ्ज्ञाकारिभ्यस्तत्रापि गोत्रि, व्युत्पन्नेगोत्रे एकदेशवच-
नोवयवशब्दो न सम्भवति, नहि येन पुरुषेण स्वसन्तानप्रभवा गूयन्ते
तदवयवाद्गुस्तपादादेर्गोत्रेणो ऽसम्भवः, अथ गोत्रं च तदवयवश्चेति
कर्मधारयस्तदा भार्गवादिगोत्रेषु ये ऽवान्तरव्यपदेशकारिणश्च्यवनाद-
यस्तेभ्यः प्रसङ्गः, पृथग्भावे च ये सञ्ज्ञाकारिभ्यः पृथग्भूतास्तुषजकाद-
यस्तेभ्य एव स्यात्, अत एवमेषु पक्षेषु दोषसम्भवाद्बुत्पन्नो गोत्रशब्दो
ऽप्रधानावचनोवयवशब्दः, कर्मधारयश्चसमासो निपातनाद्विशेषणस्य
परनिपातः, प्रवराध्याये ऽपाठाच्चाप्राधान्यं, तदेतद्वाह । 'गोत्रावयवा
गोत्राभिमतता इति' । गोत्रमित्येवमभिमतताः गोत्राभिधायिन इत्येव
लोके प्रसिद्धाः न पुनः प्रवराध्याये पठिता इत्यर्थः । काः पुनस्ता इत्य-
न्नाह । 'कुलाख्या इति' । कुलमाख्यायते आभिरिति कुलाख्याः, पुणि-
कादिभिर्हि कुलमाख्यायते पुणिका घयं गोत्रेणेत्येवमादि । 'तत इति' ।
यथोक्तविशेषणविशिष्टाभ्यः कुलाख्याभ्यः । 'अगुरुपोत्तमार्थं आरम्भ

इति' । गुरुपोत्तमयोरिति निवृत्तमन्यत्सर्वमनुवर्त्ततइति भावः ।
'पौणिक्रयेत्यादिः' । पुणिक्रभुणिक्रमुन्वरशब्देभ्योत इञ्, तस्य ष्यङादेशः ।
'ते प्रोद्गादिपु द्रष्टव्या इति' । अशृङ्कृतत्वात्तस्येति भावः ॥

“कौड्यादिभ्यश्च” ॥ ‘ष्यङ् प्रत्ययो भवतीति’ । कौड्यादिभ्य
इति पञ्चमीनिर्द्वंशात्प्रत्ययपक्षेऽत्र दोषाभावाच्चैवमुक्तम् । ‘अगुरुपोत्त-
मार्थे इत्यादि’ । तत्र कौड्यादयः प्राक्चोपयतशब्दादत इजन्ताः, चौपय-
तप्रभृतयः प्राग् सौधातकिशब्दादणन्ताः, सौधातकिशब्दः सुधातुर-
कङ् चेति इजन्तः । ‘सूत युवत्यामिति’ । सूतशब्दः ष्यङ्मुत्यादयति
युवत्यां प्राप्तयौवनायामभिधेयायां, सूत्या, अन्यत्र क्रियाशब्दाट्टाञ् भवति
सूता, जातिवाचिनस्तु डीष् भवति सूती । ‘भोज तन्नियइति’ । जाति-
लक्षणस्य डीषोपवादः, भोन्याः, क्रियाशब्दात्सु टाबेव भवति भोजयतीति
भोज्जा, ततः परे इजन्ताः, गौकाद्यशब्दे गगादियत्रस्तः ॥

“दैवयज्ञिशौचिवृत्तिसात्यमुषिकण्ठेष्विद्विभ्योन्यतरस्याम्” ॥ देवा
यज्ञा यष्टव्या अस्य देवयज्ञः, शुचिर्द्वेता ऽस्य शुचिवृत्तः, सत्यमुषमस्य
सत्यमुषः, निपातनाद्विशेष्यस्य पूर्वनिपातो मुमागमश्च, कण्ठे विद्वमस्य
कण्ठे वा विद्वः, अमूर्द्धमस्तकादित्यलुक्, काण्ठेविद्विभ्य इत्यन्ये पठन्ति,
काण्ठेन विद्वः, कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासः, निपातनात्का-
ण्ठशब्दस्यैकारः, सर्वे इजन्ताः ॥

“समर्थानां प्रथमाद्वा” ॥ प्रत्येकमत्र पदानां स्वरितत्वं प्रतिज्ञा-
यते न समुदायस्यैकमित्याह । ‘त्रयमपीति’ । अत्र च प्रयोजनमेकस्य
निवृत्तावपरस्य निवृत्तिर्माभूदिति, एतदेव स्पष्टयति । ‘समर्थानामिति
चेति’ । ‘स्वार्थिकप्रत्ययावधिश्चायमिति’ । स्वस्याः प्रकृतेरर्थे भवाः
स्वार्थिकाः, अध्यात्मादिः, भाष्यकारप्रयोगाद् द्वारादिकार्यभावाः, स्वश-
ब्दस्य तु द्वारादिषु पाठादस्ति प्रसङ्गः, तदादिविधिर्हि तत्र भवति आद्याञ्चि
शेषणत्वाद् द्वारादीनां, यथा द्वारपालस्येदं दौवारपालमिति । ‘प्राग्दिशो
विभक्तिरिति यावदिति’ । तत आरभ्य हि स्वार्थिकाः प्रत्यया विधीयन्ते,

किं पुनः कारणं स्वार्थिकेष्वेष न प्रवर्ततइत्याह । 'स्वार्थिकेष्वित्यादि' । तत्र समर्थानामिति सम्बद्धारथानां चेत्यर्थः । तत्र वाक्ये सम्बद्धारथता, व्यपेक्षा हि तत्र सामर्थ्यमपेक्षा आकाङ्क्षा अन्योन्यापेक्षा व्यपेक्षा, अनया ऽऽकाङ्क्षासन्निधियोग्यत्वेषु सत्सु यः सम्बन्धः स लक्ष्यते, वृत्तौ संसृष्टार्थता, एकार्थीभावो हि तत्र सामर्थ्यं, वृत्तौ ह्युपसर्जनपदानि स्वार्थमुपसर्जनी-
 कृत्य प्रधानार्थपराणि भवन्ति, यथा गङ्गायां घोष इति गङ्गापदं गङ्गा-
 पसर्जनं तीरमाह, तथौपगव इत्यत्रोपगुशब्दः स्वार्थोपसर्जनमपत्यमाह,
 अत एव ऋद्वस्यौपगव इति ऋद्वत्वमुपगोर्विशेषणं न भवति, यत्र हि
 शब्दः पर्यवस्यति तत्रैव विशेषणसम्बन्धः, यदि च वाक्यवद्वृत्तावपि
 स्वार्थेव पर्यवस्येतद्वदेव विशेषणसम्बन्धो भवेत्, प्रधानपदान्यप्युप-
 सर्जनविशिष्टमेव स्वार्थं ब्रुवन्ते, यदि तु वाक्यवद्वृत्तावपि प्रधानपदानि
 स्वार्थमेव ब्रुवीरन् ततो यथोपगोरपत्यं देवदत्तः कल्याणश्चेत्युभाभ्याम-
 पत्यार्थस्य सम्बन्धस्तथौपगवः कल्याणश्चेत्यप्युक्ते स्यात्, न चैव,मतो
 यादृशस्य सम्बन्धस्य भानादयं विशेषः स एकार्थीभावः, न च स्वार्थि-
 केषु प्रकृत्यर्थादर्थान्तरं सम्भवति यत्प्रत्याग्रनाय शब्दान्तरं प्रयुज्येत येन
 सह समर्थता स्यात्, एतेन प्राथम्यं व्याख्यातमतः प्रतियोग्यपेक्षया
 सामर्थ्यप्राथम्ययोरभावात्स्वार्थिकेषु नास्योपयोग इति सिद्धं, विकल्पो
 ऽपि तत्रानवस्थित इति क्वचित्प्रवर्तते क्वचिच्च, एतच्चाषडत्तादिसूत्रे
 ब्रह्मते, इह प्रथमादित्येतद्विशेषणं शास्त्रवाक्यगतमाश्रीयते न विग्रह-
 वाक्यगतमनियतत्वात्, वाक्ये हि प्रयोगो ऽनियत इति सर्वेषां प्राथ-
 म्यसम्भवात् कदा चिदपत्यबद्धाचिनोपत्ये प्रत्ययः स्यात् कदा चिद-
 पत्यवाचिनस्तद्वृत्ति, अयं च प्रकारोसत्यपि प्रथमादित्यस्मिंल्लभ्यतइत्य-
 नर्थकं तत्स्यात् । ननु च यस्मिन्वाक्ये यत्प्रथमोच्चारितं तस्मिंस्तत एव
 यथा स्याच्चरमोच्चारितान्मा भूदित्येतत्प्रयोजनं स्यात् । तत्र । नहि
 वृत्तिवाक्ययोः सहप्रयोगः, ततश्च वाक्यगते प्राथम्ये व्यवस्थापके सति
 वृत्तेः प्रयोगो न नियत इति व्यर्थमेव प्रथमादिति विशेषणं स्यात्तस्मा-
 द्वास्त्रवाक्यगतमेव प्राथम्यं व्यवस्थापकमित्याह । 'लक्षणवाक्यानी-

त्यादि । 'समर्थानामिति निर्द्वारणे पठतीति' । ततश्च निर्द्वारणस्य तुल्यजातीयविषयत्वात्प्रथमात्ममर्थोत्प्रत्ययो भवति, तत्र समर्थोत्प्रथमादिति वक्तव्ये समर्थानां प्रथमादिति वचनं प्रधानपदस्याप्युपसर्जनपदेनैकार्थ्यभावप्रतिपादनार्थम्, अन्यथा वाक्यवद्भूतावपि प्रधानपदस्यान्येनापि सम्बन्धः शङ्क्यते, यदि तर्हि लक्षणवाक्ये प्रथमोच्चारितात्प्रत्ययः, एवं सति तस्यापत्यमित्यादौ सर्वनाम प्रथमनिर्द्विष्टमिति तत एव प्रत्ययः स्यात् नोपवादेः, नहि तल्लक्षणवाक्ये प्रथमनिर्द्विष्टमित्यत आह । 'तस्येति' । 'सामान्यमित्यादि विशेषलक्षणं,'^१ विशेषोपलक्षणमित्यर्थः । तस्यापत्यमित्यादौ हि विशेषा एव निर्द्विष्टमिष्टास्तेषां तु सर्वेषां प्रत्येकमुपादाने गौरवं स्याद्, एकस्योपादाने ऽनुपात्ताद्विशेषान्तरात् स्याद्व्याधिः संस्कृतमित्यादाविति, सर्वेषामुपलक्षणत्वेन तस्येत्यादिकमुपात्तम् । 'तस्योपवादेरिति' । न तु स्वयं कार्येतया, नहि तस्येत्यस्य सामान्यवचनस्य प्रकरणाद्यभावेन विशेषे ऽनवस्थितस्यापत्यं प्रति सम्बन्धिबि-
शेषप्रतिपादनेन सम्बन्धन्तरव्यवच्छेदाख्य उपकारः सम्भवति, सम्बन्धि-
सामान्यं त्वपत्यशब्दस्य सम्बन्धिशब्दत्वादेवावगतमतो यत्सूत्रे साक्षात्प्रथमोच्चारितं सामान्यवाचि न तस्मात्प्रत्ययो यस्माच्च प्रत्ययो न तत्सूत्रे साक्षात्प्रथमोच्चारितमिति अगत्या उपलक्षणगतं प्राथम्यमुपलक्ष्याणां विज्ञायते तदाह । 'तदीयं प्राथम्यं विशेषाणां विज्ञायतइति' । 'कम्बल-
उपगोरित्यादि' । यथापत्यशब्दस्य पूर्वपराभ्यां यथेष्टमभिसम्बन्धो भवति एवमणोपि सम्भाव्येतेति भावः । अत्र च प्रत्यये सत्यनर्थक-
स्यापि समुदायस्य तद्वितान्तत्वेन प्रातिपदिकसञ्जायामेकत्वाद्यभावेऽपि अत्रयैभ्य इव स्वादयः स्युः । ननु तस्यापत्यमिति श्रयमाणसम्बन्ध-
पेक्षायां विभक्तौ विज्ञायमानायां नात्र प्रसङ्गः, नैतदेवं, नहि लक्षण-
वाक्ये विभक्त्युच्चारणं सम्बन्धप्रतिपादनार्थं सामान्यस्य सम्बन्धासम्भ-
वात्, किं तर्हि षष्ठ्यन्तात्प्रत्ययविधयर्थमतथापि विशेषोपलक्षणद्वारेण
सम्बन्धः स्याद्, एवमपि ऋदुस्योपगोरपत्यमित्यादौ सापेक्षादपि स्यादेव,

१ विशेषलक्षणार्थमिति मुद्रितपुस्तके पाठः पदमञ्जर्यसंघतः ।

समर्थपरिभाषया तर्हि व्यवस्था भविष्यति, स्यादेवं, यद्वैतस्मात्सूत्रात्मा-
गेव सुबन्तात्तद्विज्ञा इति व्यवस्थितं स्याद्, इह तु व्याप्रातिपदिकाधि-
कारात् षष्ठ्यादिविभक्त्यर्थवृत्तेस्तत एव तद्विज्ञाः स्युः, सति त्वस्मिन्स-
म्बन्धप्रतिपत्तेर्विभक्त्यायत्तत्वात्सुबन्तादेव तद्विज्ञा भवन्ति, न चैवं सति
पदकार्यप्रसङ्गः, तथाहि । राजन्ये वार्चंश्च इत्यादौ भसञ्जयोपजातया
लुप्तविभक्त्याश्रयापि पदसञ्जा एकसञ्जाधिकाराद्वाधिष्यते, राजत्वं
राजतेत्यादौ तु प्रातिपदिकादप्युत्पत्तौ स्वादिष्विति पदसञ्जा भवत्येव,
ननु तद्विज्ञातुकि सर्वनामस्थाने दोषः, काश्यपेन प्रोक्तमधीयते काश्यप-
कौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः, हृन्दोब्राह्मणानीति तद्विषयतायां तद-
धीति तद्वेदेति द्वितीयान्तात्काश्यपिन्शब्दादुत्पन्नस्याणः प्रोक्ताल्लुकि
यद्यपि काश्यपिन इत्यादौ भसञ्जया लुप्तविभक्तिनिमित्ताया अपि पद-
सञ्जाया बाधाददोषः काश्यपिभ्यामित्यादौ तु भवत्येव पदसञ्जा,
तथापि काश्यपिनौ काश्यपिन इत्यादौ सर्वनामस्थाने भसञ्जाया अभा-
षालुप्तामन्तर्वर्त्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदसञ्जा स्यात् । न चासर्वना-
मस्थानइति प्रतिषेधः, किं कारणं, स्वादिष्विति या प्राप्तिस्तस्या एव
स निषेधः, एवं तर्ह्यसर्वनामस्थानइति विभज्यते प्रसज्यप्रतिषेधश्चाश्रीयते
तत्सामर्थ्यादनन्तरस्य विधिर्वैत्येतच्चाश्रीयते तेन सर्वनामस्थाने परतः पूर्व-
स्यावधेयां च यावतो पदसञ्जा स्वादिष्विति वा सुबन्तमिति वा सा
सर्वा प्रतिषेत्स्यते, यद्येवं राजा दण्डीत्यादौ सावपि न स्यात्, यच्च भ-
मित्यतोचीत्येतदसर्वनामस्थानइत्यत्रापेक्ष्यते, तेनाजादावेव सर्वनामस्थाने
सर्वा पदसञ्जा निषेत्स्यते सौ हलादौ स्वादिष्विति वा सुबन्तमिति
वा भविष्यतीत्यदोषः, तदेवं सत्यस्मिन् वचने सुबन्तात्तद्विज्ञे न कश्चि-
द्विष इति स्थितम् । अत एव पूर्वाहूतरां पूर्वाहूतमामित्यादौ
घकालतनेष्वित्यलुक् विधास्यते, ननु सत्यप्यस्मिन् स्वार्थकेष्वस्याध्यापा-
रात्कथं सुबन्तात्तरप् स्यात्, एवं तर्ह्यर्थक्रम एवायमीदृशो यदुत पूर्वं
विभक्त्या योगः पश्चात्तरपा, उक्तं हि प्रियकुत्सनादिषु ततः प्रवर्त्तते ऽसौ
विभक्त्यन्तइति, एवं च कृत्वा ऽलुग्विधानमप्युपपद्यते, यदि तु तदे-

बालुविधानं ज्ञापकं तस्यापत्यमिच्छेत् न विभक्त्यर्थमात्रे तात्पर्यं किं
 तु पञ्चादिविभक्त्यन्ता गवोपलक्षयितुमिष्टाः, इयाप्रातिपदिकाधिकारस्तु
 वृद्धादिविशेषणत्वेनैवापयुज्यतइति, तथा सति पदविधित्वात्ममर्थ-
 परिभाषयैव व्यवस्था सिद्ध्यति, किं चानभिधानादस्यामर्थं न भविष्यति
 नार्थं समर्थं चनेन, इदं तर्हि प्रयोजनं यदर्थोभिधानममर्थं तस्माद्व्या-
 स्यात्किं पुनस्तत्कृतवर्णानुपूर्वीकं पदं सौत्थितः वैतमागिरिति, अत्र
 सवर्णदीर्घत्वे कृते प्रत्ययो भवति सुउत्थित विद्वत्तमागइत्यस्यामव-
 स्यायां न भवति, यदि स्यात् सावुत्थितिः वायीत्तमागिरिति प्राप्नोति;
 वाणोदाङ्गं बलीय इति वृद्धिप्रमङ्गात् । तन्वन्तरङ्गत्वाद्वाणेषु कृतेषु
 प्रत्ययो भविष्यति, एवं तर्ह्येतदर्थं समर्थवचनं कुर्वेत्तत्र ज्ञापयति
 अस्तीयं परिभाषा 'अकृतव्यहाः पाणिनीयाः' कृतमपि शास्त्रं निव-
 र्त्तयन्तीति, व्युहः शास्त्रकार्यं तदन्तरङ्गत्वात्प्राप्तमपि पश्चादस्य
 निमित्तविघातो भविष्यतीति बुद्ध्या न कृतं येस्ते ऽकृतव्यहाः, एवंभूता
 भवन्ति पाणिनीया इत्यर्थः, कृतमपीत्यत्र घशब्दोऽध्याहार्यः, कृतमपि
 वा शास्त्रकार्यं निवर्त्तयन्ति. निमित्ताभाव उत्यत्यमानइत्यर्थः । तेन
 पपुष इत्यादि सिद्धं भवति, अत्रान्तरङ्गत्वात्पूर्वकृतोपीडागम एतत्परि-
 भाषावशांनिवर्त्तते पूर्वमेव वा न क्रियते, ततः शक्ति सम्प्रसारणे कृते
 घलादित्वादिडभावः । 'प्रथमान्तादिति' प्रथमानिर्द्विष्टादपत्यविशेष-
 वाचिनो देवदत्तादिगब्दादित्यर्थः । अन्यथा सास्य देवतेति यथा इन्द्रो
 देवतास्य ऐन्द्रः स्थानीपाक इति प्रथमान्तात् पत्यर्थं प्रत्ययो भवति,
 एवमिहापि स्यात्, देवदत्तो ऽपत्यमस्य देवदत्तिरुपगुरिति । 'वायहणं
 किमिति' । वृत्तिवाक्ययोर्व्यपेक्षैकार्थोभावजननादर्थमेदादेव बाध्य-
 बाधकभावो न भविष्यतीति प्रश्नः । 'वाक्यमपि यथा स्यादिति' ।
 तद्व्याया गोशब्देन गावीगब्दो निवर्त्तते सत्यामपि स्त्रीत्वप्रतिपत्तौ तथे
 हाप्यौपगवमानयेत्युक्ते य एवानीयते उपगोरपत्यमानयेत्युक्ते स एवेति
 प्रधानार्थाभेदादुक्त्या वाक्यं बाध्यतेति भावः । 'यद्वैवं समामवृत्तिस्त-

द्वितवृत्त्या बाधेति । यत्सोत्सर्गापवादौ विभाषा तत्रापवादेन मुक्ते
उत्सर्गा न प्रवर्ततइति राज्ञोनन्तरो राज्ञानन्तर इत्यादिषु सावकाशा
समासवृत्तिस्तद्वितवृत्त्या बाध्येत यथा दाक्षिरित्यण् प्रत्यय इजेति भावः ।
'एतदपीति' । समासवृत्त्याख्यं कार्यमित्यर्थः ॥

"प्राग्दीव्यतोण्" ॥ 'तेन दीव्यतीति वक्ष्यतीति' । यदि तस्ये-
दमनुकरणं प्राग्दीव्यतेरिति वक्तव्यं कथं प्राग्दीव्यतइति निर्द्वेषात् आह ।
'तद्वैकदेश इति' । भवति हि समुदायगुणीभूतस्याप्येकदेशस्य पृथक्कृ-
त्यानुकरणं यथाव्य वामीयमित्यत्रेति भावः । प्रत्यय इत्यादिवदणित्ये-
वाधिकारे सत्यत्र इजित्यादिनापवादप्रकरणेन विच्छिन्नस्याणस्तेन रक्तं
रागादित्यादिष्वर्थेषूपस्थानं न स्यात् तस्मादधिकारपरिमाणव्यापनार्थं
प्राग्दीव्यतइत्युक्तम् । 'त्रिष्वपि दर्शनैस्त्रित्यादि' । नन्वधिकारपक्षेपि
प्रतियोगमुपस्थानादत इज् अखेत्यणपि प्राप्नोति, परिभाषापक्षेपि
प्राग्दीव्यतीयाः प्रकृतयस्ताभ्यः सर्वाभ्योण् परिभाष्यमाणः केनापवाद-
विषये न स्यात्, एवं द्विधपक्षेपि सर्वत्र प्रसङ्गः, एवं मन्यते यदयं
पीलाया वेति सूत्रमारभते तज् ज्ञापयति नापवादविषयेण भवतीति
अन्यथा द्युच इति ठक् सिद्धः, अनेन चाणित्यनर्थकं तत्स्यादिति, उद-
श्वितोन्यतरस्यामिति विकल्पवचनमप्यस्मिन्नर्थे लिङ्गम् । वयं तु ब्रूमः ।
प्राग्दीव्यत इति नेदं दीव्यतीतिशब्दैकदेशस्य दीव्यच्छब्दस्यानुकरणं किं
तर्हि तत्रत्योऽर्था निर्द्वेष्यते दीव्यतोर्थात्प्रागिति, तत्र दिवेलंठि हने
ऽर्थादित्यनेन गम्यमानार्थत्वात्प्रयुक्तेनाप्यप्रथमान्तेन सामानाधिकरण्या-
न्लटः शत्रादेशः कृतः, तत्रावधेरर्थत्वात्प्रथमन्तोप्यर्था एव प्रतीयन्ते
सजातीयविषयत्वेन प्रसिद्धतरत्वात्प्रथमवधिमद्भावस्य, ततश्च प्राग्दी-
व्यतो येषांस्तेष्वेवास्य त्रिष्वपि पक्षेषु व्यापारः, तत्र समानर्थे प्रकृति-
विशेषादुत्पद्यमानोपवादो ऽयं बाधतइति सिद्धमिष्टम् ॥

"अश्वपत्यादिभ्यश्च" ॥ 'प्राग्दीव्यतीयेष्विति' । अपपरिबहि-
रश्चवः पञ्चम्येत्यव्ययीभावाद्भवार्थे वृद्धाच्छः, अव्ययानां भमात्रे इति
टिलोपो न भवति, लुङ्मुखस्वरोपचारा इति परिगणनात् । अत एवा-

ध्यास्यन्नपि न भवति, अमेहकृतमिन्नेभ्य इति परिगणनाद्वा, गणपति-
शब्दस्यात्र पाठाद्गणपत्यो मन्त्र इत्यपशब्दः । एतेन क्षेत्रपत्यं व्याख्या-
तम्, क्षेत्रपत्यं चरुं निर्वयेदिति तु छान्दसं, क्षेत्रपत्यं प्राशनन्तीति छन्दो-
घट्टणयः कुर्वन्ति ॥

“दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदार्णवः” ॥ पतिशब्दस्योत्तरपदश-
ब्देन बहुव्रीहौ कृते पश्चाद् द्वन्द्वो न तु द्वन्द्वस्योत्तरपदशब्देन बहुव्रीहि-
रित्याह । ‘पत्युत्तरपदाच्चेति’ । एतच्च प्रत्यासत्तेर्व्याख्यानाद्वा ज्ञभ्यते,
अदितियहयं तु तदुत्तरपदपरिग्रहार्थं स्यात्, नह्यदित्युत्तरपदं दित्युत्तर-
पदं भवति, पत्यन्तादिति नोक्तं बहुचूर्वाण्माभूदिति । ‘वाङ्मतिपितृ-
मतामिति’ । कुर्वन्दिषु मतिपितृमच्छब्दयोः पाठोऽपत्वार्यां भाषायामपि
ययो यथा स्यादिति, अनेन तु छन्दसि सर्वेष्वेव प्राग्दीव्यतीयेषु एयविधिः,
के चिद्वाक्यशब्दमपि तत्रैव पठन्ति, तेन याना वाच्या एते वत्सा इति
प्रयोगोपपत्तिः । ‘यमाच्चेति’ । यमशब्दोपि सूत्रे पठितव्य इत्यर्थः ।
‘एधिच्या जाजाविति’ । जाजोः स्त्रियां विशेष इत्याह । ‘पार्थिवी
पार्थिवीति’ । ‘स्याम् इति’ । बलवचनोयं, तस्य केवलस्य यदप्यत्यत्येन
योगो नास्ति जातादिना तु योगः सम्भवत्येव, सर्वेषु च प्राग्दीव्यतीये-
ष्वयं विधिः, तस्मादश्वत्याम इति भाष्योदाहरणादत्र तदन्तविधिर्भ-
वति । ‘अश्वत्याम इति’ । अश्वस्येव स्याम यस्येति बहुव्रीहौ अकार-
ष्टिलोपः, एषोदरादित्वात्सकारस्य तकारः । ‘लोमापत्ये बहुष्विति’ ।
बाह्वादिष्वयं पठतइतीञि प्राप्ते बहुष्वकारः, केवलस्यापत्येनायोगात्सा-
मर्थ्यात्तदन्तविधिः । ‘उडुलोमा इति’ । उडुनीव लोमान्यस्य, शूरा इव
लोमान्यस्येति बहुव्रीहिः, । ननु बाह्वादिलक्षणो इत्यपि कृते तस्य बहुच
इति लुकि सुबन्तादिजुत्यच इति प्रत्ययलक्षणो सुबन्तं पदमिति पद-
सञ्ज्ञायां नलोपेन सिद्धं, सिद्धत्वं नामेदमुडुलोमैः उडुलोमेभ्य इत्येवमादौ
सुबन्तविधौ नलोपस्यासिद्धत्वादिसादिर्न स्यात्, इजो लुगपि प्राच्यभरतगो-

आदन्यत्र न सिद्धाति, न वात्र पदसञ्जा, असर्वनामस्यानइति निषेधात् ।
यथा च प्रत्ययलक्षणैः प्राप्तायाः सुबन्तमित्यस्या अपि पदसञ्जायाः स
निषेधस्तथोक्तं पुरस्तात् । 'सर्वत्रेति' । नापत्यएव, यद्वा प्राग्दीव्यती-
येत्यत्र च, तेन गवा चरतीत्यत्रापि गव्य इति भवति । 'गोरूप्यमिति' ।
हेतुमनुष्येभ्योन्यतरस्यां रूप्यः, मयङ् वेति रूप्यमथौ । 'एयादय इति' ।
येन नाप्राप्तिन्यायेनाण एव एयादयोपवादा अणपवादैस्तु ठगादिभिः
सह सम्प्रधाराणायां परत्वान्तएव स्युरिति वार्त्तिकारम्भः, अर्थविशेषो
ऽपत्यादिलक्षणं निमित्तं यस्य सौर्ध्वविशेषलक्षणः, यस्तु तस्येदमित्यर्थ-
सामान्यलक्षणोपवादाः स परत्वाद्भवति, उष्ट्रपतिर्नाम पत्रं तस्येदमौष्ट्र-
पतं, पत्राध्वर्युपरिषदश्चेत्यञ् भवति न तु एयः । 'दित्तेरपत्यमिति' ।
अत्रेतश्चानिञ् इति ठङ् न भवति, डौलेय इत्यादावेव तु भवति ।
'धानस्यत्यमिति' । अचित्तादिलक्षणं ठङ् न भवति आपूषिकादावेव तु
भवति । 'कथं दैतेय इति' । 'अत्र तर्हीति' । गम्यमानत्वाच्च प्रयुक्तं, यदि
एयादयोर्थविशेषलक्षणादणपवादात्पूर्वविप्रतिषेधेन भवन्ति, कथं तर्हि
दैतेयः सिध्यतीत्यर्थः । 'दितिशब्दादित्यादि' । ननु प्रातिपदिकग्रहणे
लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणमिति डीषन्तादपि एय एव प्राप्नोति, तत्राह ।
'लिङ्गविशिष्टपरिभाषा चानित्येति' । अन्ये तु भाष्यवार्त्तिकयोः अनुक्तत्वा-
द्दैतेय इत्यसाधुरिति स्थिताः ॥

“उत्सादिभ्योञ्” ॥ 'तदपवादानां चेति' । इजादीनाम् । 'ब-
ष्क्यासइति' । बष्क्यशब्देऽजमुत्पादयति, असे, असमास इत्यर्थः । पूर्वा-
चार्यसंज्ञेयं, बाष्क्यः । असइति किम् । गोबष्क्यः, ग्रहणवता प्रातिप-
दिकेन तदन्तविधिप्रतिषेधादेवात्र न भविष्यति, ज्ञापनार्थं तु, एतञ् ज्ञाप-
यति भवत्यत्र तदन्तविधिरिति, किं सिद्धं भवति, धेनुशब्दोत्र पठ्यते
तदन्तादपि भवति अधेनूनां समूह आधेनवमिति । 'उदस्यानदेश-
इति' । उदस्यानशब्दोऽजमुत्पादयति देशे वाच्ये, औदस्यानो देशः, देशा-
दन्यत्र यदृच्छ्या कश्चिदुदस्थानः, तस्यापत्यमौदस्थानिः । 'पृषदंश-

इति । एषच्छब्दोऽत्रमुत्पादयति अंशे वाच्ये, पार्ष्णितांशः, अंशादन्यत्रा-
 गोव भवति । 'शैष्मी त्रिष्टुबिति' । शैष्मी देवता अस्या इत्यशेषार्थ-
 विश्रुतायामैत्सर्गिकोणव भवति, शैष्मी भवेत्यादिशेषविश्रुतायां तु चत्व-
 गोत्र सिद्धं, नक्षत्रेनात्रा शैषिकस्यागो बाधप्रसङ्गः, अर्थविशेषलक्षण-
 नामैव प्रत्ययानां ग्यादिभिर्बाधनात्, चत्वण तु शेषमात्रे विधानाच्चा-
 विशेषलक्षणः, कतान्तरप्राप्तत्वात्, कथं, कालाट्टञ् अणोपवादः तस्याप्-
 त्वण् । 'कुन्तश्चेह वृत्तं एह्यतइति' । यस्य त्रिष्टुत्रादयो विशेषाः । 'न
 वेद इति' । तेन वेदविषये ऽपि वृत्तेभिर्धये ऽत्रः प्रतिषेधादणव भवति
 शैष्मी त्रिष्टुबिति ॥

“स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्ज्ञौ भवनात्” ॥ ‘स्त्रीशब्दात्पुंशब्दाच्चेति’ ।
 स्व्यधिकारविहितानां टाबादीनां पुंसि सञ्ज्ञायां घ इत्येतदधिकार-
 विहितानां च प्रत्ययानां ग्रहणं न भवति, स्त्रीपुंशब्दयोरस्वरितत्वात्,
 नापि स्त्रीपुंसाथैग्रहणं, स्वरूपं शब्दस्येति वचनात् । ‘पौंक्षपिति’ ।
 संयोगान्तस्य लोप इति पुंशब्दसकारस्य लोपः, तत्र कर्त्तव्ये ऽनुस्वारस्या-
 भिदृत्वात्सकारस्य संयोगान्तत्वात् । अत एव संयोगान्तलोपप्रसङ्गा-
 द्ज्ञेवोभाभ्यां न विधीयते, एवं हि मा भूवञ् मा च भूत्वञ् अञ्
 प्रकृतस्तत्रैतावदस्तु स्त्रीपुंसयोर्नुञ्चेति, तत्रायमप्यर्थः, स्त्रीणी पौंक्षी
 अञ् इतीकारः सिद्धो भवति, नैव शङ्क्यं स्त्रीणाः पौंक्षाः, यत्रत्रोश्चेति
 बहुषु लुक् प्राप्नोति, इह च स्त्रीणानां सङ्घः सङ्घाङ्कनत्वेणव्यत्रिञ्-
 मित्यण् प्राप्नोति, नैव टोपः । उभयत्रापि गोत्रइति वर्त्तते, नौकिकस्य च
 गोत्रस्य ग्रहणं अपिप्रजनं च लोके गोत्रमुपवर्त्तन्ति, न च स्व्यर्पिनापि
 पुंशब्दवाच्यं सामान्यं, नस्तद्वितदति टिलोपस्तर्हि प्राप्नोति, प्रकृत्यैका-
 जिति प्रकृतिभावा भविष्यति, इष्टेमेवस्विति तत्रानुवर्त्तते, एवं तर्हि
 नुविधानसामर्थ्याट्टिलोपो न भविष्यति, यं विधिं प्रत्युपदेशानर्थकः स
 विधिर्बाध्यते यस्य तु विधिर्निमित्तमेव नासौ बाध्यते तत्र टिलोपार्थमेव
 नुविधानं स्यात् स्त्रीशब्दस्यापि नुगेव लोपस्य निमित्तम्, अथवा
 यस्येति लोपात्परत्वादृष्टिः स्यात्, यथा श्रीद्वैवता अस्य आयं हविर्विति,

तस्माद्वयान्यासमेवास्तु । 'योगापेक्षं चेति' । स्त्रीपुंसाभ्यामित्ययं
योगो वत्यर्थे न प्रवर्ततइत्येवं ज्ञापनशरीरं न तु लुङ् वत्यर्थे न प्रवर्त-
तइत्यर्थः । कथं स्त्रीत्वं स्त्रीता पुंस्त्वं पुंस्ता चेति, आ च त्वादित्यत्र
परिहारो भविष्यति ॥

"द्विगोर्लुगनपत्ये" ॥ 'द्विगोरिति षष्ठीति' । आनन्तर्यलक्षणायां
तु पञ्चम्यां पञ्चकपालस्य पुरोडाशस्येदं, तस्येदमित्यण्, पाञ्चकपाल-
मित्यत्रापि प्राप्नोतीति भावः । षष्ठ्यापि यद्व्यानन्तर्ययोगे स्यात्स एव दोषो
यः पञ्चम्यां, ततश्च षष्ठ्याश्रयणमनर्थकं स्यादिति मत्वाह । 'द्विगोर्यः
सम्बन्धी निमित्तत्वेनेति' । यस्य तद्वितस्यार्थं तद्वितार्थोत्तरपदेति
द्विगुविहितः स निमित्तत्वेन सम्बन्धी । 'पञ्चकपाल इति' । संस्कृतं
भक्षा इत्यत्रार्थे विवक्षिते द्विगुः, अण्, तस्य लुक्, । 'द्विवेद इति' ।
तदधीते तद्वेदेत्यत्रार्थं द्विगुः । 'द्वैदेवदत्तिरिति' । द्वयोर्देवदत्तयोर-
पत्यम्, अत इङ्, अपतनादपत्यं, यस्य पित्रादिषु द्वौ देवदत्तसञ्जकौ
स एवमुच्यते, एकस्य वा दत्तपुत्रोऽन्यस्य साक्षात्पुत्रः । 'द्विगुनिमित्त-
विज्ञानादिति' । द्विगुनिमित्तस्य प्रत्ययस्य लुग्विधानादित्यर्थः । 'पञ्च-
कपालस्येदमिति' । अत्र संस्कृतार्थे यः प्रथममुत्पन्नः प्रत्ययः स एव
द्विगोर्निमित्तं न द्वितीय इति तस्य लुङ् न भवति । 'अथ वेत्यादि' ।
पूर्वं लुगित्यनेनोपस्थापितस्य प्रत्ययस्य द्विगोरित्यनेन वैयधिकरणमा-
श्रित्य व्याख्यातम्, इदानीं सामानाधिकरण्यमित्येष विशेषः । कथं पुन-
द्विगोरेव लुग् लभ्यतइत्याह । 'द्विगोरिति स्थानषष्ठीति' । 'ननु
चेत्यादि' । प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप इति प्रत्ययादर्शनस्य लुगादयः
संज्ञा विहितास्ततश्च द्विगोर्लुगिति नैव समञ्जमिति भावः । 'उपचा-
रेण त्वित्यादि' । अतस्मिंस्तदूपारोप उपचारः, परत्र परशब्दप्रयोगो
लक्षणा, उपचारेण निमित्तेन या लक्षणा तयेत्यर्थः । अन्ये तूपचारेणे-
त्यस्य विवरणं लक्षणयेत्येतदित्याहुः । अद्विगुरूपस्तद्वितो द्विगुरूपतया
यथा बुद्ध्या विवक्ष्यते सा लक्षणा । 'उपचार एवेति' । उपचारस्य निब-
न्धनं द्विगुनिमित्तत्वं, भवति हि कारणे कार्योपचार आयुर्धृतमिति यथा ।

‘द्विगुनिमित्तकोपि तर्हीत्यादि’ । कार्यपि कारणवदुपचारो दृश्यते यथा पुरातनं कर्म भुञ्जतइति, ततश्च द्विगुर्यस्य प्रत्ययस्य निमित्तं सोपि गुणकल्पनया गुणशब्देनोपचारस्य निमित्तभूतो धर्मो विवक्षितः, तन्निमित्ता कल्पना गुणकल्पना सा पुनरुपचारात्मिका बुद्धिः, तथा कस्माच्च द्विगुरित्युच्यते, अर्हत्येवायमेवंविधं वचनमित्यर्थः । परिहरति । ‘न तस्येति’ । तत्र हि सन्नित्तमपि द्विगुत्वं प्रत्ययोत्पत्तौ नोपयुज्यते, नह्यसौ द्विगोरित्येवं विधीयते किं तर्हि प्रातिपदिकादित्येवमित्यर्थः । ‘इतरास्त्विति’ । प्रत्ययः, यस्य लुग्दर्शितो द्विगुत्वस्यैव निमित्तमिति तदर्थे हि समासो विधीयते तस्यैव च द्विगुसज्जा तेनासौ द्विगुत्वस्यैव निमित्तम् । ‘यद्येवमित्यादि’ । उभयोरपि पतयोरेतज्जोक्तं, नह्यत्र द्विगोर्निमित्तत्वेन सम्बन्धी तद्धितः, नापि द्विगुनिमित्तत्वादुपचारेण तदुपदेशार्हः, अत्र हि समाहारे द्विगौ निष्पत्ते पश्चात्तद्धित उत्पद्यते, स च द्विगोर्निमित्तं न भवतीति चोद्धार्यः । परिहरति । ‘नैवात्र तद्धित उत्पद्यतइति’ । अनभिधानादिति भावः । यदि नोत्पद्यते कथमस्मिन्नर्थे पञ्चकपाल इति रूपसिद्धिस्तस्मादुत्पद्यतएवात्र तद्धितस्तस्य च लुग्विधेय इत्यत आह । ‘त्रैशब्दं हीति’ । त्रय एव शब्दास्त्रैशब्दं, चातुर्वर्ण्यंदिः । इह ह्यस्माभिस्त्रैशब्दं साध्यं तच्च पञ्चकपालीशब्दात्तद्धितोत्पत्तिमन्तरेणापि सिद्धतीति नास्मात्तद्धित उत्पद्यते, तानेव त्रीन् शब्दान्दर्शयति । ‘पञ्चसु कपालेष्विति’ । ‘द्वयोः षड्योरिति’ । यः समाहारे द्विगुः यश्च तद्धितार्थं द्वावपि तौ समाहारे तयोरैकेन पूर्वण विग्रहः । अवधारणमत्र द्रष्टव्यं विग्रह एव न तद्धितोत्पत्तिरनभिधानात्, अपरस्मात्पञ्चकपालादुत्पत्तिः, सोयमव्यविक्रयाय उच्यते, तद्यथा अवेर्मांसमित्यविशब्देन विग्रह एव, अविक्रगब्दादुत्पत्तिर्विशब्दं च आविक्रमविक्रस्य मांसमिति । ‘सा च व्यवस्थितविभाषेति’ । एवं कृत्वा त्रैविद्याः पाञ्चनदं षाट्कुल इत्यत्रापि लुङ् न भवति, अथ प्रा ज्ययथा विद्या त्रिविद्या शाक्यार्थिवादि, स्तामधीति त्रैविद्याः, त्रिद्यात्रयरूपस्य च समुदायस्य विद्यात्वं विवक्षितमित्यर्थभेदाभावः । पञ्चानां तर्हीनां समा-

हारः पञ्चनदं, नदीभिश्चेत्यव्ययीभावः, गोदावर्याश्च नद्याश्चेत्यच् समासान्तः, पञ्चनदे भवः पाञ्चनदः । अथ वा ऽभिधाने हि सति समाहारद्विगोरपि भवत्येव तद्वितः, तथा षण्णामादिपुरुषाणां कुलानि तत्र भवः षाट्कुलः, अव्यविक्रन्यायाच्च तिस्रो विद्या अधीति पञ्चसु नदीषु भवः षट्सु कुलेषु भव इति विग्रह एव न द्विगुर्नापि तद्वितः ॥

“गोत्रे ऽलुगचि” ॥ पूर्वत्रोत्तरत्र च लुग्विधानादिह नञ् प्रशि-
ष्यते । ‘यस्कादिभ्यो गोत्रइत्यादिनेति’ । प्राग्दीव्यतइत्युपजीवनाय
तु प्रकरणोत्कर्षः, प्रसज्यप्रतिषेधश्चायम् । ‘अचीति’ । यद्वेषा परसप्रमी
स्याच्छविधावितरेतराश्रयं प्राप्नोति, गार्गीया वात्सीया इतिच्छे परतो
ऽलुका भवितव्यमलुकि च सति वृद्धत्वाच्छेन भवितव्यमिति । ननु नच्छे
परतो ऽलुग्विधीयते किं तर्ह्यजादिमात्रे, तत्र य एवाजादिः सम्भवति
तत्रैवालुग्विधीयति, तद्वथा गर्गाणां क्वात्राः, प्राग्दीव्यतोण, तत्र परतो
यजजोश्चेति प्राप्तस्य लुकः प्रतिषेधे गर्गा इति भवति, यश्चयत्र सत्य-
सति वा लुकि नास्ति विशेषः, आपत्यस्य च तद्वितइति यलोपविधा-
नात् । इह त्वत्रेपत्यानि बहूनि इतश्चानिज इति ठको ऽत्रिभृग्विति
लुकि कृते ऽत्रीणां क्वात्रा इत्यणि परतः प्रतिषेधे सति आत्रेया इति
भवति, असति तु प्रतिषेधे आत्रा इति स्यात् । स्यादेतदेवं यदि लुप्तस्य
प्रत्ययस्य पुनः प्रादुर्भावो विधीयेत, इह त्वलुगिति वचनाल्लुकः प्रति-
षेधो विधेयः, प्राप्तस्य चानभिनिवृत्तस्य प्रतिषेधेन निवृत्तिः शक्यते
कर्तुं, ततश्च यद्वत्राणजादिरभिप्रेतः स्यात् प्रागेव लुकः प्रवृत्तिरभ्युप-
गन्तव्या ऽन्यथा वृद्धत्वाच्छे एव स्यात्, लुकं चेत्प्रवृत्तः प्रतिषेधः किं
करिष्यति, यो हि भुक्तवन्तं प्रति ब्रूयान्मा भुङ्क्थथा इति किं तेन कृतं
स्यात्, तदिहाजादौ प्रवृत्ते ऽलुका भवितव्यमलुकि च प्रवृत्ते ऽजादिना
भवितव्यमिति व्यक्तमितरेतराश्रयं, विप्रतिषेधात्सिद्धं, लुकोवकाशो यत्र
प्राग्दीव्यतीयार्था न विवक्ष्यन्ते गर्गा वत्सा इति, कृस्यावकाशः शालीयः

इति, गार्गीय इत्यत्रोभयप्रसङ्गे परत्वाच्छे भविष्यति, तत्र परतो लुकः प्रतिषेधः, अन्तरङ्गा लुक् अपत्यबहुत्वमात्रापेतत्वात्, बहिरङ्गशब्दः प्राग्दी-
 व्यतीयार्थापेतित्वात्, अन्तरङ्गबहिरङ्गयोश्चायुक्तो विप्रतिषेधः, एवं तर्ह्यु-
 च्यते चेदमजादौ परतो लुग्भवतीति, यदि च तावत्येव निमित्तमस्तीति
 बहुत्वमात्रापेतो लुक् प्रवर्त्तत प्रतिषेधविधानमनर्थकं स्यादिति यावत्प्रा-
 ग्दीव्यतीयाज्जादिनात्पद्यते तावन्नुङ्ग प्रवर्त्ततइति कल्प्यते, ततश्च वृद्धत्वा-
 च्छे सति लुकि प्रतिषिद्धे गार्गीय इति सिद्धमिष्टं, विषयसप्तम्यां तु न किं
 चिद्व्यवसाध्यं, गर्गाणां ह्यत्रा इत्यर्थविवक्षायामजादौ प्रत्यये विवक्षिते
 बुद्धिस्थेनुत्पन्नएव लुकि प्रतिषिद्धे वृद्धत्वाच्छे भवतीति, तस्माद्विष-
 यसप्तमीमाश्रित्याह । 'प्राग्दीव्यतीये प्रत्यये विषयभूतइति' । 'खा-
 रपायणीया इति' । खरपस्यापत्यानि बहूनि नडादिभ्यः फक्, तस्य
 यस्कादिभ्यो गोत्रइति प्राप्तस्य लुकः प्रतिषेधः । 'कौवलं बादरमिति' ।
 कुवलीबदरीशब्दौ गौरादिर्डीपन्तावन्तादात्तौ, ताभ्यां फले विकारे ऽनु-
 दात्तादेश्चेत्यत्र, तस्य फले लुगिति प्राप्तस्य लुकः तस्येदमित्यर्थविवक्षायाम्
 प्रतिषेधो न भवति, तेनावृद्धत्वाद्गोत्रे भवति । 'गर्गरूप्यमिति' । यद्य-
 च्चालुकं स्याद् गार्गरूप्यमिति स्यात् । 'गर्गीयमिति' । तस्मैहितमिति
 प्राक् क्रीताच्छः, विषयसप्तम्या एव फलं दर्शयति । 'गोत्रस्येत्यादिः' । 'गो-
 त्रस्येति' । गोत्रप्रत्ययस्येत्यर्थः । 'बहुषु लोपिन इति' । बहुष्वर्थेषु विधी-
 यमानलोपस्येत्यर्थः । 'बहुवचनान्तस्य प्रवृत्ताविति' । प्रवृत्तिरर्थान्तरमङ्गा-
 न्तिः, बहुवचनान्तस्य सतार्थान्तरमङ्गान्तौ सत्यामित्यर्थः । 'द्वैक्योरिति' ।
 यत्रार्थान्तरे सङ्गान्ततस्य द्वित्वैकत्वयोः सन्नोरित्यर्थः, सा चार्थान्तरमङ्गा-
 न्तिस्तदन्ताद्यदा यूनं प्रत्यय उत्पद्यते तस्य च लुक् क्रियते तदा भवति,
 लुप्ते हि युवप्रत्यये ष्फलतिरेव तदर्थमाहेति भवति सङ्गान्तिः । 'विदाना-
 मिति' । विदस्यापत्यानि बहूनि, अनृष्यानन्तर्यं विदादिभ्योञ्, विदा-
 स्तेषां विदानामपत्यं युवा युवानो वेति विवक्षायामत इति इतित्र विव-
 क्षिते गोत्रप्रत्ययस्याजो लुकः प्राप्तस्यानेन प्रतिषेधः, इजो एयत्त्रिया-
 र्थेति लुकि बैदः बैदाविति भवति, परमपत्नीपते त्वलुङ्ग प्राप्नोति

अजादेरभावात् । इदमिह सम्प्रधार्यम् इजो लुक् क्रियतामयं वा ऽलु-
 गिति, परत्वादलुग्भवति, इजो लुङ्ङित्यः, कृतेष्वस्मिन्नलुकि प्राप्नोति
 अकृतेषु, अयं पुनरनुगनित्यः, नहीजो लुकि कृते प्राप्नोति
 अजादेरभावात्, प्रत्यलक्षणेन भविष्यति, वर्णाश्रये नास्ति प्रत्यलक्षणं,
 नात्र वर्णो निमित्तं किं तर्हि प्रत्ययस्तस्यैव तु विशेषणमचीति,
 तत्र यथा हलादौ पिति सार्वधातुके विधीयमानस्तृणह इम् अतृ-
 णेडित्यत्रापि भवति प्रत्ययलक्षणेन तद्वदिहापि भविष्यति, सत्यम्,
 विषयसप्तमीपक्षे नैवं क्लेशानुभवनीयो भवति, ननूभयोरपि पक्षयोरिहापि
 न प्राप्नोति बिदानामपत्यं बहुवो माणवका बिदा इति, नैष दोषः । द्वे अत्र
 बहुवो युवबहुत्वं गोत्रबहुत्वं च, तत्र गोत्रबहुत्वाश्रयस्य लुक्ः प्रतिषेधोस्तु
 पुनर्युवबहुत्वाश्रयो लुग्भविष्यति, लुग्विधौ हि लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणं
 युवापि च लोके गोत्रमित्युपचर्यते गार्ग्यायणोस्मि गोत्रेणेति । अथ युवब-
 हुत्वाश्रयस्यापि लुक्ः पुनः प्रतिषेधः कस्माच्च भवति, विषयसप्तम्यां
 तावद् यस्यामवस्थायां लुक् प्राप्तः तस्यामवस्थायां यदि कश्चिदजादि-
 र्विषयभूतस्ततो ऽलुका भवितव्यमिह चाजादिविषयभूत उत्पन्नो लुप्तश्च,
 पश्चाद्भुवसु बहुषु सङ्क्रान्तौ सत्यां लुक् प्राप्तः, न चास्यामवस्थायां
 कश्चिदजादिविषयभूत इति पुनर्लुङ् भविष्यति, परसप्तम्यामपि गोत्रे
 वर्तमानस्यालुग्भवत्यजादौ परतः, कस्मिन्नजादौ, प्राग्दीव्यतो येषांस्तेषु
 योजादिस्तस्मिन्नित्युच्यमाने यस्मिन् गोत्रे वर्तमानस्य लुक् प्राप्तस्तद्वृत्ति-
 रिक्ते प्राग्दीव्यतीयेर्धे योजादिस्तत्रेति गम्यते, इह चेज्जवाजादिस्तदर्थं
 एव च गोत्रे लुगिति प्रतिषेधो न भविष्यति, यद्वा समर्थानां प्रथमादित्यतः
 प्रथमादिति वर्तते, तच्च षष्ठ्यन्तं विपरिणम्यते, प्रथमार्थवृत्तित्वाच्च प्राथम्य-
 माश्रीयते, तदयमर्थो भवति, प्रथमस्य गोत्रप्रत्ययस्य लुङ् भवति, यस्मिन्नर्थे
 प्रत्यय उत्पन्नस्तत्रैवार्थे वर्तमानस्य यो लुक् प्राप्तः स न भवति, इह तु
 द्वितीयमर्थमुपसङ्क्रान्तस्य लुक् प्राप्त इति न प्रतिषिध्यते, अत्रशयं चैतदेवं
 विज्ञेयं प्रथमस्य लुङ् प्रतिषिध्यतइति, अन्यथा अत्रैरपत्यमितश्चानिजं
 इति ढक्, तस्यापत्यं बहुवो युवानः, अत इजो एयत्त्रियर्षेति लुङ्,

ढकोत्रिभृग्विति लुक्, अत्रयः, भरद्वाजशब्दाद्विदास्यञ्, तदन्ताद्युवबहुत्वे
 इजो लुक्, अजो यजजोश्चेति लुक्, अत्रयश्च भरद्वाजाश्च अत्रिभरद्वा-
 जास्तेषां मैथुनिकाद् द्वन्द्वाद्गुन्, अत्रिभरद्वाजिकाः, तत्रालुक् प्राप्नोति,
 कुत्सादृष्यणोत्रिभृग्विति लुक्, कुशिकादजन्तादिजो लुकि कुशिकाः,
 कुत्सकुशिकिका वसिष्ठकश्यपिका भृग्वङ्गिरसिकाः, अथ वा गोपवना-
 द्विषु गर्गभार्गविकाशब्दः पठ्यते, भार्गवशब्दस्य युवबहुत्वे प्राप्तस्य लुक्ः
 प्रतिषेधार्थं तत्रियमार्थं भविष्यति, एतस्यैव द्वितीयमर्थमुपसङ्गान्तस्यालु-
 भवतीति, नैव वा पुनरत्र युवबहुत्वे वर्त्तमानस्यालुक् प्राप्नोति, किङ्का-
 रणं, गौत्रइत्युच्यते, यद्यप्यपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रं दृश्यते, इह
 तु पारिभाषिकस्य ग्रहणं युवशब्दसाहचर्यात्, अन्यथा गोत्रयुवसंज्ञयोः समा-
 वेशे यो ऽयं दोषो वक्ष्यते शालङ्केरपत्यं यजिजोश्चेति फक्, तस्य पैला-
 द्विभ्यश्चेति लुक्, शालङ्केर्यनशब्दात् इत्यर्थविवक्षायां गोत्रे ऽलुगचीत्यलुक्
 प्राप्नोति, ततश्च यूनं लुगित्यस्य फक्फिजोरन्यतरस्यामिति विकल्पितत्वा-
 त्यत्ते फक्ः श्रवणं प्राप्नोतीति स तदवस्य एव स्यात्, असमावेशेपि यूनो लौ-
 किकगोत्रत्वादेवालुक् प्रसङ्गात्, तदेवं गोत्रस्य बहुषु लोपिन इत्यादि न
 वक्तव्यमिति स्थितम् । 'एकवचनद्विवचनान्तस्येत्यादि' । एकवचनान्तस्य
 गोत्रप्रत्ययस्य द्विवचनान्तस्य वा बहुष्वर्थे युवसंज्ञकेषु प्रवृत्तौ सङ्गान्तौ सत्या-
 मित्यर्थः । 'लोप इति' । लुगित्यर्थः । लोपे हि प्रत्ययलक्षणेन वृद्धिस्वरप्रसङ्गः ।
 ननु च युवबहुत्वाग्रयो यजजोश्चेत्येवात्र लुक् सिद्धस्तत्राह । 'नह्य-
 त्त्राञ् बहुषूपत्र इति' अज्यो बहुषु यज्यो बहुष्विति विज्ञायमाने लुक्
 सिध्यतीत्यर्थः । यदा त्वजन्तं यद्बहुषु यजन्तं यद्बहुष्विति विज्ञायते तदा-
 जन्तस्य बहुषु युवसु वृत्तेलौकिकस्य च गोत्रस्यापत्यमात्रस्य तत्र ग्रहणा-
 त्सिद्ध एव लुक्, तथा च गार्ग्यश्च वात्स्यश्च वाज्यश्च गर्गवत्सवाजाः,
 वैदश्च और्वश्च भारद्वाजाश्च बिदैर्वभारद्वाजा इति यजजोश्चेतिवे-
 लायामबहुत्वेपि द्वन्द्वे युगपदधिकरणवचनतया यजन्तस्याजन्तस्य च बहु-
 त्वोपजनाल्लुभभवति, न चैवं काश्यपस्यैकस्य बहूः प्रतिश्रुतयः काश्य-
 पा इति इवे प्रतिश्रुताविति विहितस्य कनो जीविकार्थं चापण्यइति

लुप्, हरीतक्यादिषु व्यक्तिरिति वचनाद् युक्तवद्वचनाभावे ऽजन्तस्य बहुषु वृत्तेर्लुक् प्रसङ्गः, गोत्रबहुत्वे लुविधानात् ॥

“यूनि लुक्” ॥ अत्रापि यद्यचीति परसप्तमी स्यात् प्रत्ययस्य यथेष्टप्रसङ्गः, युवप्रत्यये श्रूयमाणे यः प्राप्नोति स तावत्कर्तव्यस्तत्र कृते युवप्रत्ययस्य लुकि तस्य श्रवणं प्राप्नोति, विषयसप्तम्यां त्वजादौ विषयभूतएव युवप्रत्यये लुप्ते यो यतः प्राप्नोति ततः सस भवतीति सिद्धमिष्टम्, । एतच्चोदाहरणेषु व्यक्तीकरिष्यते, तदेतदाह । ‘अजादौ प्रत्यये विवक्षितइत्यादि’ । ‘इजश्चेत्यण् भवतीति’ । परसप्तम्यां तु वृद्धाच्छ एव स्यात् । ‘फेश्चु चेति’ । ‘यमुन्द्रश्च सुयामा च वार्ष्पायणिः फिजः स्मृता’ इति परिगणनं भाष्यकारेण नाश्रितं तेन तैकायनेरपिच्छे भवति । ‘तैकायनीया इति’ । अत्र परसप्तम्यामप्युदाहारः, एयत्रि-यार्षजित इत्यत्र तु वृत्तिकारेणाणो लुगुदाहृतस्तेकायनिः पिता तैकायनिः पुत्र इति, स परिगणनाश्रयेण द्रष्टव्यः, तदा च तैकायनीया इत्यनुदाहरणम् ‘कापिञ्जलादा इति’ । अत्रापि परसप्तम्यां वृद्धाच्छः स्यात्, एवं ग्लौचुकायना इत्यत्रापि द्रष्टव्यम्, इह तु औपगवैर्यून-शकात्रा इजो लुकि वृद्धाच्छे भवति, परसप्तम्यामिजश्चेत्यण् स्यात्, नैतदस्य योगस्यादाहरणं, कथम्, इजश्चेत्यत्र गोत्रइति वर्तते, तेनेजं विशेषयिष्यामः, गोत्रे य इज् विहित इति, पारिभाषिकं च गोत्रं गृह्यते, कथं, कण्वादिभ्यो गोत्रइत्यत्र तावद्गोत्रे कुञ्जादिभ्य इत्यस्य गोत्रस्यानुवादः कण्वादिभ्यो गोत्रे यः प्रत्ययो विहितस्तदन्तादण् भवतीति, तत्र च पारिभाषिकं गृह्यते तस्यैव चानुवादः, तदेव चेजश्चेत्यत्राप्यनुवर्तते तत्कृतो युवप्रत्ययान्तादणः प्रसङ्गः, अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्, अन्यथा लुप्तेपीजि प्रत्ययलक्षणेनाण् स्यादेव, इमानि तर्ह्यत्रोदाहरणानि यत्खच्छान्ताः, यत्, राजश्वशुराद्वत् श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः, तस्यापत्यं श्वाशुरिस्तस्य छात्रा इति लुकि प्राग्दीव्यतोण् भवति श्वाशुरः, अन्यथा वृद्धाच्छः स्यात्, कुलात्खः कुलीनः, तस्यापत्यं कौलीनिः, तस्य छात्रा, इजो लुकि कौलीनः, स्वसुशुः, स्वस्त्रीयः, तस्यापत्यं

स्वामीयः, तस्यं ह्यत्रा इजो लुकि स्वामीयाः, नैतान्युदाहरणानि ।
 अब्राह्मणाद् गोत्रमात्राद्भुवप्रत्ययस्योपमङ्ग्यानमितीजो लुकि कृते श्वशुर्यः
 पिता श्वशुर्यः पुत्रः, कुलीनः पिता कुलीनः पुत्रः, स्वामीयः पिता
 स्वामीयः पुत्र इति भवतिव्यं, न च ब्राह्मणगोत्रे कश्चिदवृद्धिनिमित्तः
 प्रत्ययः सम्भवति यत इजि कृते कः प्राप्नोति, वृद्धिनिमित्ते तु गोत्र-
 प्रत्यये नास्ति विशेषः, यतः श्रूयमाणेपीजिच्छेन भवितव्यं लुप्तेपि
 तस्मिन् गोत्रप्रत्ययान्तस्यापि वृद्धत्वाच्छेन भवितव्यं, तद्वथा औप-
 गवीया इति, तदेवमिज उदाहरणं न सम्भवतीति स्थितं, यदि तु
 पूर्वसूत्रे लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणं तदा स्यादेवेज उदाहरणम्, तथाहि ।
 श्वशुर्यादिभ्य उत्पन्नस्येजः सत्यप्यौपसङ्ख्यानिके लुकि तस्य प्राग्दीञ्-
 तीयविवक्षायां गोत्रे ऽलुगचीति प्रतिषेधेन पुनः प्रादुर्भावादिसाश्रयो
 वृद्धाच्छः स्यात्, यदि तस्य यून लुगिति लुङ् क्रियेत, अतेमस्मादिज
 उदाहरणत्वप्रतिषेधादप्यवशीयते परिभाषिकं गोत्रं पूर्वसूत्रे भाष्य-
 कारस्याभिमतमिति । किमर्थं पुनरिदमुच्यते - यावत् यूनोपि गोत्ररूपे
 विवक्षिते गोत्रप्रत्ययेनाभिधानात्तन्निबन्धन एव प्रत्ययो भविष्यति, अर्थ-
 प्रकारणादिना च युवविशेषसिद्धिः, अवश्यं चार्थप्रकरणादिनैव विशे-
 षोवसातव्यः, आरभ्येप्यस्मिन्सूत्रे शब्दस्य साधारणत्वात्, नहि ज्ञायते
 किं भागवित्तेश्चात्रा भागवित्ता आहो स्वद्भागवित्तिकस्येति, यदा
 तर्हि विशेषविवक्षा तदापि भागवित्ता इत्येव यथा स्याद्भागवित्तिकीया
 इति जातु चिन्मा भूदित्येवमर्थमिदम् ॥

“फक्फिजोरन्यतरस्याम्” ॥ किमर्थमिदं यावता युवरूपविव-
 क्षायां गार्ग्यायणीया इति गोत्ररूपविवक्षायां च गार्गीया इति, अर्थप्रक-
 रणादिना च विशेषावसायः, आरभ्येप्यस्मिन्सूत्रेयमाश्रयणीयो गार्गी-
 या इति शब्दस्य साधारणत्वादित्यत आह । ‘पूर्वसूत्रेणेति’ । यून
 लुगित्येतदारम्भणीयमित्युक्तं तस्मिंश्चारभ्यमाणे यदीदं नोच्येत फक्-
 फिजोरपि नित्यमेव लुक् स्यात्ततश्च गार्ग्यायणीया इति न स्यात्तस्मा-
 द्दिदमप्यारम्भणीयमित्यर्थः ॥

“तस्यापत्यम्” ॥ ‘अर्थनिर्द्देशोयमिति’ प्रकृत्यर्थविशिष्टः षष्ठी-
 र्थोऽपत्यरूपः प्रत्ययार्थेनेन निर्द्देश्यतइत्यर्थः । तेन समर्थविभक्तेरपि
 षष्ठी निर्द्देशो दर्शित एव । ‘पूर्वरुत्तरैश्चेति’ । पूर्वैस्तावदण्णादिभिः
 सम्बद्ध्यते ऽसंयुक्तविधानात्, अन्यथा तस्यापत्यमत इजित्येकं योगमेव
 कुर्यात्, यतस्त्वसंयुक्तं करोति ततो ज्ञायते पूर्वैःसम्बध्यतइति । उत्तरै-
 रपि सम्बध्यते स्वरितत्वात्साक्राद्गुत्वाच्च तेषाम् । ‘तस्येति षष्ठीसम-
 र्थादिति’ । तस्येति सामान्यं षष्पन्तविशेषोपलक्षणार्थं, समर्थानामिति
 च निर्द्धारणे षष्ठी, तत्र तुल्यजातीयस्य निर्द्धारणादयमर्थः सम्पद्यते
 षष्पन्तात्समर्थादिति । ‘अपत्यमित्येतस्मिन्नर्थेइति’ । प्रथमान्तस्याप-
 त्यशब्दस्यान्यथासम्बन्धानुपपत्तेरयमध्याहारो लब्धः । ‘यथाविहितमि-
 ति’ । यथार्थेयदव्ययमिति वीप्सायामव्ययीभावः । प्राग् द्वाव्यतोष्णि-
 त्यादिभिर्था यतो विहितः स तस्मादित्यर्थः । इह तस्येति पुंनपुंसकयो-
 रन्यतरेणायं निर्द्देशः क्रियते एकवचनान्तेन च, तेन लिङ्गान्तरादुच-
 नान्तराच्च न स्यात् सुमातुरपत्यं सौमात्रः, क्षत्रस्यापत्यं क्षात्रिः,
 उपगोरपत्यमौपगव इति । अपत्यमिति चैकवचनेन नपुंसकेन च
 निर्द्देशः क्रियते तेनैकस्मिन्नेवापत्ये स्याच्च द्वयोर्नापि बहुषु, नपुंसकएव
 स्याच्च स्त्रीपुंसयोरित्याशङ्क्याह । ‘प्रकृत्यर्थेत्यादि’ । प्रकृत्यर्थे उपवा-
 दिविशेषस्तस्येत्यस्य विशेषोपलक्षणार्थत्वात् । ‘अपत्यमात्रं चेति’ । मात्र-
 शब्दोयं लिङ्गवचनयोर्व्यवच्छेदाय । ‘लिङ्गवचनादिकमिति’ । आदि-
 शब्देन कालस्य ग्रहणमत्र हि वर्तमानकालेन निर्द्देशोस्तीति प्रतीतेः,
 यथोक्तं यत्रान्यत्क्रियापदं नास्ति तत्रास्तिर्भवतिपरःप्रथमपुरुषो ऽप्रयुज्य-
 मानोऽप्यस्तीति गम्यतइति, ततश्च तस्य कालस्य विवक्षायां कालान्तरे
 न स्यात् । ‘सर्वमविवक्षितमिति’ । नान्तरीयकत्वादुपादानस्यावश्यं
 हि केन चिल्लिङ्गादिना निर्द्देशः कर्तव्यः । ‘तस्येदमित्यपत्येपीति’ ।
 अणादीनां विधानं सिद्धमिति शेषः । तस्येदंविशेषा ह्यपत्यसमू-
 हविकारादयः सम्बन्धसामान्येपि सर्वविशेषान्तर्भावात्, ततश्च तस्येद-
 मित्यनेनैवापत्येषणादीनां विधानं सिद्धं तत्किं योगविभागेनापत्येषा

द्वयो विधीयन्ते न तस्यापत्यमत इजित्यपवादैः संयुक्त एवापत्यार्थो निर्द्देश्यतइति चोद्धार्य परिहरति । 'बाधनार्थं कृतं भवेदिति' । तस्ये-
दमित्यनेन विधीयमानानामणादीनां यो बाधकश्चस्तस्य बाधनार्थमपत्ये
ऽणादीनां विधानं कृतं भवेदित्यर्थः । ननु शैषिकशब्दः, अपत्यादिचतु-
र्थपर्यन्तेभ्यो योन्योर्थः स शेषः, तत्कथमपत्ये कस्य प्रसङ्गो येन तद्बाध-
नार्थमिदमित्याह । 'उत्सर्गः शेष एवासाविति' । यदि योगविभागम-
कृत्वा तस्यापत्यमत इजित्युच्येत तदा प्रकृतिविशेषसंबद्धस्यैवापत्यार्थस्योप-
योगोऽतोऽन्योपत्यार्थः शेष एव स्यादिति स्यादेव वृद्धादपत्ये कः, योगवि-
भागे त्वपत्यार्थस्याणादिविधावुपयोगाच्छेषत्वाभावाच्छस्याप्राप्तिरेव, सै-
वात्राप्राप्तिर्बाधेत्युच्यते । उत्सर्ग इति प्रकृतिसामान्यसम्बद्धः सामा-
न्यभूतोपत्यार्थ उक्तः, बाधनार्थस्योदाहरणमह । 'वृद्धान्यस्य प्र-
योजनमिति' । 'श्यामगव इति' । श्यामा गावोस्य श्यामगुरिति ॥

“एको गोत्रे” ॥ एकशब्देऽयमन्यप्रधानासहायसङ्ख्याप्रथमसमान-
साधारणवाची, अन्यार्थे तावद् एकान्याभ्यां समर्थोभ्यां, प्रजामेका रत्न-
त्यूर्जमेका, एकान् बन्धुरपरान्निरासुः, इत्येके मन्यन्ते, यजुष्येकेषामिति, के
चित्त्वनयोः प्रयोगयोः के चिच्छब्दपर्याय एकशब्द इत्याहुः । एकः
पार्थो धनुष्मतामिति प्रधानार्थे । आद्यन्तवदेकस्मिन्, एकहलादौ,
एकहलमध्यइत्यसहायार्थे । एको द्वौ बहव इति सङ्ख्यार्थे । एकेत्य-
प्राणा इति प्रथमार्थे । तेनैकदिगिति समानार्थे, देवदत्तयज्ञदत्तावेक-
धनाविति साधारणार्थे, तत्र सङ्ख्यावचनः साधारणवचनः प्रथमवचनो
वा गृह्यते, अर्थान्तराणामसम्भवात्, गोत्रं पारिभाषिकं, कृत्रिमाकृत्रिमयोः
कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययात्, अपत्याधिकारे गोत्रग्रहणाच्च । किमर्थमिद-
मुच्यते, पौत्रप्रभृतावपत्ये विवक्षिते मूलप्रकृतेरुपभवादेरेव प्रत्ययो यथा
स्याद् औपगवादेः प्रत्ययान्तान्मा भूदिति । नैतदस्ति प्रयोजनं सन्धिधिव-
देतद्विष्यति, तद्यथा धातोर्विधीयमानः सन् सनन्ताव भवति, तत्
कस्य हेतोः, आकृतौ पदार्थे समुदाये सकृल्लक्षणं प्रवर्तते, न च सनि
विधीयमाने सनन्तो धातुः सम्भवति, तद्वदिहाप्यपत्यप्रत्यये विधीयमा-

नापत्यप्रत्ययान्ता प्रकृतिः सम्भवतीति ततः प्रत्ययां न भविष्यति, विषम उपन्यासः । एकः सन् प्रत्ययः विधायकं च लक्षणमेकमेव, तत्र युक्तं न तस्मिन्विधीयमाने तदन्ता प्रकृतिः सम्भवतीति, इह पुनस्तस्यापत्यमत इज् यजिजोश्चेति बहूनि लक्षणानि प्रत्ययाश्च बहवस्तत्र कस्मिंश्चित्प्रत्यये विधीयमाने प्रत्ययान्तरेण तदन्ता प्रकृतिः सम्भवत्येव, तथा च गुपादीनां सनः सन् भवति जुगुप्सिपतइति, किं पुनः स्याद्यद्येतच्चारभ्येत, उच्यते । इह के चिन्मन्यन्ते, पुत्रशब्दपर्यायोपत्यशब्दे निघण्टुषु तथा पाठाल्लोके च दृष्टत्वात्, तद्यथा पितामहस्थोत्सङ्गे दारकमासीनं दृष्ट्वा कश्चित्पृच्छति कस्य पुत्रायमिति कस्यापत्यमिति, स देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वेत्युत्पादयितारं व्यपदिशति नात्मानं, ततश्च यथा पितामहं प्रति पुत्रो न भवति तथापत्यमिति, उत्पादयितैवैकोपत्येन युज्यते न तु पितामहादयोऽपीति । अन्ये तु क्रियानिमित्तकोपत्यशब्दः, न पतन्त्यनेनेत्यपत्यमिति त्रौणादिको यत्प्रत्ययः, यस्य च येनापतनं तत्तस्यापत्यं, व्यवहितजनितोपि पौत्रादिः पितामहादेरपतनहेतुर्भवति, श्रूयते हि 'जायमानो वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्यज्ञेन वा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री'ति, एतेन पुत्रमुत्पाद्य पितृणामनृणो भवतीति प्रतिपादनात् पुत्रोत्पादितया प्रजया पितृणामुपकारो दृश्यते, स्मर्यते च ।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ।

अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रह्मस्याप्नोति विष्टपम् ॥

इति । इतिहासेषु च जारत्कारवादिषु महती वार्ता व्यवहितजनितोप्युपकारक इति, सूत्रकारश्च शब्दविदां मूर्द्धाभिषिक्तः सूत्रयत्यपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रमिति, ततो विज्ञायते क्रियानिमित्तकोपत्यशब्द इति, अन्यथा यथा पौत्रप्रभृतिः पुत्र इत्यनुपपन्नं तादृगेव तत्स्यादेवं सति साक्षात्परम्परया वा यस्य य उत्पाद्यः स तं प्रत्यपत्यमिति सर्वेपि पितामहादयोप्यपत्येन युज्यन्ते न तूत्पादयितैवेति, तत्राद्ये पक्षे यद्येतच्चारभ्येत ततस्तत्रतत्रापत्ये तत्तत्पितृवचनात्सप्त प्रत्ययः स्यात्-

द्वया उपगोरौपगवस्तस्यौपगविस्तस्यौपगवायनः, एवं शततमेपत्ये
 एकोनशतमपत्यप्रत्यया इत्यनिष्टं प्राप्नोति, इष्टं च न सिद्ध्यति औपगव
 इति, तृतीयादेशपुं प्रत्यनपत्यत्वात् । द्वितीये तूपगोः पञ्चमः पूर्वेषां
 चतुर्णामपत्यं ततो यदोपगोः प्रत्ययस्तदौपगव इतीष्टं तावत्सिद्ध्यति,
 अनिष्टमपि च प्रप्नोति, तच्चानिष्टमनियतमौपगविस्तत औपगवाय-
 नस्तत औपगवायनिरिति, पञ्चमे त्रीण्यनिष्टानि षष्ठे चत्वारोत्येवं
 यावत्तिसप्तमपत्यमभिधित्सितं तावन्ति द्यूनान्यनिष्टानि प्राप्नुवन्ति,
 तद्वया शततमे ऽष्टौ नवतिश्चेति, एवं स्थिते इदमारभ्यते, आरभ्य-
 माणेष्येतिस्मिन्दि प्रथमः पक्ष आश्रीयते ततो विध्यर्थमेतस्याद्
 नियमार्थं वा, कथं चेदं विध्यर्थं कथं वा नियमार्थं, यदि
 गोत्रशब्देन पौत्रप्रभृत्यपत्यसमुदाय एकैकमपत्यमभिधीयते ततो
 विध्यर्थं, तर्हि तथा नियमार्थः सम्भवति, एकस्मिन्पत्ये ऽनेकप्र-
 त्ययप्रसङ्गस्याभावाद्, न तावदेकस्मिन्प्रयोगे एकस्याः प्रकृतेरनेकप्रत्यय-
 प्रसङ्गः, एकेनैवोक्तत्वात्तस्यार्थस्य, नापि प्रयेष्वाभेदेन नानाप्रकृतिभ्यो
 नानाप्रत्ययप्रसङ्गः, सर्वदा स्वपितृवचनादेव प्रसङ्गादिति परम-
 प्रकृतेस्तृतीयादावपत्ये ऽप्राप्तः प्रत्ययो विधीयते, कथं पुनरेको गोत्र-
 इत्येतावति वचने परमप्रकृतेः प्रत्ययो विधीयतइति शक्यं विज्ञातुं
 यावता यथा परमप्रकृतेरयोगादप्राप्त एवमौपगवाच्चतुर्थीदाविति ततः
 किं न विधीयते वचनव्यक्तिभेदात्, एवं ह्यत्र वचनं व्यज्यते गोत्रएकः
 प्रत्ययो भवति, यत एक एव प्रत्ययः कर्तुं शक्यते तत एव प्रत्ययो भव-
 तीत्यर्थः, एकग्रहणसामर्थ्याच्चायमर्था लभ्यते । ननु विधीयमानेपि
 प्रत्यये प्रकृतिप्रत्ययावसम्बन्धौ स्यातां, वचनसामर्थ्यादपत्यापत्यस्थापत्य-
 त्वोपचारात् प्रत्ययो भविष्यतीत्यदोषः, मुख्यपत्ये चरितार्थः प्रत्ययो न
 स्यादिति विधातश्चमपि, अस्मिन्पक्षे सर्वेष्वौपगव इतीष्टं सिद्ध्यति प्रत्य-
 यमालाप्रसङ्गस्तदवस्थ एव, नह्यनेन तत्तत्पितृवचनात्प्राप्तः प्रत्ययः
 प्रतिषिद्ध्यते, तथा पञ्चमेपत्ये उपगुशब्दादनेन प्रत्यये विहिते तस्याप-
 त्यमिति षष्ठ औपगविः स्यात्, यदा त्वपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रमित्यपत्य-

शब्देन पौत्रप्रभृत्यपत्यसमुदायं लक्षयित्वा तस्यैव गोत्रसंज्ञा विधीयते, एकैकस्मिन्नपत्ये गोत्रशब्दप्रयोगः समुदायेषु वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपीति न्यायात्, अत्रत्येन वा गोत्रशब्देनावयवधर्मेण समुदायव्यपदेशात्पौत्र-प्रभृत्यपत्यसमुदायोभिधीयते तदा नियमार्थं गोत्रसमुदाये एक एव प्रत्ययो भवतीति, यद्यप्येकैकस्मिन्नपत्ये एकैकः प्रत्ययः प्राप्नोति तथापि पौत्र एकस्तदपत्ये चापर इति सकलनिरूपणे समुदाये बहवः प्रत्ययाः कृतास्स्फुरिति नियम उपपद्यते, अस्मिन्पत्ये दोषः, अनन्तरापत्यप्रत्य-प्रयान्तात्तृतीये प्रत्ययः प्राप्नोति गोत्रशब्दोपादानेन हि नियमः क्रियते गोत्र एक एवेति, ततश्च गोत्रेनेकः प्रत्ययो मा भूत्, अनन्तरएक-स्तृतीये चापर इत्येवमनेकः कस्मान्न स्यात्, एवमपि गोत्रे एक एव हि कृता भवति, अथ वा गोत्रसमुदाये एक एवेत्यनेन किं क्रियते, तृतीया-देश्चतुर्थादौ प्राप्तः प्रतिषिध्यते, यदि तृतीयादेः स्यात्समुदायेनेकः प्रत्ययः कृतः स्यादिति, यस्त्वनन्तरात्तृतीये प्राप्तः सोभ्यनुज्ञायते एक एवेतीतरव्यावृत्तौ नियमेषु तात्पर्यं, ततश्च यतः प्रत्यये क्रियमाणे समु-दायेनेकः प्रत्ययः कृतो भवति ततो न भवतीत्येव वचनार्था भवति, एवं चतुर्थस्यापत्यप्रत्ययेनाभिधानं न प्राप्नोति, द्वितीयादुत्पन्नस्तृतीयमेवाचष्टे न तृतीयादुत्पद्यतइति किं तु औपगवेरपत्यमिति वाक्यमेव, पञ्चमादे-स्तु वाक्येनाप्यभिधानं न प्राप्नोति, नहि तत्तत्पितृवचनः कश्चिदपत्य-प्रत्ययान्तः शब्दो ऽस्ति येन विष्टयेत, परमप्रकृतेश्च तृतीयादौ न कुत्र चित्प्रत्ययः प्राप्नोत्ययोगात्, तदेवमस्मिन्पत्ये परमप्रकृतेश्चात्यत्तिर्वक्तव्या, ऽनन्तराच्च तृतीये प्राप्तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । स्याद्वेतत् । न परम-प्रकृतेस्त्वत्तिर्वक्तव्या, ऽभेदोपचारेणैव सिद्धेः, अभेदोपचारश्चापगवौपगवयो-रौपगवतदपत्ययोर्वा, तदेवं शततमेप्यपत्ये ऽभेदोपचारपरम्परया औपगव इत्यभिधानं सिध्यति, न चैवमभेदोपचारेणैवेष्टस्य सिद्धेः सूत्रस्य वैयर्थ्यं, भेदविवक्षायां प्रत्ययमालाप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थत्वादिति, एवमप्यनन्त-रस्य तृतीयस्य च भेदविवक्षायां तृतीयौपगविः स्यात्, तथाऽनन्तरं तृतीयादौ च यत्र प्रत्ययो भिद्यते यथा गर्गादौ तत्राप्यनिष्टप्रसङ्गः,

यदि तावद्गार्ग्यं गर्गापचारस्तदा तदपत्यमपि गार्गिः स्याद्गार्ग्यश्चेष्यते ।
 अथापि गार्ग्यस्तदपत्यस्य चाभेदोपचार एवमपि गार्गिः स्यादिति त्यादौ
 विषये दोषवानेवाभेदोपचारः । तदेवं प्रथमपक्षे विधौ नियमे च दोष-
 प्रसङ्गाद् द्वितीयः पक्ष आश्रीयते, तत्रापि नियमः, यदप्येकैकस्मिन्प्रयोगे
 एकस्याः प्रकृतिरेक एव प्रत्ययः प्राप्नोति तथाऽप्युपगोः पञ्चमे पूर्वाभ्य-
 श्चतसृभ्यः प्रकृतिभ्यः प्रयोगभेदेन नानापत्यप्रसङ्गे नियमः क्रियते एक
 एवेति, तद्विदमुक्तं भेदेन प्रत्ययप्रसङ्गे नियमः क्रियते । ननु न ज्ञायते क
 एको भवतीति, यो वा परमप्रकृतेर्यो वा प्रत्ययान्तादिति, नन्वेक इत्युच्यते
 यदि च प्रत्ययान्तात्प्राप्तः प्रत्ययः स्यादनेकः कृतः स्यात्, क, न तस्य-
 त्यञ्चमे पूर्वेषां प्रत्ययानामस्मिन्प्रयोगे प्रसङ्गेऽपत्यान्तरविषयत्वात् । अथ
 गोत्रसमुदाये केनासौ निवार्यते, न तावदनेनैव, नहि गोत्रसमुदायो
 गोत्रग्रहणेन गृह्यते, ऽथापि गृह्येत एवमपि न ज्ञायते यो वा परमप्रकृ-
 तेर्यो वा ऽनन्तरादिति, यदि पुनर्गोत्रग्रहणं न क्रियते क्रियमाणं वा
 ऽपत्यमात्रपरं विज्ञायते न स्यादेष दोषः, अर्पत्ये समुदाये एक एवेति
 नियमात्, अपत्याधिकारे गोत्रग्रहणात्त्वेण दोषो जायते, नैष दोषः ।
 अपत्यमिति वर्त्तते, गोत्रेऽपत्ये एक एवापत्यप्रत्ययो भवतीति वचनव्यक्तिः,
 यदि च प्रत्ययान्तात्प्रत्ययः स्यादपत्यप्रत्ययो ऽनेको गोत्रे कृतः स्यात्,
 सामर्थ्येन वा प्रत्ययो विशेष्यते, गोत्राभिधाने समर्थानां मध्ये एक
 एवेति, यदि च प्रत्ययान्तात्प्रत्ययः स्याद्गोत्राभिधानसमर्थो ऽनेकः कृतः
 स्यात्प्रथमस्यापि समर्थत्वात्, यदप्यस्मिन्प्रयोगे ऽपत्यान्तरे वर्त्तते पञ्चमं
 प्रत्यपि सामर्थ्यं तावदस्ति, यदि वा तस्यापत्यमित्यादितत्त्वणैरेक
 एव प्रत्ययः कर्त्तव्यः, क, गोत्रे, यस्मिन्प्रत्यये गोत्रमभिधित्सितं
 तत्रेत्यर्थः, प्रत्ययान्ताच्च प्रत्यये तस्मिन्नेव प्रयोगे प्रकृतिरूपसम्पादना-
 यापि तावदनेकः कृतः स्यात्, यदि वा प्रथमवचन एकशब्दः कश्च
 प्रथमः यमकृत्वा प्रत्ययान्तरं कर्त्तुं न शक्यते, साधारणवचनो वा
 ऽपत्याधिकाराच्च यः सर्वोपत्यसाधारणः स एव गोत्रे भवतीति,
 मर्गशब्दाद्यजेव भवतीति, मर्गशब्दाद्यो यञ् प्राप्तः स एव भवति न

प्रकृत्यन्तरेभ्यः प्राप्ताः प्रत्यया इत्यर्थस्तदाह । 'प्रत्ययो नियम्यत-
इति' । प्रत्ययान्तरं वार्यतइत्यर्थः । एतेन प्रकृतिर्नियम्यतइत्यपि
व्याख्यातम् । 'अथ वेत्यादि' । अस्मिन्यन्ते प्रथमवचन एकशब्द इति
दर्शितम् । 'प्रथमा प्रकृतिरिति' । सूत्रे तु शब्दापेक्षया पुल्लिङ्गनिर्देश
इति दर्शितम् । 'एक एव शब्द इति' । अथ वास्मिन्यन्ते साधारणवचन
एकशब्दः परमप्रकृतिश्च सर्वप्रत्ययसाधारणी, सङ्ख्यावचनो वा प्रथमाति-
क्रमे कारणाभावात्परमप्रकृतिरेकशब्देन गृह्यते । 'अनयोः पक्षयोः प्रथ-
मा प्रकृति रिति' । एकशब्दस्यार्थतो विवरणं द्रष्टव्यम् ॥

“गोत्रादून्यस्त्रियाम्” ॥ अत्राप्यनारभ्यमाणेस्मिन्योगे उत्या-
दयितर्यपत्ययुक्ते गोत्रसञ्ज्ञाया युवसञ्ज्ञया बाधितत्वादसति पूर्वसूत्र-
व्यापारे चतुर्थे तृतीयात्पञ्चमे चतुर्थात्षष्ठे पञ्चमादित्येवं प्रत्ययान्ता-
देव प्रत्ययप्रसङ्ग इत्यनिष्टमेव प्राप्नोति, व्यवहिते च पञ्चमादौ यूनि
तृतीयादुत्पत्तिर्न प्राप्नोति तं प्रत्यनपत्यत्वादितिष्ठं न सिध्यति, सर्वेषु
त्वपत्ययुक्तेषु पञ्चमे यूनि पूर्वभ्यश्चतुर्भ्यः प्रत्ययः प्राप्नोति, तत्र यदा तृती-
यात्तदा गार्ग्यायण इतीष्टं तावत्सिध्यति, अनिष्टमपि प्राप्नोति प्रकृत्यन्त-
रेभ्योपि प्रत्ययप्रसङ्गादित्यत इदमारभ्यते । अत्रापि यदि पूर्वः पक्ष
आश्रीयते ततो विध्यर्थमेतत्स्यान्नियमार्थं वा, यदि युवशब्देनैकमपत्य-
मुच्यते तत एकस्मिन्यूनि गोत्रादगोत्राच्च प्राप्तभावात् चतुर्थेन व्यव-
हिते पञ्चमादौ यूनि गोत्राद्विध्यर्थं भवति । अथ चतुर्थेप्रभृत्यपत्यसमु-
दायो युवशब्देनोच्यते ततो गोत्राच्चतुर्थे चतुर्थादगोत्रात्पञ्चम इति
गोत्रादगोत्राच्च युवसमुदाये प्रत्ययप्रसङ्गे गोत्रादेवेति नियमार्थं भवति,
तत्र विधौ गार्ग्यायण इतीष्टं सिध्यति प्रत्ययमःलाप्रसङ्गदोषः स्यादेव,
तत्पितृवचनात्प्राप्तस्य प्रत्ययस्यानिषिद्धत्वात्, नियमे चतुर्थादेः प्राप्तस्य
प्रत्ययस्य प्रतिषेधो ऽयं सम्पद्यते, यदि चतुर्थादेः स्याद् युवसमुदाये
गोत्रादपि प्रत्ययः कृतः स्यादिति, ततश्च नानिष्टप्रसङ्गः किं तु षञ्च-
मादौ यूनि गोत्रादुत्पत्तिर्न प्राप्नोति तं प्रत्यनपत्यत्वादिति पञ्चमस्य
वाक्येनाभिधानं स्याद्गार्ग्यायणस्यापत्यमिति, षष्ठस्य तु वाक्येनापि न

सिद्धमिति, नहि तत्पिनृवचनोपत्यप्रत्ययान्तः शब्दोऽस्ति येन विगृह्येत, तदेवमत्रापि द्वितीयः पक्ष आश्रीयते नियमश्च तदाह । 'अयमपि नियम इति' । 'गोत्रादेवेति' । यून्येवेत्येष विपरीतं नियमो न भवति एको गोत्रइति नियमादून्यान्यत्र गोत्रप्रत्ययस्य प्रसङ्गाभावात् । 'न परमप्रकृत्यनन्तरयुवभ्य इति' । अन्यथा प्रयोगभेदेन तेष्योपि स्यात् । 'किं पुनरत्र प्रतिषिध्यतइति' । सर्वस्मिन्नपि प्रतिषिध्यमाने दोषदर्शनात्प्रश्नः । तमेव दोषमाविष्करोति । 'यदि नियम इति' । तदेकवाक्यत्वात्प्रतिषेधस्येति भावः । 'स्त्रियामनियमः प्राप्नोतीति' । परमप्रकृत्यनन्तरयुवलक्षणाः प्रत्ययाः प्रयोगभेदेन पर्यायेण स्युरित्यर्थः । 'अथ युवप्रत्ययः प्रतिषिध्यतइति' । अस्त्रियामिति योगविभागेन प्रसज्यप्रतिषेधाश्रयेण चेति भावः । 'गोत्रप्रत्ययेनाभिधानं न प्राप्नोतीति' । तद्वया गर्गादिभ्यो यञ् गर्गां गार्ग्यायणी, अपत्यसामान्यलक्षण एव तु प्रत्ययः स्यात्किं कारणमनभिधानं प्राप्नोतीत्यत आह । 'गोत्रसञ्ज्ञाया युवसञ्ज्ञया बाधितत्वादिति' । यथा च बाधस्तथा तत्रैव वदन्ते । स्यादेतत् । युवप्रत्ययस्य स्त्रियां लुक्प्रिष्यते, अथं, यूनि लुगित्यस्यानन्तरं स्त्रियां चेति वक्ष्यामि यूनि लुगित्येव प्राग्दीव्यतइत्येतन्नित्यत्तं, यद्वा वतण्डाच्च, लुक् स्त्रियां, यूनि चेति वक्ष्यामि, लुक् स्त्रियामित्येव, ततश्च गार्ग्यशब्दादुत्पन्नस्य फको लुकि कृते लुप्तस्याप्यर्थं प्रकृतिरेवाहेति यजन्तास्त्रियां वर्तमानान्डीपण्कौ भविष्यत इति, एवमप्यौपगवशब्दादत इजो लुकि कृते ऽनुपसर्जनाधिकारादण्येनूपसर्जनमित्युच्यमान ईकारो न प्राप्नोति अणर्थस्याप्रधानत्वात्, यूनि संक्रान्तत्वात्, माभूदेवमण्येनूपसर्जनमिति अणन्तादनुपसर्जनादित्येवं भविष्यति, नैवं शक्यम्, इह हि दोषः स्यादापिशलिना प्रोक्तं व्याकरणम्, इजश्चेत्यण्, तदधीते आपिशला ब्राह्मणी, तदधीतइत्यणः प्रोक्ताल्लुकि अणन्तस्याज्येयां प्रधानस्त्रियां संक्रान्तत्वान्डीप्राप्नोति, तस्मादण्येनूपसर्जनमित्येवाश्रयणीयं स्त्रियां योश्चिहित इति वा, तथा च सत्यौपगवीतीकारो न प्राप्नोति, यद्यप्यत्र प्रत्ययलक्षणेन इज उपसंख्यानमितीकारः स्यात्, इह तु ग्लुक्कायनेरपत्यमैत्सर्गिकस्याणो लुकि ङीञ्

प्राप्नोति, इतो मनुष्यजातेरिति ङीष् भविष्यति, इह तर्हि यस्कस्यापत्यं शिवाद्यण् यास्कः, तस्यापत्यं स्त्री, अणो द्वच इति फिज् स्त्रियां लुकि ईकारो न प्राप्नोति, नह्यत्र लुप्तः प्रत्यय ईकारस्य निमित्तं, यश्च श्रूयते न स स्त्रियां विहित उपसर्जनं च, तर्हि का गतिरित्यत आह । 'तस्मादिति' । 'युवसञ्जैव प्रतिषिध्यतइति' । ननु यूनि यदुक्तं तत्स्त्रियां न भवतीत्युक्तं, न च युवसञ्जा यून्युक्ता, नहि युवसञ्जायाः प्रायुवसञ्जास्ति, चतुर्थ्यादेर्जीवदृश्यस्यापत्यस्यापलक्षणं युवशब्द इत्यदोषः । अपर आह । स्वरूपपरो युवशब्दः, परिभाषा चेयं, यत्र युवशब्दः श्रूयते तत्रास्त्रियामित्युपतिष्ठते, जीवति तु वंश्ये युवा, अस्त्रियामिति वा व्यक्तमेव पठितव्यमिति ॥

“अत इज्” ॥ 'अकारान्तात्प्रातिपादिकादिति' । अत सातत्यगमनइत्यस्य वा ऽच्छाब्दान्तानां वा कुर्वदादीनां ग्रहणं न भवति, यदि स्याच्छिवादिषु येषामस्मैजो बाधनार्थः पाठः शिवप्रोष्ठप्रौष्ठिकप्रभृतीनां तेषां पाठोनर्थकः स्यात्, व्यपदेशिवद्वावादिहापि भवति अस्यापत्यमिरिति, यस्येति लोपे प्रत्ययमात्रस्य श्रवणम्, इह तु एरपत्यमस्य युवेति यजिजोश्चेति फकि यस्येतिलोपं बाधित्वा परत्वादादिवृद्धौ कृतायामायायन इति भवति ॥

“बाह्वादिभ्यश्च” ॥ 'क्व चिदिति' । अजीर्णादिषूदङ्कपर्यन्तेष्वदन्तत्वात्पूर्वणञ् प्राप्तस्तस्य च्छयन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चेत्यण् बाधकः प्राप्तः, अन्ये सर्वे ऽनकारान्तास्तेषु च बाहुप्रभृतिषूवर्यान्तेषु पुष्करसदादिषु हलन्तेषु चाण् प्राप्तः, चूडाशब्दाद्व्यच इति ङक्, वृकलादिभ्यस्तत्रामिवृक्त्वा प्राप्तः, शिरस्लोमत्रिति तदन्तयोर्ग्रहणं, सम्भूयोम्भोमितौजसां सन्तेष्वेव वक्तव्ये पृथक् सलोपश्चेति वचनं वैचित्र्यार्थम् । उदञ्चु इति तत्र नायमुकारान्तात्प्रत्ययः किं तु क्विन्तात्प्रत्ययः, नलोपाश्चैतानि प्रात्ययानि, उदीचोपत्यमौदञ्चिः, एतत्सर्वं पैलादिष्वौदञ्चिशब्दपाठाद्विज्ञायते । 'बाह्वादिप्रभृतिष्विति' । प्रभृतिग्रहणेन वक्ष्यमाणानां कुञ्जादीनां ग्रहणं,

लोके विदितो लौकिको गोत्रभावः, संज्ञाकारित्वम् आदिपुरुषत्वमित्यर्थः । एतच्च न्यायसिद्धं, कथम्, अर्थवद्ग्रहणे नानर्थक्येति, अर्थवतां बाह्यादीनां ग्रहणं, स चार्थः प्रसिद्धः, भटिति प्रतीतिः, स्मृतिशास्त्रस्य चार्थतानादित्वाद्दनादर्थोभिधायिनामेव ग्रहणं न्याय्यम् । 'बाहुनाम कश्चिदिति' एवं कुञ्जो नाम नडो वा, तस्मादिजेव भवति । 'कौञ्जि-नाडिरिति' । यत्तु कार्यं न स्वरूपोपादानेन विधीयते किं तु प्रकारान्तरेण तद्विदानीतनार्थाभिधायिनामपि भवति, अत इज्, दैवदत्तिरिति । 'सम्बन्धिशब्दानां चेति' । कार्यापेक्षया षष्ठी, सम्बन्धिशब्दानां श्वशुरादीनां यत्कार्यमुच्यते तस्य तत्सदृशे प्रतिषेधो भवति । 'संज्ञाश्व-सुरस्येति' । संज्ञया यः श्वसुरो न संबन्धेन । 'श्वसुरिरिति' । उणादिषु नावश्यं व्युत्पत्तिकार्यं भवति, तेन सावसे राप्ताविति व्युत्पन्नस्य श्वशुरशब्दस्य नञ्वाभ्यामित्येष विधिर्न भवति, तथा मातृपितृभ्यां स्वसेति पत्वं धान्यमातरि न भवति, इदमपि न्यायसिद्धं संज्ञाश्वशुरस्यादिमत्त्वात्सम्बन्धिशब्दस्यानादित्वात्, मातृपितृभ्यामित्यत्रापि प्रसिद्धतरत्वाज्जननीवाचिनो ग्रहणम् । उक्तं च ॥

अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्राः लोकविश्रुताः ।

शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यः शब्देषु न तदुक्तिषु ॥

इति । 'चकारोनुक्तसमुच्चयार्थं आह्वतिगणतामस्य बोधयतीति' ।

पठितशब्दापेक्षः समुच्चय इति भावः ॥

“सुधातुरकङ्क च” ॥ ‘व्यासवरुडेत्यादि’ । वेदं व्यस्यतीति वेद-व्यासः, कर्मण्यण्, तस्यैकदेशप्रयोगो व्यास इति भीमसेनो भीम इति-वत्, वरुड्, ध्यो जातिविशेषाः, तत्तर्हि वक्तव्यं न वक्तव्यं, प्रकृत्यन्तराण्ये-वैतान्त्रिकि अककनप्रत्ययन्तानि, अव्यविकन्यायेन च कत्रहि तैर्वाक्यमेव भवति, एतेषु शब्दादृषिवाचिनोपि बाह्यादेराह्वतिगणत्वादिज् भवति ॥

“गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्” ॥ ‘चकारो विशेषणार्थ इति’ । यद्यत्र चकारो न क्रियेत ततो व्रातफजोरस्त्रियामिति वक्तव्यं, ततो ऽश्वादिभ्यः

फजित्यस्यापि ग्रहणं स्यात् । 'कौञ्जायन्य इति' । स्वार्थे ज्यः, बहुषु तु ज्यादयस्तद्राजा इति तद्राजत्वात्तद्राजस्य बहुष्वित्यादिना लुक्, किं पुनरत्र जित्स्वरो भवति उत चित्स्वर इत्यत्राह । 'एकवचनद्विवचनयोरिति' । तत्र हि ज्यप्रत्ययः श्रूयते, स च पश्चाद्भावीति तत्रिवचनयो जित्स्वरः सति शिष्टः, बहुवचने तु ज्ये निवृत्ते सम्प्रधारणा जित्स्वरो वा चित्स्वरो वेति, तत्र परत्वाद् जित्स्वरः प्राप्नोति, चित्करणसामर्थ्याच्चित्स्वरो भविष्यति, जित्करणसामर्थ्याद् जित्स्वरः प्राप्नोति, अस्त्यन्यन् जित्करणस्य प्रयोजनं, किं, वृद्ध्यर्थो जकारः, चित्करणेपि तर्ह्यस्त्यन्यत्प्रयोजनं, किं, विशेषणं, शक्योत्र विशेषणार्थान्योन्यनुबन्ध आसङ्क्तं, तत्र चकारानुरोधाच्चित्स्वरो भविष्यति, वृद्ध्यर्थोपि तर्ह्यन्योन्यनुबन्धः शक्य आसङ्क्तं तत्र जकारानुरोधाद् जित्स्वरः प्राप्नोति, एवं स्थितइदमुच्यते । 'परमपि जित्स्वरं त्यक्त्वा चित्स्वर एवेष्यतइति' । एवं मन्यते । स्वरे योगविभागः कर्त्तव्य, इदमस्ति चितः चितोन्त उदात्तो भवति, ततस्तद्वितस्य चित इत्येव, तद्वितस्य चितोन्त उदात्तो भवति, किमर्थमिदं, परत्वात्प्राप्तस्य जित्स्वरस्य बाधनार्थं, ततः कितः, कितश्च तद्वितस्यान्त उदात्तो भवतीति, यदि तु कफप्रत्ययः क्रियते तद्वितस्येति योगविभागः शक्यो ऽकर्त्तुम्, अथैवं कस्मात् क्रियते गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्, बहुषु फक्, नडादिभ्यश्चेति, नैवं शक्यम्, इह हि दोषः स्यात्, कौञ्जायनानामपत्यं माणवकः कौञ्जायन्युः कौञ्जायन्यौ, केन यशब्दः श्रूयते द्व्येकयोर्हि च्फञ्चिधीयते, यदा तु च्फञन्तात् ज्यो विधीयते तदा यून्युत्पन्नस्येजो एयत्त्रियार्षजित इति लुकि कृते तद्राजस्येति ज्यस्य लुकि प्राप्ते गोत्रे ऽलुगचीति प्रतिषेधाद्यशब्दस्य श्रवणं भवति, तथा कौञ्जायनस्यापत्यानि बहूनि, अत इजो लुकि तद्राजस्यैव बहुषु वर्त्तमानत्वाद् ज्यस्य लुकि कौञ्जायना इति भवति ॥

“नडादिभ्यः फक्” ॥ ‘शलङ्कु शलङ्कं चेति’ । द्वे अपि प्रथमान्ते, शब्दरूपापेक्षया नपुंसकनिर्देशः, शलङ्कु इत्येतच्छब्दरूपं श्रूयते,

भवति, तद्रूपेण परिणामतइत्यर्थः । 'इजोवान्यत्रेति' । बाह्यादेराकृतिगण-
त्वादिति भावः । अभ्युपेत्यापि गोत्रमात्रे फको विधानं परिहार-
माह । 'अथ वेति' । 'इजो भावस्येति' । शतङ्कभाषापत्तेरप्युपलक्षणमे-
तत्, पूर्वत्र परिहारे तस्याः स एव पाठो ज्ञापको वेदितव्यः । 'अग्नि-
शर्मन्वृषणइति' । अग्निशर्मन्शब्दः फकमुत्पादयति वृषणो गोत्रे,
आग्निशर्मायणो भवति वार्षण्यश्चेद् आग्निशर्मा ऽन्यः, अमुष्येति पठ्यते,
तत्रादःशब्दे प्रातिपदिकमात्रे पठितव्ये विभक्त्यन्तस्य पाठादुत्पत्तये फकि
लुङ्ग भवति, आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकेत्यलुग्विधावस्य ग्रहणं न कर्तव्यं
भवति । 'कृष्णरथौ ब्राह्मणवसिष्ठयोरिति' । कार्णायनो भवति
ब्राह्मणश्चेत् कार्णारन्यः, राणायनो भवति वासिष्ठश्चेद् राणारन्यः ।
'क्रौष्टु क्रौष्टं चेति' । क्रौष्टायनः ॥

“हरितादिभ्यो ऽजः” ॥ हरितादिभ्यो ऽज इति व्यधिकरणे
पञ्चम्यौ, हरितादिभ्यः परो योज् तदन्तात्प्रातिपदिकादित्यर्थः । वृत्ति-
कारोप्येतदेवं वस्तुतो व्याचष्टे । 'हरितादिभ्यो ऽजन्तेभ्य इति' । हरि-
तादिभ्यो गोत्रापत्ये ऽज् प्रत्ययो भवतीत्ययं त्वर्थो न भवति, बिदादिषु
पाठात् । 'सामर्थ्यादिति' । गोत्रप्रत्ययान्तादपरो गोत्रप्रत्ययो न भव-
तीत्येतत्सामर्थ्यं, तस्मान्नोत्राधिकारेपि यूनि प्रत्ययो विज्ञायते, न चैवं
गोत्राधिकारस्य विच्छेद इत्याह । 'गोत्राधिकार इति' । उत्तरार्थं गोत्र-
ग्रहणमनुवर्ततएवेत्यर्थः ॥

“यजिजोश्च” ॥ 'गोत्रग्रहणेन यजिजौ विशेष्येते इति' । गोत्रे
यौ यजिजौ विहितावित्येवं, न चैवं प्रत्ययार्थस्यापत्यस्याविशेषितत्वा-
दपत्यमात्रे प्रत्ययप्रसङ्ग इत्याह । 'तदन्तादून्येवायं प्रत्यय इति' । एव-
कारः पौनर्वचनिकः, न केवलं पूर्वं एव प्रत्ययो यूनि भवति अयमपि
यून्येवेति, कस्मादित्याह । 'गोत्रादूनीति वचनादिति' ॥

“शरदृच्छुनकदर्भाद्गुवत्सायायणेषु” ॥ शरदृदादीनां भृगवादिवं-
शप्रभाषनां कृत्रिमा अपि पुत्राः सन्ति, स्ववंशप्रभवा अपि, तत्रापत्यविशेषणं
वकारो गति, तत्र भृगुःशरदृतोऽपत्यं न भवति पूर्वभावित्वात्, एवं शुनकस्य

वत्सः, तस्माद्भागवश्च वात्स्यश्च आययणश्चेति द्वन्द्वे युगपदधिकरणवचन-
तया वर्त्तिपदस्य बहुषु वृत्तेरत्रिभुविति यज्ञोश्चेति च गोत्रप्रत्ययस्य लुक्,
तदाह । 'भागवश्चेद्वात्स्यश्चेदिति' । 'दाभिरिति' । दर्भशब्द ऋषि-
वचनो न भवति, बाह्यादिषु वा पाठः ॥

“द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्” ॥ पूर्वमुक्तं गोत्राधिकारश्च
शिवादिभ्योऽणिति यावदिति, इहाप्युक्तं गोत्रइत्येवेति, तत्र नोदयति ।
'कथमिति' । 'नैवात्रेति' । यस्य ग्रहणमूरीकृत्य भवाना
नन्तर्यं दोषमाह स नैव गृह्यतइत्येवशब्दस्यार्थः । महाभारते
द्रोणो महाभारतद्रोणः । 'अनादिरिति' इदानीमेव ह्युक्तं ब्रह्मा-
दिप्रभृतिष्वित्यादि । नन्वेवं प्रयोगस्यात्यन्तमनुपपत्तिरित्यत आह ।
'इदानीं त्विति' । अर्वाचीनादित्यर्थः, न पुनर्महाभारतद्रोणो वृत्ति-
कारेण समानकालः, अनादेरिदानींतनस्य च द्रोण इति श्रुतिः
समाना, तत्रानादिद्रोणस्य ये वंश्या अश्वत्याम्ना समानकालास्ते
द्रौणायना इत्युच्यन्ते, तत्र यद् दृष्टं गोत्रत्वं तदश्वत्याम्न्यपि द्रौण-
शब्दवाच्यापत्यत्वात् स्खलितबुद्धयः प्रतिपत्तारो ऽध्यारोपयन्ति, तेना-
ध्यारोपेणाश्वत्यामनि तथा द्रौणायन इत्येतद्गोत्रप्रत्ययेनाभिधानं भवति ॥

“अनुष्यानन्तर्यं बिदादिभ्योऽञ्” ॥ 'गोत्रइत्येवेति' । एतेन येत्र
ऋषिशब्दा बिदौर्वप्रभृतयस्तेभ्यो गोत्रएवान्यथा स्यादिति गोत्रइत्येतदि-
हानुवर्त्तनीयमिति दर्शयति । 'ये पुनरित्यादि' । कथं पुनर्गोत्राधिकारे सत्य-
यमर्था लभ्यतइत्यत्राह । 'अनुष्यानन्तर्यइत्यस्यायमर्थ इति' । अनुषीति
पञ्चम्या लुका निर्वृशः, आनन्तर्यइति स्वार्थं ष्यञ्, एवं च पौत्रा इत्यादावन-
न्तरस्यैवाभिधानं न गोत्रस्य नापत्यसामान्यस्य च । 'यद्वयमर्थ इति' ।
अस्मिन् ह्यर्थे ऽनृषिभ्योनन्तरापत्ये विध्यर्थमिदं भवति, ततश्च ऋष्यप-
रन्तर्यं, ऋषयश्च ते ऽपत्यानि च ऋष्यपत्यानि तेषां नैरन्तर्यं ऋषिरूपाण्यप-
त्यानि निरन्तराणि यत्र तस्मिन्विषये प्रतिषेधो न कृतः स्यात्तत्र को दोष
इत्यत्राह । 'तत्रेदमिति' । कश्यप ऋषिस्तस्यापत्यमप्यृषिरेवं सप्तनैरन्त-
र्येण ऋषयस्तेषां सप्तम इन्द्रहूनाम तत्र काश्यपानामिति प्रयोगो नोपपद्यते,

ऽजि सति यजजोश्चेति लुक् प्रसङ्गात्, तस्मादनृष्यानन्तर्ये इत्यस्य ऋषी-
 णामानन्तर्ये ऽव्यवधाने प्रत्ययो न भवतीत्ययमर्थो व्याख्येय इति भावः ।
 प्रयोगं तावदुपपादयति । 'अनन्तरापत्यरूपेणेति' । अपत्यसामान्यरूपेणे-
 त्यर्थः । न पुनर्ऋष्यणनन्तरापत्ये विधीयते, तत्र यथाभूत्तुप इत्यादौ वस्तुतो
 भूतविशेषेपि सामान्यविवक्षया लुङ् भवति तद्वदिहापि वस्तुतो गोत्रेपि
 तदूपतिरस्कारेणापत्यसामान्यरूपविवक्षया ऋष्यण भवतीत्यर्थः । किं
 पुनःकारणमियं क्लिष्टकल्पनाश्रीयतइत्याह । 'अवश्यं चैतदेवं विज्ञेय-
 मिति' । ऋषीणामपत्यानां नैरन्तर्ये विषयो यस्य प्रतिषेधस्य स तथोक्तः ।
 'कौशिको विश्वामित्र इति दुष्यतीति' । किं कारणं, विश्वामित्रस्तपस्तेपे
 नानृषिः स्यामपि तु ऋषिरेव स्यामिति, तत्र भवानृषिः सम्भवः, स पुन-
 स्तपस्तेपे नानृषेः पुत्रःस्यामिति, तत्र भवान् गाधिरप्पृषिः सम्भवः, स पुन-
 स्तपस्तेपे नानृषेः पौत्रः स्यामिति, तत्र भवान्कुशिकोपि ऋषिः सम्भव-
 स्तदेतदृष्यानन्तर्ये सम्भवति । 'परस्त्री परशुं चेति' । द्वितीयानिर्देशा-
 दापद्यतइति शेषः । परस्त्रीशब्दः प्रत्ययमुत्पादयति परशुं चादेशमाप-
 द्यते, परस्त्रिया अपत्यं पारशवः, ब्राह्मणस्य शूद्रायामूढायामुत्पन्नः, सा च
 जातितः परस्त्री भवति, यस्तु परभार्यायामुत्पन्नः पारस्त्रैण्यः स भवति
 कल्याण्यदिः, अनुशतिकादिश्च । पारशव इत्यत्र पूर्वोत्तरपदसम्प्रमोहा-
 दनुशतिकादिकार्योभावः ॥

“गर्गादिभ्यो यञ्” ॥ 'अपत्यसामान्ये भविष्यतीति' । अन्ये
 तु मनुतन्नुशब्दः समुदाय एको न तु द्वौ शब्दौ पठिताविति वदन्ति,
 तथा च ब्राह्मणे मानुतन्त्व्यमुवाचेति प्रयोगः । कालवमनुतन्नुकुशिका-
 नामिति च प्रवरे, 'कथं मानवीति' । लोहितादिपाठाच्चित्येन ऋष्येण
 भाव्यमिति भावः । 'अनन्तरापत्यविवक्षायां त्विति' । गोत्रस्यापीति
 बोद्धव्यं, तथा च जामदग्ना वात्सा इति प्रवरे प्रयोगः । 'वाजासइति' ।
 वाजशब्दो यजमुत्पादयति असे असमासे समासे तु सौवाजिः, यद्गण-
 वता प्रातिपदिकेनेत्यस्यानित्यत्वज्ञापनार्था ऽसइति प्रतिषेधः ॥

“मधुबन्धोर्बाह्याकौशिकयोः” ॥ गणएव बभ्रुकौशिकइति वक्तव्यम्, एवं हि द्विर्बभ्रुयहणं न कर्तव्यं भवति, तथा तु न कृतमित्येव ॥

“कपिबोधादाङ्गिरसे” ॥ ‘कापेय इति’ । इतश्चानिज इति ठक् । ‘बौधिरिति’ । अनृषित्वादिञ्, बाह्वादिर्वा ॥

“वतण्डाच्च” ॥ ‘किमर्थमिति’ । वतण्डान्नुक् स्त्रियामित्येव कस्मान्नोक्तं, किमर्थो योगविभाग इति प्रश्नः । परिहरति । ‘शिवादिष्व-पीति’ । वतण्डो नाम ऋषिस्तत ऋषित्वादेवाणि सिद्धे शिवादिषु तस्य पाठो गोत्रे गर्गादियजा समावेशार्थः, तत्र यथानाङ्गिरसे समावेशो भवति एवमाङ्गिरसेपि स्यादिति तन्निवृत्त्यर्थो योगविभाग इत्यर्थः ॥

“लुक् स्त्रियाम्” ॥ ‘वातण्डायनीति’ । लोहितादिलक्षणः ष्कः । ‘वातण्डीति’ । ऋषित्वात् ष्यङ् भविष्यति ॥

“अश्वादिभ्यः फञ्” ॥ ‘ये त्वत्र गोत्रप्रत्ययान्ताः पठन्तइति’ । बैल्य आनुहुह्य आत्रेय इत्येते, तेत्र बैल्यशब्दो वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ज्यङिति ज्यङन्तः, विलिर्नाम राजर्षिः आनुहुह्यशब्दो गर्गादियजन्तः, आत्रेय इतश्चानिज इति ठगन्तः, । ‘शय आत्रेयइति’ । शयशब्दात्फञ् भवति आत्रेयश्चेत्, शायाननः । आत्रेयादन्यत्र शायिः, अनृषित्वादिञ् बाह्वादिर्वा । अन्ये त्वणमेव प्रत्युदाहरन्ति । ‘पुंसि जातइति’ । पुंसीति प्रकृति-विशेषणं, जातस्यापत्यं जातायनः, स्त्रियां तु जाताया अपत्यं जातेय इति ठगेव भवति, अन्यथा लिङ्गविशिष्टपरिभाषया फञेव स्यात्, । आत्रेय-भारद्वाजइति’ । आत्रेयायनो भवति भारद्वाजश्चेत्, अन्यत्रात् इजो एय-क्षत्रियेति लुक्, । ‘भारद्वाजात्रेयइति’ । अत्रिगोत्रजो यदा भारद्वाजगो-त्रजेन पुत्रत्विन स्वीक्रियते तदा प्रत्ययः स ह्यात्रेयश्च भवति भारद्वाजस्य च गोत्रं भवति, भारद्वाजायन आत्रेयश्चेद् भारद्वाजान्यः, विदाद्यजेव भवति ॥

“शिवादिभ्योण्” ॥ ‘यथायथमित्यादि’ । तत्रादन्तोष्विजोप-सादः, मुनिसन्धिभूमिप्रभृतिष्वितश्चानिज इति ठक्, स्त्रीप्रत्ययान्तेषु स्त्रीभ्यो ठक् ट्ठच इति प्राप्तस्य ठक्, गङ्गाविपाटशब्दयोस्तु यस्मि-

प्राप्ते स वृत्तिकारणैवोक्तः, जरत्कारुशब्दस्य तु पाठे प्रयोजनं चिन्त्यम् ।
के चिदाहुः । शुभादिष्वयं पठनीयः, जरत्कारेय इति यथा स्यात्,
तत्र तु ठका समावेशार्थोऽस्य पाठ इति । 'एयप्रत्ययस्य तु बाधो नेष्य-
तइति' । अत्र हेतुमुदीचामित्यत्र वक्ष्यति । 'शुभादिठका चेति' ।
शुभादिभ्यश्चेत्यत्र वक्ष्यति चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थं आकृतिगणतामस्य बोध-
यति, तेन गाङ्गेयः पाण्डेय इत्यादिसिद्धं भवतीति तदभिप्रायेणोदमुक्तम् ।
रवणविश्रवणशब्दौ पठ्येते, तौ विश्रवःशब्दस्यादेशौ प्रकृत्यन्तरे वा, वृत्ति-
विषये तत्सामानार्थे, विश्रवसोऽपत्यं वैश्रवणो रावणः । 'द्व्यचो नद्या
इति' । नदीवाचिनो ये द्व्यचः कुल्याप्रभृतयस्तेभ्यस्तत्रामिकाणोपवादे
द्व्यच इति ठकि प्राप्ते ऽण भवति । 'त्रिवेणी त्रिवणं चेति' । त्रिवेण्या
अपत्यं त्रैवणः, तत्रामिकाणि सिद्धे आदेशार्थं वचनम् । अथाण्यहणं
किमर्थं, न यथाविहितमित्येवोच्येत, एव मुच्यमाने इजादय एव स्युस्ते
विहिताः पुनरारम्भसामर्थ्यद्वयो विहितो न च प्राप्नोति स एवाण भवि-
ष्यति, इदं तर्हि प्रयोजनम्, ऋष्टिषेणशब्दोत्र पठ्यते तत्र यथाविहित-
मित्युच्यमाने ऽत इज् प्राप्तस्तस्य सेमान्तलक्षणो एयो बाधकः प्राप्तस्तत्रा-
रम्भसामर्थ्यादिज् प्रसज्येत पुनरण्यहणादणोव भवति ॥

“अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तत्रामिकाभ्यः” ॥ अपत्यमन्तर्हितं
वृद्धमिति शास्त्रान्तरे यत्परिभाषितं तस्यापि ग्रहणं दृष्टं वृद्धस्य च पूजायां
वृद्धो यूनेति, इह तु प्रत्यासत्तेरेतच्छास्त्रसिद्धस्यैव वृद्धस्य ग्रहणमित्याह ।
वृद्धिर्यस्येति' । 'अवृद्धाभ्य इति शब्दधर्म इति' । वृद्धपर्युदासे सति नञिव-
युक्तन्यायेन तत्सदृशस्यैव शब्दस्य सम्प्रत्ययात्, स्त्रीलिङ्गनिर्देशस्तु नदीमानु-
षीभ्य इत्यनेन सामानाधिकरण्यात्, कथं पुनरर्थवृत्तेः शब्दवृत्तिना सामाना-
धिकरण्यमभेदोपचारात्, अवृद्धशब्दवाच्यत्वान्नदीमानुष्य एवावृद्धा उक्ताः ।
'नदीमानुषीभ्य इत्यर्थधर्म इति' । स्वरूपग्रहणं तु न भवति बहुवचननि-
र्देशात्, वृद्धपर्युदासाच्च सञ्ज्ञानद्या अपि ग्रहणं न भवति लौकिकार्थ-
वृत्तिना मानुषीशब्देन साहचर्यात्, तत्रामिकाभ्य इति सर्वनाम्ना प्रत्यय-
प्रकृतेः परामर्श इति ता अवृद्धाः प्रकृतयो नामानि यासां नदीमानुषी-

णामिति बहुव्रीहिः, तदेवं त्रिभिरपि पदैरर्थ एव निर्दिश्यते, तत्रार्थात्प्रत्य-
यविधानानुपपत्तेस्तद्वाचिनीभ्यः प्रकृतिभ्यः प्रत्ययो विज्ञायते, तद्विदमुक्तम् ।
'तेनाभेदात्प्रकृतयो निर्दिश्यन्तइति' । तेनार्थेनाभेदात् । एतदुक्तं भवति,
अचट्टुशब्दवाच्यास्तत्रामिका या नदीप्रानुष्यस्ताभ्योण् प्रत्ययो भवति,
कार्येस्तद्वाचिनीभ्यः प्रत्ययो भवतीति, तदेतदाह । 'अचट्टानि यानी-
त्यादि' । एवं च कृत्वाऽचट्टेभ्यो नदीमनुषीनामभ्य इति वक्तव्यं, तथा
तु न कृतमित्येव । 'ठकोपवाद इति' । स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् भिद्योद्वा-
शाणादिष्वयं विधिर्न भवतीति भावः ॥

“ ऋष्यन्धकवृष्णिक्कुहभ्यश्च ” ॥ ‘ ऋषयः प्रसिद्धा वसिष्ठादय इति ’ ।
ऋषयो मन्त्रदर्शनस्ते च प्रसिद्धा वसिष्ठादयो यथा इन्द्रादयो देवतास्तेन
तेन परिभाषणीया इति भावः । ‘ वंशाख्या इति ’ । केषां चिद्वंशानामेता
आख्या इत्यर्थः । एवं के चिद्वंशा आख्यायन्तइति यावत् । मध्येपवादाः
पूर्वान्विधीन्वाधन्ते नोङ्गरानित्यभिप्रायेणाह । ‘ इजोपवाद इति ’ ।
'अच्चादिभ्य इति' । तत्र ऋष्यणोवकाशो वासिष्ठः, इतश्चानिज इति
ठकोवकाशो बुलेरपत्यं डौलेय, आत्रेय इत्युभयप्रसङ्गे परत्वाद्गुं भवति,
सेनान्तलक्षणस्य एयस्यावकाशो हारिषेयः, अत्र हि इति सञ्ज्ञायाम-
गादिति षत्वस्यासिद्धत्वात्सेनान्तमेतद्भवति, ऋष्यणः स एव, जातसेना-
नाम ऋषिस्तस्मादुभयप्रसङ्गे परत्वाद् एयो भवति जातसेन्यः, एत्रमुदीचा-
मिज्, जातसेनिः, अन्धकाणोवकाशः श्वाफल्कः, एयस्य स एव, उयसे-
नादन्धकादुभयप्रसङ्गे परत्वाण्यो भवति औयसेन्यः, वृष्ण्यणो ऽवकाशः
वासुदेक, एयस्य स एव, विष्वक्सेनादृष्णोर्विष्वक्सेन्यः, कुर्वणो ऽवकाशः
नाकुलः, एयस्य स एव, भीमसेनात्कुरोर्भीमसेन्यः । ' काकतालीयन्या-
येनेति' । यदृच्छया । ' असङ्करोति' । शब्दान्तरैरसङ्कीर्णा इत्यर्थः ।
सङ्कलिताः संहताः । ' सुबहव इति' । व्युत्पिपादयिषिताः सर्वे इत्यर्थः ।
अनित्योपाश्रयेणापि नित्यस्यान्वाख्यानं दृष्टं यथा शकाश्रयेण कालस्य ।
' अथ वेत्यादि' । त्रिपुरूपानूकं नाम कुर्यादित्यस्तेन न्यायेनान्धकादिवंश

अपि नित्या एव । 'तेषु ये शब्दा इति' । अन्यत्रादिष्वप्राप्तत्वेपि ये
शब्दाः प्रयुज्यन्ते तेभ्य इत्यर्थः ।

“मातृशब्दस्यानभद्रपूर्वायाः” ॥ 'द्वेमातुर इति' । तद्विनाये द्विगुः
। स्वासद्विनः, एकस्या चौरमः सुतो ऽपरस्याः क्वचित् इति द्वेमातुरत्वम् ।
साम्मातुर इति' । प्रादिसमासात्तद्वितः । 'भाद्रमातुर इति' । विशेष-
णसमासादण, तेनेत्यादिना ऽर्थापेक्ष्यस्य स्त्रीलिङ्गनिर्देशस्य फलं दर्शयति ।
'धान्यमातुरिति' । धान्यं यो मिमीते स धान्यमाता याजकादित्वा-
त्षष्ठीसमासः, धान्यमातरि यो मातृशब्दस्तस्य ग्रहणं न भवतीत्यर्थः,
तेन सम्मिमीते तस्यापत्यं साम्मात्र इत्युत्वं न भवति, न्यायानुवादश्चायं
स्त्रीलिङ्गनिर्देशः, सम्बन्धिशब्दस्य हि प्रसिद्धतरत्वात्तस्यैव ग्रहणं न्याय्यम् ।
'सङ्घ्यासम्भद्रपूर्वाया इति किमिति' । न तावत्केवलत्पन्नङ्गः, नहि
मातुरपत्यमिति विशेषणं सम्भवति, अपत्ये मातृसम्बन्धस्याव्यभिचारात्-
तेन तदन्तस्य ग्रहणात् सङ्घ्यादिपूर्वस्य तावत्सिद्धमिति प्रश्नः, अन्यपूर्व-
स्यापि स्वादित्युत्तरम् । 'सौमात्र इति' । क्व चिदस्यानन्तरं ग्रन्थः,
'शुभादिपाठाद्वैमाय इति, तेन विपूर्वा मातृशब्दो न प्रत्युदाहर्तव्य इति
भावः' । वयं ब्रूमः । स्त्रीभ्यो ठगिन्यत्र स्त्रीप्रत्ययविज्ञानादसत्यर्थग्रहणे
इह न भवति, ऐडविडो दारद्र इत्यस्यानन्तरमयं ग्रन्थः, इह तु लेखकैः
प्रमादाल्लिखित इति ॥

“कन्यायाः कनीन च” ॥ 'ठकोपवाद इति' । ट्ठच इति प्राप्तस्य ।
'कन्याया अपत्यं कानीन इति' । शास्त्रोक्तविवाहसंस्कारपूर्वस्य पुरुष-
संप्रयोगस्याभावः कन्याशब्दनिमित्तं नास्तयोनिष्वं, या तु विवाहसं-
स्कारेण विना पुरुषेण सम्प्रयुज्यते साकन्यात्वं न जहाति, तेनैतच्च नोद-
नीयं यदि कन्या नापत्यमथापत्यं न सा कन्या कन्या चाप्यं चेति
विप्रतिषिद्धमिति, अपर आह । मुनिदेवतामाहम्याशा पुंयोगेपि न
कन्यात्वं जहाति यथा कुन्ती यथा सत्यवती सात्रोदाहरणमिति तदाह
'कानीनः कर्णः कानीनो ध्यास इति' ॥

“विकर्णं गुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वुजात्रिषु” ॥ अत्र वत्सादीनां

मूलप्रकृतीनां विकर्णादीन्प्रत्ययत्वायोगादपत्यप्रत्ययान्तानां वात्स्यादीनां शब्दानां द्वन्द्वे युगपदधिकरणवचनतया प्रत्येकं बहुत्वोपजननात्तस्य बहुत्वस्य लोपिभिरेव कृतत्वादपत्यप्रत्ययस्य लुका निर्देशस्तदाह । 'वैकर्णा भवति वात्स्यश्चेदित्यादि' ॥

“स्त्रीभ्यो ढक्” ॥ ‘स्त्रीग्रहणेनेत्यादि’ । स्वरूपग्रहणं तु न भवति बहुवचननिर्देशात्, स्वर्थस्यापि ग्रहणं न भवति विमातृशब्दस्यार्थस्य शुभ्रादिषु पाठात्, तस्य तु स्वर्थत्वं विधवाशब्दसाहचर्याद्विज्ञेयं, किं च स्त्रीशब्दस्य स्वरितत्वं प्रतिज्ञायते, स्वरितेन चाधिकारावगतिर्भवति, तेन टाबादिस्त्रीप्रत्ययान्तानामेव ग्रहणं युक्तं, क्तिन्नादयस्तु व्यवधानात् ग्रह्यन्ते । ‘एडविडो दारद इति’ । इडविट्शब्दाज्जनपदशब्दात्तत्रियादञ्, दरच्छब्दाद्द्वज्मगधेत्यण्, तयोः स्त्रियामतश्चेति लुक्, ततस्तदपत्ये ऽणोव भवति । ‘वृषे वाच्यइति’ । वृषो बीजाश्वः, तेन चार्थेन विशेषविहितेनापत्यलक्षणार्थे ढको बाध्यते, तेनापत्ये ऽणोव भवति । ‘वाडव इति’ । चतुष्पाल्लक्षणो ढजपि न भवति, अचतुष्पाद्वाचित्वात् । ‘अण् क्रुञ्चेति’ । वृषइति नापेत्यते, ऽपत्यएवायं विधिः, ढकोपवादः, क्रुञ्चा च कोकिला च समाहारद्वन्द्वे नपुंसकह्रस्वत्वम् ॥

“ढ्रचः” ॥ ‘तत्रामिकाणोपवाद इति’ । अन्यत्र पूर्वणैश्च सिद्धत्वात् ॥

“शुभ्रादिभ्यश्च” ॥ ‘यथायोगमित्यादि’ । तत्रादन्तेष्विजोपश्रादः, शलाकादिषु तत्रामिकाणः, विधवाशब्दात्तु तुद्रालक्षणस्य ढ्रकः, वतुष्पाद्वाचिषु चतुष्पाल्लक्षणस्य ढजो, गोधाशब्दाद्गोधाया ढ्रकः, वचनासोपि भवति, क्व चिदौत्सर्गिकस्याणः । ‘पाण्डवेय इति’ । ठे लोपोऽकद्रूवा इति लोपो न भवति, कद्रूपर्युदासेन स्त्रीलिङ्गस्य ग्रहणात्, पाण्डवशब्दाद्वा प्रत्ययः । ‘लक्षणश्यामयोर्वासिष्ठइति’ । लक्षणयो भवति वासिष्ठश्चेत् लक्षणिरन्यः, श्यामेयो वासिष्ठः श्यामायनोन्यः, अश्वादित्वात् ढ्रञ् ॥

“कुलटाया वा” ‘कुलान्यटतीति कुलटेति’ । मूलविभुजा-
दिषु दर्शनात्कः प्रत्ययः, पचाद्यच् तु न लभ्यते, अकारादनुपपदात्कर्मा-
पपदा विप्रतिषेधेनेत्यण् प्रसङ्गात् । ‘या तु कुलान्यटन्ती शीलं भिन-
त्तीति’ । एकत्र कुले प्रविष्टा स्वैरिणी या कुलान्तरमटति सा दुःशीला
कुलटेत्यर्थः । ‘तुद्राभ्यो वेति परत्वादिति’ । तुद्रा अङ्गहीनाः शील-
हीनाश्च, या पुनर्भित्तालिस्रया सुशीलापि कुलान्यटति तस्या इह
ग्रहणम् ॥

“चटकाया ऐरक्” ॥ स्त्रीलिङ्गनिर्देशात्पुल्लिङ्गाच्च प्रसज्यतइ-
त्याह । ‘चटकाच्चेति वक्तव्यमिति’ । एवं च पुल्लिङ्गनिर्देश एव कर्त्तव्यः,
लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्त्रीलिङ्गादपि भविष्यति, तथा तु न
कृतमित्येव । ‘स्त्रियामपत्ये लुभक्तञ्च इति’ । ‘चटकायाः अपत्य-
मिति’ । चटकस्यापीति द्रष्टव्यम् । ‘चटकेति’ । लुक्तद्वितलुक्तीति
टापो लुकि कृते पुनरजादिलक्षणष्ठाप् कर्त्तव्यः ॥

“आरगुदीचाम्” ॥ ‘रका सिद्धत्वादिति’ । न लक्षणैः पदकारा
अनुवर्त्या इत्यवग्रहेपि नास्ति विशेषः । ‘ज्ञापकार्थं त्विति’ । भावप्रधानो
ज्ञापकशब्दः, ज्ञापनार्थमिति वा पाठ्यम् । ‘जाडारः पाण्डार इति’ ।
ह्रस्वान्तादयं प्रत्यय इति रका नास्ति सिद्धिः ॥

“तुद्राभ्यो वा” ॥ ‘अङ्गहीना इति’ ‘काणादयः शीलहीना
इति’ । अनियतपुंस्का दासीप्रभृतयः ॥

“ठकि लोपः” ॥ ‘कथं पुनरित्यादि’ । ठग्विधौ टावादिस्त्री-
प्रत्ययान्तानां ग्रहणाच्छुभादिष्वस्यापाठात् प्रश्नः । ‘एतदेवेत्यादि’ ।
नष्टसतो निमित्तभावः सम्भवति ॥

“मातृष्वसुश्च” ॥ ‘पितृष्वसुरित्येतदपेत्यतइति’ । चकारुणा-
नुकृष्यतइत्यर्थः । तदनुवृत्तौ योर्थः सम्पद्यते तं दर्शयति । ‘पितृष्वसुर्यदु-
क्तमिति’ । किं पुनस्तदित्याह । ‘कृणु प्रत्ययो ठकि लोपश्चेति’ ।
तेनानन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति ठकि लोप एव प्राप्नोति
न तु कृणिति न चोदनीयमिति भावः ॥

“चतुष्पाद्गो ठञ्” ॥ कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाद्वचनोस्ति, दृश्यते हि कमण्डलुपद आदधीतेति । जम्बुः शृगालः ॥

“शृष्ट्यादिभ्यश्च” ॥ ‘अणादीनामिति’ । आदिशब्देन ठकः, बहुवचनं तु प्रकृतिभेदेन तयोरेव बहुत्वात् तत्राजवस्तिमिचयुशब्दयोराणोपवादः, शेषाणामितश्चानिञ इति ठकः । ‘शृष्टिशब्दो य इति’ । सङ्कल्पसूता स्त्री सर्वैव शृष्टिर्न धेन्वादिश्चतुष्पादेवेति भावः । अपर आह । सङ्कल्पसूतत्वसाधर्म्याच्चतुष्पदीष्वपि गौणो शृष्टिशब्द इति ॥

“राजश्वशुद्राद्यत्” ॥ ‘तत्रियजातिश्चेदिति’ । प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन तत्रियजातिश्चेद्गम्येतेत्यर्थः । ‘राजन्य इति’ । ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः । ‘राजनोन्य इति’ । स पुनर्वैश्याशुद्रयोस्त्यत्र, अत्रिति प्रकृति भावः ॥

“तत्राद्दुः” ॥ ‘घप्रत्ययो भवतीति’ । घशब्द एव न तरप्तमपौ, अन्यथा सर्वत्रैव प्रत्ययविधौ घ इति तरप्तमपोर्यहणात्प्रत्ययादेर्घकारस्येयादेशवचनमनुपपन्नं स्वात्, न च तुयाद्दुन्, घञ्चौ चेति घन्घचाववकाशौ, तत्रापि सञ्ज्ञाशब्दः सानुबन्ध उपात्तः । अनुबन्धस्तु संज्ञ्यर्थ इति सम्भवात्, इमुगिनत्यमितिवत् । किमिदभ्यां वा घ इत्यत्रापि तरप्तमपोरेवादेशत्वं विज्ञायेत । ‘अयमपि जातिशब्द एवेति’ । राजन्यजात्यभिधाने घो भवति, वैश्याशुद्रयोस्त्यादिते तु इजेवेत्यर्थः ॥

“कुलात्त्वः” ॥ ‘उत्तरसूत्रइत्यादि’ । पूर्वपदप्रतिषेधस्यैतत्प्रयोजनमाद्यकुलादेर्मा भूदिति, ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिप्रतिषेधादेवाद्यकुलादेर्न भविष्यति, पश्यति त्वाचार्यो नायं प्रतिषेधः कुलशब्दे प्रवर्ततेइति, तेनात्र तावत्तदन्तस्य ग्रहणं येन विधिस्तदन्तस्येत्यत्र स्वरूपमित्यनुवृत्तेः केवलस्यापि ग्रहणं सामान्यापेक्षं च ज्ञापकं प्रातिपदिकश्रुतिमती परिभाषा कुशलशब्दे न प्रवर्तते इति तेन व्यपदेशिवद्भावोप्रातिपदिकेनेत्यस्या अप्यप्रवृत्तिः ‘कुलीन इति, उत्तरसूत्रे ऽन्यतरस्यांग्रहणात्केवलादप्यनेन खो भवति, प्रशस्तो वंशः कुलं, तस्यापत्यं तत्प्रभवस्यापत्यमित्यर्थः ॥

“अपूर्वपदादन्यतरस्यां यदृठकजौ” ॥ ननु च पूर्वपदशब्दः समासावयवे रूढो न तस्य कुलशब्दे प्रसङ्ग इत्यत आह । ‘समाससम्बन्धिन इत्यादि’ । समाससम्बन्धिपूर्वपदं कुलशब्दस्यापि कथं चित्सम्बन्धि भवति द्वयोरप्येकसमासावयवत्वात्, व्यवस्थावचनस्तु^१ नैत्रात्र शङ्कनीयः, पूर्वपदशब्दस्य समासावयवे रूढत्वात्, तेन देवदत्तः कुलीन इत्यादौ वाक्ये प्रतिषेधशङ्का न कार्य्या । ‘बहुचूर्वादपीति’ । अपूर्वादित्युच्यमाने बहुकुलशब्दो बहुधा सपूर्व इति ततः प्रत्ययो न स्यात् । किं च देवदत्तः कुलीन इत्यादावपि प्रतिषेधः स्यात्तस्माद्रूढिपरिग्रहार्थमपि पदग्रहणं कर्तव्यम् ॥

“व्यन्सपत्रे” ॥ ननु च नित्यं सपत्र्यादिव्यिति सपत्रीशब्द एव स्त्रीलिङ्गे व्युत्पादितस्तत्कथं पुल्लिङ्गस्य प्रयोगस्तत्राह । ‘सपत्रशब्द इत्यादि’ । ‘इत्रार्थेति’ । सादृश्ये, यथा पत्नी दुःखहेतुस्तथा शत्रुरपीत्येतत्सादृश्यम् । ‘समुदायेन चेदिति’ । एतेन समुदायार्थः सपत्रो न प्रकृत्यर्थो नापि प्रत्ययार्थविशेषणम्, अनर्थकावेवात्र प्रकृतिप्रत्ययाविति दर्शयति, अथानुवृत्तस्यापत्यस्य विशेषणमेव सपत्रः कस्माच्च भवति, तत्राह । ‘अपत्यार्थाच्च नास्त्येवेति’ । एतदेवोदाहरणेन स्पष्टयति । ‘पाप्मना भ्रातृव्येति’ । नहि पाप्मा भ्रातृष्पुत्रो भवति, अतः सपत्रमात्रे भ्रातृव्यशब्दस्य दर्शनादपत्यार्थाच्च नास्ति, किं च योपि सपत्रो भ्रातुरपत्यं सम्भवति सोऽप्याद्युदात्ताद्भ्रातृव्यशब्दात्सपत्ररूपेणैव प्रतीयते नापत्यरूपेण, तथा च भ्रातृव्यो भ्रातृव्य इति सह प्रयोगोपि व्यन्व्यदन्तयोर्भवति, अतः सुष्ठूक्तमपत्यार्था नास्त्येवेति ॥

“रेवेत्यादिभ्यष्टक्” ॥ ‘ठगादीनामपवाद् इति’ । तत्र रेवतीशब्दो ङीष्न्तः, अश्वमणिद्वारशब्दोपपदात्पालयतेः कर्मण्यणि ङीष्, तेषु ङक् प्राप्तः, वञ्चु प्रलम्बने, अस्मादृकोपपादात्कर्त्तर्युपमानइति णिनिः, अस्मादण प्राप्तः वृककर्णेदण्डोपपदाद्दूहेः कर्मण्यण, कुक्कुटस्थेवात्तिणी यस्य स कुक्कुटात्तः, एष्विञ् प्राप्तः ॥

“गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च” ॥ पारिभाषिकस्य गोत्रस्य ग्रहणमित्याह । ‘अपत्यं पौत्रेति’ । लौकिकस्य त्वपत्यमात्रस्य ग्रहणं न भवति, यदि स्यात्तत् स्त्रिया इत्येव ब्रूयात्तच्छब्देन प्रकृतस्यापत्यस्य परामर्शादेव तदर्थलाभात् । ‘गार्ग इति’ । गार्गीशब्दो यज्ञश्चेति ङीबन्तः, तस्य भस्याठे तद्वृत्तइति पुंवद्भावेन पुंशब्दस्यातिदेशात् गार्ग्यशब्दाद्गोत्रस्त्वभिधायिनः प्रत्ययः, यस्येति च आपत्यस्य च तद्वृत्तेनातीत्यल्लोपयलौपौ । ‘ग्लौचु-कायन इति’ । गुचुकस्यापत्यं प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलमिति फिन्, इतो मनुष्यजातेरिति ङीष्, तस्य पुंवद्भावेन निवृत्तिः, ततः प्रत्ययः, णस्य णित्करणात्तत्र वृद्धार्थं, गार्ग्यादौ प्रकृतेरेव वृद्धत्वात्, इह तु वतण्डस्यापत्यं गोत्रं स्त्री, वतण्डाच्च लुक्, स्त्रियां वतण्डी, तस्या अपत्यं वातण्डो जाल्म इति पुंवद्भावेन ङीनि निवृत्ते लुक् स्त्रियामित्यस्य गोत्रे लुगचीति प्रतिषेधात्वातण्डशब्दादेव प्रत्ययः, इह च गार्ग्या अपत्यं स्त्री गार्गा सा भार्या यस्य गार्गाभार्य इति जातेश्चेत्येव पुंवद्भावप्रतिषेधसिद्धिः, गोत्रं च चरणैः सहेत्यपत्यमात्रं ग्रह्यते, तेन वृद्धिनिमित्तस्य चेति पुंवद्भावप्रतिषेधो न प्रयोजनं, किं च गार्ग्या अपत्यं स्त्रीत्यत्रार्थं नास्ति प्रत्ययः, अस्त्रियामिति युवसञ्जाया निषेधाद्गोत्रसञ्ज्ञैवावतिष्ठते, तत्रैको गोत्रइति नियमाच्चैव गोत्रप्रत्ययान्तादपरो गोत्रप्रत्ययः सम्भवति, तेन नास्ति गार्गा नतरां गार्गाभार्यः । अपर आह । अस्ति गार्गा, कथं गार्ग्याअपत्यं या स्त्री न सा युवतिर्नापि गोत्रं, नहि सा गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृतिश्चापत्यस्य गोत्रसञ्ज्ञा विधीयते तदभावादेको गोत्रइति नियमाभावः, ततश्च णस्य भावादस्ति गार्गीति, ये तु नास्ति गार्ग्याहुस्ते मन्यन्ते मातृवंशः पितृवंशश्च द्वावपि वंशौ प्रतीयमपत्यं भवति अपातहेतुत्वात्, ततश्च गार्ग्या अपत्यं या स्त्री सा गर्गस्यापत्यं भवत्येव, पौत्रप्रभृतिग्रहणं च व्यवहितापत्योपलक्षणं, तेन गर्गापेक्षया तस्या गोत्रत्वादेको गोत्रइति नियमात्प्रत्ययान्तराभाव इति, वृत्तौ तु क्व चित्पठ्यते गोत्राद्यूनीति यूनि प्रत्ययो भवतीति, तदप्यस्मिन्नेव पक्षे घटते तदाह । ‘गार्ग्या अपत्यं